ओशो

न जन्म न मृत्यु

भगवद्गीता का मनोविज्ञान

भाग-2

'गीता दर्शन अध्याय 1-2' पर ओशो द्वारा दिए गए

9-18 प्रवचनों का संकलन

फ्यूजन बुक्स

अनुक्रम

नौवां प्रवचन

आत्म-विद्या के गूढ़ आयामों का उद्घाटन

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। 23।।

हे अर्जुन, इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा इसको जल नहीं गीला कर सकता है और वायु नहीं सुखा सकता है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। 24।।

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसंदेह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।। 25।।

और यह आत्मा अव्यक्त अर्थात इंद्रियों का अविषय और यह आत्मा अचिंत्य अर्थात मन का अविषय और यह आत्मा विकाररहित अर्थात न बदलने वाला कहा जाता है। इससे हे अर्जुन, इस आत्मा को ऐसा जानकर तू शोक करने के योग्य नहीं है अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है।

प्रश्न : जो आत्मा अपनी तरफ से किसी भी दिशा में प्रवृत्त नहीं होता, वह वस्त्रों की भांति जीर्ण देह को त्यागने की और नवीन देह को धारण करने की चेष्टा की तकलीफ क्यों उठाता है? इसमें कुछ इंट्रिंजिक कंट्राडिक्शन नहीं फलित होता है?

आत्मा, न जन्म लेती है, न मरती है; न उसका प्रारंभ है, न उसका अंत है-जब हम ऐसा कहते हैं, तो थोड़ी-सी भूल हो जाती है। इसे दूसरे ढंग से कहना ज्यादा सत्य के करीब होगा : जिसका जन्म नहीं होता, जिसकी मृत्यु नहीं होती, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है, जिसका कोई अंत नहीं है, ऐसे अस्तित्व को ही हम आत्मा कहते हैं।

निश्चित ही, अस्तित्व प्रारंभ और अंत से मुक्त होना चाहिए। जो है, दैट व्हिच इज़, उसका कोई प्रारंभ नहीं हो सकता। प्रारंभ का अर्थ यह होगा कि वह शून्य से उतरे, ना-कुछ से उतरे। और प्रारंभ होने के लिए भी प्रारंभ के पहले कुछ तैयारी चाहिए। प्रारंभ आकस्मिक नहीं हो सकता। सब प्रारंभ पूर्व की तैयारी से, पूर्व के कारण से बंधे होते हैं, कॉजेलिटि से बंधे होते हैं।

एक बच्चे का जन्म होता है; हो सकता है, क्योंकि मां-बाप के दो शरीर उसके जन्म की तैयारी करते हैं। सब प्रारंभ अपने से भी पहले किसी चीज को, प्रिसपोज्ड, अपने से भी पहले किसी चीज को स्वीकार करते हैं। इसलिए कोई प्रारंभ मौलिक रूप से प्रारंभ नहीं होता। किसी चीज का प्रारंभ हो सकता है, लेकिन शुद्ध प्रारंभ नहीं होता। ठीक वैसे ही, किसी चीज का अंत हो सकता है, लेकिन अस्तित्व का अंत नहीं होता। क्योंकि कोई भी चीज समाप्त हो, तो उसके भीतर जो होना था, जो अस्तित्व था, वह शेष रह जाता है।

तो जब हम कहते हैं, आत्मा का कोई जन्म नहीं, कोई मृत्यु नहीं, तो समझ लेना चाहिए। दूसरी तरफ से समझ लेना उचित है कि जिसका कोई जन्म नहीं, जिसकी कोई मृत्यु नहीं, उसी का नाम हम आत्मा कह रहे हैं। आत्मा का अर्थ है-अस्तित्व, बीइंग।

लेकिन हमारी भ्रांति वहां से शुरू होती है, आत्मा को हम समझ लेते हैं मैं। मेरा तो प्रारंभ है और मेरा अंत भी है। लेकिन जिसमें मैं जन्मता हूं और जिसमें मैं समाप्त हो जाता हूं, उस अस्तित्व का कोई अंत नहीं है।

आकाश में बादल बनते हैं और बिखर जाते हैं। जिस आकाश में उनका बनना और बिखरना होता है, उस आकाश का कोई प्रारंभ और कोई अंत नहीं है। आत्मा को आकाश समझें-इनर स्पेस, भीतरी आकाश। और आकाश में भीतर और बाहर का भेद नहीं किया जा सकता। बाहर के आकाश को परमात्मा कहते हैं, भीतर के आकाश को आत्मा। इस आत्मा को व्यक्ति न समझें, इंडिविजुअल न समझें। व्यक्ति का तो प्रारंभ होगा, और व्यक्ति का अंत होगा। इस आंतरिक आकाश को अव्यक्ति समझें। इस आंतरिक आकाश को सीमित न समझें। सीमा का तो प्रारंभ होगा और अंत होगा।

इसलिए कृष्ण कह रहे हैं कि न उसे आग जला सकती है।

आग उसे क्यों नहीं जला सकती? पानी उसे क्यों नहीं डुबा सकता? अगर आत्मा कोई भी वस्तु है, तो आग जरूर जला सकती है। यह आग न जला सके, हम कोई और आग खोज लेंगे। कोई एटामिक भट्ठी बना लेंगे, वह जला सकेगी। अगर आत्मा कोई वस्तु है, तो पानी क्यों नहीं डुबा सकता? थोड़ा पानी न डुबा सकेगा, तो बड़े पैसिफिक महासागर में डुबा देंगे।

जब वे यह कह रहे हैं कि आत्मा को न जलाया जा सकता है, न डुबाया जा सकता है पानी में, न नष्ट किया जा सकता है, तो वे यह कह रहे है कि आत्मा कोई वस्तु नहीं है; थिंगनेस, वस्तु उसमें नहीं है। आत्मा सिर्फ अस्तित्व का नाम है। एक्झिस्टेंट वस्तु नहीं, एक्झिस्टेंस इटसेल्फ। वस्तुओं का अस्तित्व होता है, आत्मा स्वयं अस्तित्व है। इसलिए आग न जला सकेगी, क्योंकि आग भी अस्तित्व है। पानी न डुबा सकेगा, क्योंकि पानी भी अस्तित्व है।

इसे ऐसा समझें कि आग भी आत्मा का एक रूप है, पानी भी आत्मा का एक रूप है, तलवार भी आत्मा का एक रूप है, इसलिए आत्मा से आत्मा को जलाया न जा सकेगा। आग उसको जला सकती है, जो उससे भिन्न है। आत्मा किसी से भी भिन्न नहीं। आत्मा अस्तित्व से अभिन्न है, अस्तित्व ही है।

अगर हम आत्मा शब्द को अलग कर दें और अस्तित्व शब्द को विचार करें, तो कठिनाई बहुत कम हो जाएगी। क्योंकि आत्मा से हमें लगता है, मैं। हम आत्मा और ईगो को, अहंकार को पर्यायवाची मानकर चलते हैं। इससे बहुत जटिलता पैदा हो जाती है। आत्मा अस्तित्व का नाम है। उस अस्तित्व में उठी हुई एक लहर का नाम मैं है। वह लहर उठेगी, गिरेगी; बनेगी, बिखरेगी; उस मैं को जलाया भी जा सकता है, डुबाया भी जा सकता है। ऐसी आग खोजी जा सकती है, जो मैं को जलाए। ऐसा पानी खोजा जा सकता है, जो मैं को डुबाए। ऐसी तलवार खोजी जा सकती है, जो मैं को काटे। इसलिए मैं को छोड़ दें। आत्मा से मैं का कोई भी लेना-देना नहीं है, दूर का भी कोई वास्ता नहीं है।

मैं को छोड़कर जो पीछे आपके शेष रह जाता है, वह आत्मा है। लेकिन मैं को छोड़कर हमने अपने भीतर कभी कुछ नहीं देखा है। जब भी कुछ देखा है, मैं मौजूद हूं। जब भी कुछ सोचा है, मैं मौजूद हूं। मैं हर जगह मौजूद हूं भीतर। इतने घने रूप से हम मैं के आस-पास जीते हैं कि मैं के पीछे जो खड़ा है सागर, वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता।

और हम कृष्ण की बात सुनकर प्रफुल्लित भी होते हैं। जब सुनाई पड़ता है कि आत्मा को जलाया नहीं जा सकता, तो हमारी रीढ़ सीधी हो जाती है। हम सोचते हैं, मुझे जलाया नहीं जा सकता। जब हम सुनते हैं, आत्मा मरेगी नहीं, तो हम भीतर आश्वस्त हो जाते हैं कि मैं मरूंगा नहीं। इसीलिए तो बूढ़ा होने लगता है आदमी, तो गीता ज्यादा पढ़ने लगता है। मृत्यु पास आने लगती है, तो कृष्ण की बात समझने का मन होने लगता है। मृत्यु कंपाने लगती है मन को, तो मन समझना चाहता है, मानना चाहता है कि कोई तो मेरे भीतर हो, जो मरेगा नहीं, ताकि मैं मृत्यु को झुठला सकूं।

इसलिए मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में जवान दिखाई नहीं पड़ते। क्योंकि अभी मौत जरा दूर मालूम पड़ती है। अभी इतना भय नहीं, अभी पैर कंपते नहीं। वृद्ध दिखाई पड़ने लगते हैं। सारी दुनिया में धर्म के आस-पास बूढ़े आदमियों के इकट्ठे होने का एक ही कारण है कि जब मैं मरने के करीब पहुंचता है, तो मैं जानना चाहता है कि कोई आश्वासन, कोई सहारा, कोई भरोसा, कोई प्रामिस-कि नहीं, मौत को भी झुठला सकेंगे, बच जाएंगे मौत के पार भी। कोई कह दे कि मरोगे नहीं-कोई अथारिटी, कोई प्रमाण-वचन, कोई शास्त्र!

इसीलिए आस्तिक, जो वृद्धावस्था में आस्तिक होने लगता है, उसके आस्तिक होने का मौलिक कारण सत्य की तलाश नहीं होती, मौलिक कारण भय से बचाव होता है, फियर से बचाव होता है। और इसलिए दुनिया में जो तथाकथित आस्तिकता है, वह भगवान के आस-पास निर्मित नहीं, भय के आस-पास निर्मित है। और अगर भगवान भी है उस आस्तिकता का, तो वह भय का ही रूप है; उससे भिन्न नहीं है। वह भय के प्रति ही सुरक्षा है, सिक्योरिटी है।

तो जब कृष्ण यह कह रहे हैं, तो एक बात बहुत स्पष्ट समझ लेना कि यह आप नहीं जलाए जा सकेंगे, इस भ्रांति में मत पड़ना। इसमें तो बहुत कठिनाई नहीं है। घर जाकर जरा आग में हाथ डालकर देख लेना, तो कृष्ण एकदम गलत मालूम पड़ेंगे। एकदम ही गलत बात मालूम पड़ेगी। गीता पढ़कर आग में हाथ डालकर देख लेना कि आप जल सकते हैं कि नहीं! गीता पढ़कर पानी में डुबकी लगाकर देख लेना, तो पता चल जाएगा कि डूब सकते हैं या नहीं!

लेकिन कृष्ण गलत नहीं हैं। जो डूबता है पानी में, कृष्ण उसकी बात नहीं कर रहे हैं। जो जल जाता है आग में, कृष्ण उसकी बात नहीं कर रहे हैं। लेकिन क्या आपको अपने भीतर किसी एक भी ऐसे तत्व का पता है, जो आग में नहीं जलता? पानी में नहीं डूबता? अगर पता नहीं है, तो कृष्ण को मानने की जल्दी मत करना। खोजना, मिल जाएगा वह सूत्र, जिसकी वे बात कर रहे हैं।

सवाल पूछा है। पूछा है कि आत्मा न भी करती हो यात्रा, सूक्ष्म शरीर, लिंग शरीर अगर यात्रा करता है, तो भी आत्मा का सहयोग तो है ही। आत्मा कोआप्ट तो करती ही है। अगर इनकार कर दे सहयोग करने से, तब तो यात्रा नहीं हो सकेगी!

इसे भी दो तलों पर समझ लेना जरूरी है। सहयोग भी इस जगत में दो प्रकार के हैं। एक, वैज्ञानिक जिसको कैटेलिटिक कोआपरेशन कहता है, कैटेलिटिक एजेंट जिसको वैज्ञानिक कहता है, उस बात को समझ लेना उचित है। एक सहयोग है, जिसमें हम पार्टिसिपेंट होते हैं। एक सहयोग है, जिसमें हमें भागीदार होना पड़ता है। एक और सहयोग है, जिसमें मौजूदगी काफी है, जस्ट प्रेजेंस।

सुबह सूरज निकला। आपकी बगिया का फूल खिल गया। सूरज को पता भी नहीं है कि उसने इस फूल को खिलाया। सूरज इस फूल को खिलाने के लिए निकला भी नहीं है। यह फूल न होता तो सूरज के निकलने में कोई बाधा भी नहीं पड़ती। यह न होता तो सूरज यह न कहता कि फूल तो है नहीं, मैं किसलिए निकलूं! यह खिल गया है, इसके लिए सिर्फ सूरज की मौजूदगी, प्रेजेंस काफी बनी है। सूरज की मौजूदगी के बिना यह खिल भी न सकता, यह बात पक्की है। लेकिन सूरज की मौजूदगी इसको खिलाने के लिए नहीं है, यह बात भी इतनी ही पक्की है। सूरज की मौजूदगी में यह खिल गया है।

लेकिन यह भी बहुत ठीक नहीं है। क्योंकि सूरज की किरणें कुछ करती हैं। चाहे सूरज को पता हो, चाहे न पता हो। सूरज की किरणें उसकी कलियों को खोलती हैं। सूरज की किरणें उस पर चोट भी करती हैं। चोट कितनी ही बारीक और सूक्ष्म हो, लेकिन चोट होती है।

सूरज की किरणों का भी वजन है। सूरज की किरणें भी प्रवेश करती हैं। कोई एक वर्ग मील पर जितनी सूरज की किरणें पड़ती हैं, उसका कोई एक छटांक वजन होता है। बहुत कम है। एक वर्ग मील पर जितनी किरणें पड़ती हैं, अगर हम इकट्ठी कर सकें, तो कहीं एक छटांक वजन होगा। एक तो इकट्ठा करना मुश्किल है। अनुमान है वैज्ञानिकों का, इतना वजन होगा। इतना भी सही, तो भी सूरज फूल की पखुड़ियों पर कुछ करता है। तो वह भी कैटेलिटिक एजेंट नहीं है, इनडायरेक्ट पार्टिसिपेंट है, परोक्ष रूप से भाग लेता है।

लेकिन कैटेलिटिक एजेंट वैज्ञानिक बहुत दूसरी चीज को कहते हैं। जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनता है। तो आप हाइड्रोजन और

आक्सीजन एक कमरे में बंद कर दें, तो भी पानी नहीं बनेगा। सब तरह से सब मौजूद है, लेकिन पानी नहीं बनेगा।

लेकिन उस कमरे में बिजली की एक धारा दौड़ा दें। तो बस, तत्काल हाइड्रोजन और आक्सीजन के अणु मिलकर पानी बनाना शुरू कर देंगे। सब तरह से खोज-बीन की गई, बिजली की धारा कुछ भी नहीं करती। न वह हाइड्रोजन को छूती है, न आक्सीजन को छूती है। न स्पर्श करती है, न उनके साथ कुछ करती। बस उसकी मौजूदगी, सिर्फ उसका होना। उसकी मौजूदगी के बिना नहीं हो पाता। कहना चाहिए, उसकी मौजूदगी ही कुछ करती है; बिजली कुछ नहीं करती।

कृष्ण कह रहे हैं इस सूत्र में, आत्मा निष्क्रिय है, अक्रिय है, नान-एक्टिव है।

आत्मा अक्रिय है, निष्क्रिय है, कर्म नहीं करती, तो फिर यह सारी की सारी यात्रा, यह जन्म और मरण, यह शरीर और शरीर का छूटना, और नए वस्त्रों का ग्रहण और जीर्ण वस्त्रों का त्याग, यह कौन करता है? आत्मा की मौजूदगी के बिना यह नहीं हो सकता है, इतना पक्का है। लेकिन आत्मा की मौजूदगी सक्रिय तत्व की तरह काम नहीं करती, निष्क्रिय उपस्थिति की तरह काम करती है।

जैसे समझें कि बच्चों की क्लास लगी है। शिक्षक नहीं है। चिल्ला रहे है, शोरगुल कर रहे हैं, नाच रहे हैं। फिर शिक्षक कमरे में आया। सन्नाटा छा गया, चुप्पी हो गई। अपनी जगह बैठ गए है, किताबें पढ़ने लगे है। अभी शिक्षक ने एक शब्द नहीं बोला। अभी शिक्षक ने कुछ किया नहीं। अभी उसने यह भी नहीं कहा कि चुप हो जाओ। अभी उसने यह भी नहीं कहा कि गलत कर रहे हो। अभी उसने कुछ किया ही नहीं। अभी वह सिर्फ प्रवेश हुआ है। पर उसकी मौजूदगी, और कुछ हो गया है। शिक्षक कैटेलिटिक एजेंट है इस क्षण में। अभी कुछ कर नहीं रहा है।

ये सारे उदाहरण बिलकुल ठीक नहीं हैं, सिर्फ आपको खयाल आ सके, इसलिए कह रहा हूं। आत्मा की मौजूदगी-लेकिन पूछा जा सकता है, मौजूद होने का भी उसका निर्णय तो है ही; डिसीजन तो है ही! शिक्षक कमरे में आया है, नहीं

आता। आने का निर्णय तो लिया ही है। यह भी कोई कम काम तो नहीं है। आया है। आत्मा कम से कम निर्णय तो ले ही रही है जीवन में होने का। अन्यथा जीवन के प्रारंभ का कोई अर्थ नहीं है। कैसे जीवन प्रारंभ होगा! तो आत्मा क्यों निर्णय ले रही है जीवन के प्रारंभ का? मौजूद होने की भी क्या जरूरत है? क्या परपज है?

तो यहां थोड़े और गहरे उतरना पड़ेगा। एक बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि स्वतंत्रता सदा दोहरी होती है। स्वतंत्रता कभी इकहरी नहीं होती। स्वतंत्रता सदा दोहरी होती है। स्वतंत्रता का मतलब ही यह होता है कि आदमी या जिसके लिए स्वतंत्रता है, वह विपरीत भी कर सकता है।

समझ लें, एक गांव में हम डुंडी पीट दें और कहें कि प्रत्येक आदमी अच्छा काम करने के लिए स्वतंत्र है, लेकिन बुरा काम नहीं कर सकता। तो उस गांव में अच्छा काम करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह जाएगी। अच्छा काम करने की स्वतंत्रता में इम्प्लाइड है, छिपी है, बुरा काम करने की स्वतंत्रता। और जो आदमी बुरा काम कर ही नहीं सकता, उसने अच्छा काम किया है, ऐसा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

स्वतंत्रता दोहरी है, समस्त तलों पर। आत्मा स्वतंत्र है, अस्तित्व स्वतंत्र है। उस पर कोई परतंत्रता नहीं है। उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं, जो उसे परतंत्र कर सके। अस्तित्व फ्रीडम है, अस्तित्व स्वातंत्र्य है। और स्वातंत्र्य में हमेशा दोहरे विकल्प हैं। आत्मा चाहे तो दोनों यात्राएं कर सकती है-संसार में, शरीर में, बंधन में; बंधन के बाहर, संसार के बाहर, शरीर के बाहर। ये दोनों संभावनाएं हैं। और संसार का अनुभव, संसार के बाहर उठने के अनुभव की अनिवार्य आधारशिला है। विश्रांति का अनुभव, तनाव के अनुभव के बिना असंभव है। मुक्ति का अनुभव, अमुक्त हुए बिना असंभव है।

मैं एक छोटी-सी कहानी निरंतर कहता रहता हूं। मैं कहता रहता हूं कि एक अमीर आदमी, एक करोड़पति, जीवन के अंत में सारा धन पाकर चिंतित हो उठा। चिंतित हो उठा कि आनंद अब तक मिला नहीं! सोचा था जीवनभर धन, धन, धन। सोचा था, धन साधन बनेगा, आनंद साध्य होगा। साधन पूरा हो गया,

आनंद की कोई खबर नहीं। साधन इकट्ठे हो गए, आनंद की वीणा पर कोई स्वर नहीं बजता। साधन इकट्ठा हो गया, भवन तैयार है, लेकिन आनंद का मेहमान आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, उसकी कोई पदचाप सुनाई नहीं पड़ती है। चिंतित हो जाना स्वाभाविक है।

गरीब आदमी कभी चिंतित नहीं हो पाता, यही उसका दुर्भाग्य है। अगर वह चिंतित भी होता है, तो साधन के लिए होता है कि कैसे धन मिले, कैसे मकान मिले! अमीर आदमी की जिंदगी में पहली दफा साध्य की चिंता शुरू होती है; क्योंकि साधन पूरा होता है। अब वह देखता है, साधन सब इकट्ठे हो गए, जिसके लिए इकट्ठे किए थे, वह कहां है!

इसलिए जब तक किसी आदमी की जिंदगी में साध्य का खयाल न उठे, तब तक वह गरीब है। चाहे उसके पास कितना ही धन इकट्ठा हो गया हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसके अमीर होने की खबर उसी दिन मिलती है, जिस दिन वह यह सोचने को तैयार हो जाता है-सब है जिससे आनंद मिलना चाहिए ऐसा सोचा था, लेकिन वह आनंद कहां है? साधन पूरे हो गए, लेकिन वह साध्य कहां है? भवन बन गया, लेकिन अतिथि कहां है? उसी दिन आदमी अमीर होता है। वही उसका सौभाग्य है। लेकिन बहुत कम अमीर आदमी अमीर होते हैं।

वह अमीर आदमी अमीर था; चिंता पकड़ गई उसे। उसने अपने घर के लोगों को कहा कि बहुत दिन प्रतीक्षा कर ली, अब मैं खोज में जाता हूं। अब तक सोचता था कि इंतजाम कर लूंगा, तो आनंद का अतिथि आ जाएगा। इंतजाम पूरा है, अतिथि का कोई पता चलता नहीं। अब मैं उसकी खोज पर निकलता हूं। बहुत-से हीरे-जवाहरात अपने साथ लेकर वह गया। गांव-गांव पूछता था लोगों से कि आनंद कहां मिलेगा? लोगों ने कहा, हम खुद ही तलाश में हैं। इस गांव तक हम उसी की तलाश में पहुंचे हैं। रास्तों पर लोगों से पूछता था, आनंद कहां मिलेगा? वे यात्री कहते कि हम भी सहयात्री हैं, फेलो ट्रेवलर्स हैं; हम भी खोज में निकले हैं। तुम्हें पता चल जाए, तो हमें भी खबर कर देना।

जिससे पूछा उसी ने कहा कि तुम्हें खबर मिल जाए, तो हमें भी बता देना।

हमें कुछ पता नहीं, हम भी खोज में हैं। थक गया, परेशान हो गया, मौत करीब दिखाई पड़ने लगी। आनंद की कोई खबर नहीं।

फिर एक गांव से गुजर रहा था, तो किसी से उसने पूछा। झाड़ के नीचे एक आदमी बैठा हुआ था। देखकर ऐसा लगा कि शायद यह आदमी कोई जवाब दे सके। क्योंकि अंधकार घिर रहा था सांझ का, लेकिन उस आदमी के आस-पास कुछ अलौकिक प्रकाश मालूम पड़ता था। रात उतरने को थी, लेकिन उसके चेहरे पर चमक थी सुबह की। पकड़ लिए उसके पैर, धन की थैली पटक दी। और कहा कि ये हैं अरबों-खरबों रुपए के हीरे-जवाहरात-आनंद चाहिए!

उस फकीर ने आंखें ऊपर उठाई और उसने कहा कि सच में चाहिए? बिलकुल तुम्हें आज तक कभी आनंद नहीं मिला? उसने कहा, कभी नहीं मिला। उसने कहा, कभी कोई थोड़ी-बहुत धुन बजी हो! कोई धुन नहीं बजी। उसने कहा, कभी थोड़ा-बहुत स्वाद आया हो! उस आदमी ने कहा, बातों में समय खराब मत करो; तुम पहले आदमी हो, जिसने एकदम से यह नहीं कहा कि मैं भी खोज रहा हूं। मुझे बताओ! उस फकीर ने पूछा, कोई परिचय ही नहीं है? उसने कहा, कोई परिचय नहीं है।

इतना कहना था कि वह फकीर उस झोले को, जिसमें हीरे-जवाहरात थे, लेकर भाग खड़ा हुआ। उस अमीर ने तो सोचा भी नहीं था। वह उसके पीछे भागा और चिल्लाया, मै लुट गया। तुम आदमी कैसे हो! गांव परिचित था फकीर का, अमीर का तो परिचित नहीं था। गली-कूचे वह चक्कर देने लगा। सारा गांव जुट गया। गांव भी पीछे भागने लगा। अमीर चिल्ला रहा है, छाती पीट रहा है, आंख से आंसू बहे जा रहे हैं। और वह कह रहा है, मैं लुट गया; मै मर गया; मेरी जिंदगीभर की कमाई है। उसी के सहारे मैं आनंद को खोज रहा हूं; अब क्या होगा! मेरे दुख का कोई अंत नहीं है। मुझे बचाओ किसी तरह इस आदमी से; मेरा धन वापस दिलवाओ। वह गांवभर में चक्कर लगाकर भागता हुआ फकीर वापस उसी झाड़ के नीचे आ गया, जहां अमीर का घोड़ा खड़ा था। झोला जहां से उठाया था वहीं पटककर, जहां बैठा था वहीं झाड़ के पास फिर बैठ गया।

पीछे से भागता हुआ अमीर आया और सारा गांव। अमीर ने झोला उठाकर छाती से लगा लिया और भगवान की तरफ हाथ उठाकर कहा, हे भगवान, तेरा परम धन्यवाद! फकीर ने पूछा, कुछ आनंद मिला? उस अमीर ने कहा, कुछ? बहुत-बहुत मिला। ऐसा आनंद जीवन मे कभी भी नही था। उस फकीर ने कहा, आनंद के पहले दुखी होना जरूरी है; पाने के पहले खोना जरूरी है; होने के पहले न होना जरूरी है; मुक्ति के पहले बंधन जरूरी है; ज्ञान के पहले अज्ञान जरूरी है; प्रकाश के पहले अंधकार जरूरी है।

इसलिए आत्मा एक यात्रा पर निकलती है, वह धन खोने की यात्रा है। असल मे जिसे हम खोते नही, उसे हम कभी पाने का अनुभव नहीं कर सकते। और इसलिए जब जिन्होने पाया है, जैसे कृष्ण, जैसे बुद्ध...जब बुद्ध को मिला ज्ञान, लोगो ने पूछा, क्या मिला? तो बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नही। जो मिला ही हुआ था, उसको जाना भर। लेकिन बीच मे खोना जरूरी था। स्वास्थ्य का अनुभव करने के लिए भी बीमार होना अनिवा प्रक्रिया है। ऐसा जीवन का तथ्य हैं। ऐसी फैक्टिसिटी है।

तो जब आप पूछते है, क्या जरूरत है आत्मा को संसार मे जाने की? तो मै कहता हूं, मुक्ति के अनुभव के लिए। और आत्मा संसार मे आने के पहले भी मुक्त है, लेकिन उस मुक्ति का कोई बोध नही हो सकता, उस मुक्ति की कोई प्रतीति नही हो सकती; उस मुक्ति का कोई एहसास नहीं हो सकता। खोए बिना एहसास असंभव है।

इसलिए संसार एक परीक्षण है। संसार एक एक्सपेरिमेट है, स्वयं को खोने का। संसार इससे ज्यादा कुछ भी नही है। यह आत्मा का अपना ही चुनाव है कि वह खोए और पाए। परमात्मा संसार मे अपने को खोकर पा रहा है; खोता रहेगा, पाता रहेगा; अंधेरे मे उतरेगा और प्रकाश मे आकर जागेगा कि प्रकाश है।

इसलिए कृष्ण से अगर हम पूछेगे, तो वे कहेगे, लीला है-अपने से ही अपने को छिपाने की, अपने से ही अपने को खोजने की, अपने से ही अपने को पाने की-लीला है, बहुत गंभीर मामला नहीं है। बहुत सीरियस होने की जरूरत

नहीं है। इसलिए कृष्ण से ज्यादा नान-सीरियस, गैर-गंभीर आदमी खोजना मुश्किल है। और जो गंभीर हैं, वे खबर देते हैं कि उन्हें जीवन के पूरे राज का अभी पता नहीं चला है। जीवन का पूरा राज यही है कि जिसे हम तलाश रहे हैं, उसे हमने खोया है। जिसे हम खोज रहे हैं, उसे हमने छिपाया है। जिसकी तरफ हम जा रहे हैं, उसकी तरफ से हम खुद आए हैं।

पर ऐसा है। और आप पूछें, क्यों है? तो उस क्यों का कोई उत्तर नहीं है। एक क्यों तो जरूर जिंदगी में होगा, जिसका कोई उत्तर नहीं होगा। वह क्यों हम कहां जाकर पकड़ते हैं, यह दूसरी बात है। लेकिन अल्टिमेट व्हाई, आखिरी क्यों का कोई उत्तर नहीं हो सकता है। नहीं हो सकता, इसीलिए फिलासफी, दर्शनशास्त्र फिजूल के चक्कर में घूम जाता है। वह क्यों की तलाश करता है।

इसको थोड़ा समझ लेना उचित है।

दर्शनशास्त्र क्यों की तलाश करता है-ऐसा क्यों है? एक कारण मिल जाता है; फिर वह पूछता है, यह कारण क्यों है? फिर दूसरा कारण मिल जाता है; फिर वह पूछता है, यह कारण क्यों है? फिर इनफिनिट रिग्रेस हो जाता है। फिर अंतहीन है यह सिलसिला। और हर उत्तर नए प्रश्न को जन्म दे जाता है। हम कोई भी कारण खोज लें, फिर भी क्यों तो पूछा ही जा सकता है। ऐसा कोई कारण हो सकता है क्या, जिसके संबंध में सार्थक रूप से क्यों न पूछा जा सके? नहीं हो सकता। इसलिए दर्शनशास्त्र एक बिलकुल ही अंधी गली है।

विज्ञान नहीं पूछता-क्यों? विज्ञान पूछता है-क्या, व्हाट? इसलिए विज्ञान अंधी गली नहीं है। धर्म भी नहीं पूछता-क्यों? धर्म भी पूछता है-व्हाट, क्या? इसे समझ लेना आप।

विज्ञान और धर्म बहुत निकट हैं। विज्ञान की भी दुश्मनी अगर है, तो फिलासफी से है। और धर्म की भी अगर दुश्मनी है, तो फिलासफी से है। आमतौर से ऐसा खयाल नहीं है। लोग समझते हैं कि धर्म तो खुद ही एक फिलासफी है।

धर्म बिलकुल भी फिलासफी नहीं है। धर्म एक विज्ञान है। धर्म यह पूछता है,

क्या ? क्यों नहीं। क्योंकि धर्म जानता है कि अस्तित्व से क्या का उत्तर मिल सकता है। क्यों का कोई उत्तर नहीं मिल सकता। विज्ञान भी पूछता है, क्या ? विज्ञान पूछता है, पानी क्या है ? हाइड्रोजन और आक्सीजन। आप पूछें कि क्यों हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलते है ? वैज्ञानिक कहेगा, दार्शनिक से पूछो। हमारी लेबोरेटरी में हम क्या खोजते है। हम बता सकते है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर पानी बनता है। क्या, हम बताते है। कैसे, हम बताते है। क्यों, कृपा करके हमसे मत पूछो। या तो पागलों से या फिलासफर से, इनसे क्यो पूछो।

वैज्ञानिक कहता है कि हम कितना ही खोजे, हम इतना ही जान सकते है कि क्या! और जब हमे क्या पता चल जाए, तो हम जान सकते है, कैसे! पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर बना है, हमने जान लिया-व्हाट। अब हम खोज कर सकते हैं कि कैसे मिला है। इसलिए विज्ञान क्या की खोज करता है और कैसे को प्रयोगशाला मे ढूंढ़ लेता है।

धर्म भी अस्तित्व के क्या की खोज करता है और योग मे कैसे की प्रक्रिया को खोज लेता है। इसलिए धर्म का जो आनुषांगिक अंग है, वह योग है। और विज्ञान का जो आनुषांगिक अंग है, वह प्रयोग है। लेकिन धर्म का कोई संबंध नही है क्यो से। क्योंकि एक बात सुनिश्चित है कि हम अस्तित्व के क्यों को न पूछ पाएंगे। अस्तित्व है, और यही बात समाप्त हो जाती है।

तो कृष्ण कह रहे है कि ऐसा है कि वह जो आत्मा है, वह मरणधर्मा नहीं है। पूछें, क्यो ? तो क्यो का कोई सवाल ही नही है। ऐसा है, थिंग्स आर सच। वह जो आत्मा है, वह आत्मा जल नही सकती, जन्म नहीं लेती, मरती नहीं। क्यों ? कृष्ण कहेंगे, ऐसा है। अगर तुम पूछो कि कैसे हम जानें उस आत्मा को, तो रास्ता बताया जा सकता है-जो नहीं मरती, जो नहीं जन्मती। लेकिन अगर पूछें कि क्यों नहीं मरती ? तो कृष्ण कहते है, कोई उपाय नहीं है। यहां जाकर सब निरुपाय हो जाता है। यहां जाकर आदमी एकदम हेल्पलेस हो जाता है। यहां जाकर बुद्धि एकदम थक जाती और गिर जाती है।

लेकिन बुद्धि क्यों ही पूछती है। उसका रस क्यों में है। क्योंकि अगर आप

क्यों पूछें, तो बुद्धि कभी न गिरेगी और कभी न थकेगी, कभी न मरेगी। वह पूछती चली जाएगी, पूछती चली जाएगी, पूछती चली जाएगी।

बचपन में मैंने एक कहानी सुनी है, आपने भी सुनी होगी। एक बूढ़ी औरत, नानी है। बच्चे उसे घर में घेर लेते हैं और कहानी पूछते हैं। वह थक गई है, उसकी सब कहानियां चुक गई हैं। लेकिन बच्चे हैं कि रोज पूछे ही चले जाते हैं। वे फिर-फिर कहते हैं रोज रात, कहानी! और वह बूढ़ी थक गई है, उसकी सब कहानियां चुक गई हैं। अब वह क्या करे और क्या न करे! और बच्चे हैं कि पीछे पड़े हैं।

तो फिर उसने एक कहानी ईजाद की। ठीक वैसी ही जैसी परमात्मा की कहानी है। उसने कहानी ईजाद की। उसने कहा, एक वृक्ष पर अनंत पक्षी बैठे हैं। बच्चे खुश हुए, क्योंकि अनंत पक्षी हैं, कथा अनंत चल सकेगी। उसने कहा, एक शिकारी है, जिसके पास अनंत बाण हैं। उसने एक तीर छोड़ा। तीर के लगते ही वृक्ष पर, एक पक्षी उड़ा। बच्चों ने पूछा, फिर? उस बूढ़ी ने कहा, उस शिकारी ने दूसरा तीर छोड़ा, फिर एक पक्षी उड़ा। बच्चों ने पूछा, फिर! उस बूढ़ी ने कहा, फिर शिकारी ने एक तीर छोड़ा। फिर एक पक्षी उड़ा-फुर्र। बच्चों ने पूछा, फिर! फिर यह कहानी चलने लगी, बस ऐसे ही चलने लगी। फिर बच्चे थक गए और उन्होंने कहा, कुछ और नहीं होगा? उस बूढ़ी स्त्री ने कहा कि अब मैं थक गई हूं, अब और कहानी नहीं। अब यह एक कहानी काफी रहेगी। अब तुम रोज पूछना। फिर उसने एक तीर छोड़ा-अनंत हैं तीर, अनंत हैं पक्षी।

यह जो हमारे क्यों का जगत है, वह ठीक बच्चों जैसा है, जो पूछ रहे हैं, क्यों? क्यों का सवाल चाइल्डिश है, यद्यपि बहुत बुद्धिमान लोग पूछते हुए मालूम पड़ते हैं। असल में बुद्धिमानों से ज्यादा बाल-बुद्धि के लोग खोजने मुश्किल हैं। क्यों का सवाल एकदम बचकाना है। लेकिन बड़ा [illegible] मालूम [illegible]ता है। क्योंकि दुनिया में जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, [illegible] रहे हैं। [illegible] यूनान के दार्शनिक हों, चाहे भारत के हों और चाहे [illegible] हों, वे यह क्यों ही पूछते [illegible]। और फिर क्यों के उत्तर खोजते रहे हैं। किसी [illegible] ने कि[illegible] नहीं दी। [illegible] उत्तर

एक्ट। वहां सिर्फ कामना करना ही कृत्य हो जाता है। वहां कोई और कृत्य करने की जरूरत नहीं होती।

इसलिए शास्त्र कहते है कि परमात्मा ने कामना की, तो जगत निर्मित हुआ। बाइबिल कहती है कि परमात्मा ने कहा, लेट देअर बी लाइट, एंड देअर वाज़ लाइट। कहा कि प्रकाश हो, और प्रकाश हो गया। यहां प्रकाश हो और प्रकाश के हो जाने के बीच कोई भी कृत्य नहीं है, सिर्फ कामना है। आत्मा की कामना कि अंधेरे को जाने, कि यात्रा शुरू हो गई। आत्मा की कामना कि मुक्त हो, कि यात्रा शुरू हो गई। आत्मा की कामना कि जाने परम सत्य को, कि यात्रा शुरू हो गई।

और आपको अगर कृत्य करने पड़ते है, तो वे इसलिए करने पड़ते है कि कामना पूरी नहीं है। असल मे कृत्य सिर्फ कामना की कमी को पूरा करते है, फिर भी पूरा नही कर पाते। अगर कामना पूरी है, तो कृत्य तत्काल हो जाता है। अगर आप इसी क्षण पूरे भाव से कामना कर पाएं कि परमात्मा को जानूं, तो एक सेकेंड भी नही गिरेगा और परमात्मा जान लिया जाएगा।

अगर बाधा पड़ती है, तो कृत्य की कमी से नही, बाधा पड़ती है, भीतर मन ही पूरा नही कहता। वह यह कहता है, जरा और सोच लूं; इतनी जल्दी भी क्या है जानने की। एक मन कहता है, जाने। आधा मन कहता है, छोड़ो। क्या रखा है! परमात्मा है भी, नहीं है-कुछ पता नहीं है। कामना ही पूरी नहीं है।

इसलिए कृष्ण जब कहते है, आत्मा निष्क्रिय है, तो इस बात को ठीक से समझ लेना कि आत्मा के लिए कृत्य करने की अनिवार्यता ही नहीं है। आत्मा के लिए कामना करना ही पर्याप्त कृत्य है। अगर यह खयाल मे आ जाए, तो ही यह बात खयाल मे आ पाएगी कि कृष्ण अर्जुन को समझाए चले जा रहे है, इस आशा में कि अगर समझ भी पूरी हो जाए, तो बात पूरी हो जाती है; कुछ और करने को बचता नहीं है। कुछ ऐसा नही है कि समझ पूरी हो जाए, तो फिर शीर्षासन करना पड़े, आसन करना पड़े, व्यायाम करना पड़े, फिर मंदिर मे घंटी बजानी पड़े, फिर पूजा करनी पड़े, फिर प्रार्थना करनी पड़े। अगर अंडरस्टैंडिंग पूरी हो जाए, तो कुछ करने को बचता नहीं। वह पूरी नहीं होती है, इसलिए सब

से हल नहीं हुआ। क्योंकि हर उत्तर के बाद पूछने वाले ने पूछा, क्यों? फिर एक तीर, फिर पक्षी उड़ जाता है। और फिर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है।

इसलिए मैंने निरंतर पीछे आपसे कहा कि यह किताब मेटाफिजिकल नहीं है। यह कृष्ण का संदेश जो अर्जुन को है, यह कोई दार्शनिक, कोई तत्व-ज्ञान का नहीं, यह मनस-विज्ञान का है। इसलिए वे कह रहे हैं, ऐसा है। और एक आत्मा जब यात्रा करती है, तो कैसे यात्रा करती है, वह मैंने आपसे कहा। यात्रा का क्या-इतना ही ज्ञात है, इतना ही ज्ञात हो सका है, इतना ही ज्ञात हो सकता है, इससे शेष अज्ञात ही रहेगा।

वह यह कि स्वतंत्रता के पूर्ण अनुभव के पहले परतंत्रता का अनुभव जरूरी है। मुक्ति के पूरे आकाश में उड़ने के पहले किसी कारागृह, किसी पिंजरे के भीतर थोड़ी देर टिकना उपयोगी है। उसकी यूटिलिटी है। इसलिए आत्मा यात्रा करती है। और जब तक आत्मा बहुत गहरी नहीं उतर जाती पाप, अंधकार, बुराई, कारागृह में, तब तक लौटती भी नहीं।

कल कोई दोपहर मुझसे पूछता था कि वाल्मीकि जैसे पापी उपलब्ध हो जाते हैं ज्ञान को! तो मैंने कहा, वही हो पाते हैं। जो मीडियाकर हैं, जो बीच में होते हैं, उनका अनुभव ही अभी पाप का इतना नहीं कि पुण्य की यात्रा शुरू हो सके। इसलिए वे बीच में ही रहते हैं। लेकिन वाल्मीकि के लिए तो आगे जाने का रास्ता ही खतम हो जाता है; कल-डि-सैक आ जाता है; वहां सब रास्ता ही खतम हो जाता है। अब और वाल्मीकि क्या पाप करें? आखिरी आ गई यात्रा। अब दूसरी यात्रा शुरू होती।

इसलिए अक्सर गहरा पापी गहरा संत हो जाता है। साधारण पापी साधारण सज्जन ही होकर जीता है। जितने गहरे अंधकार की यात्रा होगी, उतनी अंधकार से मुक्त होने की आकांक्षा का भी जन्म होता है; उतनी ही तीव्रता से यात्रा भी होती है दूसरी दिशा में भी।

इसलिए आत्मा निष्क्रिय होते हुए भी कामना तो करती है यात्रा की। निष्क्रिय कामना भी हो सकती है। आप कुछ न करें, सिर्फ कामना करें। लेकिन आत्मा के तल पर कामना ही एक्ट बन जाती है, दि वेरी डिजायर बिकम्स दिं

उपद्रव करना पड़ता है। सारा रिचुअल सब्स्टीटयूट है। जो भी क्रियाकांड है, वह समझ की कमी को पूरा करवा रहा है और कुछ नहीं। उससे पूरी होती भी नहीं, सिर्फ वहम पैदा होता है कि पूरी हो रही है। अगर समझ पूरी हो जाए, तो तत्काल घटना घट जाती है।

एडिंग्टन ने अपने आत्म-संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने जगत की खोज शुरू की थी, तो मैं कुछ और सोचता था। मैं सोचता था, जगत वस्तुओं का एक संग्रह है। अब जब कि मैं जगत की खोज, जितनी मुझसे हो सकती थी, करके विदा की बेला में आ गया हूं, तो मैं कहना चाहता हूं, दि वर्ल्ड इज़ लेस लाइक ए थिंग एंड मोर लाइक ए थाट। अब यह नोबल प्राइज विनर वैज्ञानिक कहे, तो थोड़ा सोचने जैसा है। वह कहता है कि जगत वस्तु के जैसा कम और विचार के जैसा ज्यादा है।

अगर जगत विचार के जैसा ज्यादा है, तो कृत्य मूल्यहीन है, संकल्प मूल्यवान है। कृत्य संकल्प की कमी है। इसलिए हमें लगता है कि कुछ करें भी, तब पूरा हो पाएगा।

संकल्प ही काफी है। आत्मा बिलकुल निष्क्रिय है। और उसका संकल्प ही एकमात्र सक्रियता है। संकल्प है कि हम जगत में जाएं, तो हम आ गए। जिस दिन संकल्प होगा कि उठ जाएं वापस, उसी दिन हम वापस लौट जाते हैं। लेकिन जगत का अनुभव, लौटने के संकल्प के लिए जरूरी है।

प्रश्न : बहुत सारे श्रोताओ की जिज्ञासा मंडराती है इस प्रश्न के बारे में। क्या एस्ट्रल बाडी और प्रेतात्मा एक ही चीज हैं? क्या ऐसी प्रेतात्मा दूसरे स्थूल शरीर में प्रवेश करके परेशान कर सकती है? उसका क्या उपाय है? बहुत सारे श्रोताजनों ने यह पूछा है।

जैसा मैंने कहा, साधारण व्यक्ति, सामान्यजन, जो न बहुत बुरा है, न बहुत अच्छा है...। चार तरह के लोग हैं। साधारणजन, जो अच्छाई और बुराई के

मिश्रण हैं। असाधारणजन, जो या तो शुद्ध बुराई हैं अधिकतम या शुद्ध अच्छाई हैं अधिकतम। तीसरे वे लोग, जो न बुराई हैं, न अच्छाई हैं-दोनों नहीं हैं। इनके लिए क्या नाम दें, कहना कठिन है। चौथे वे लोग, जो बुराई और अच्छाई में बिलकुल समतुल हैं, बैलेंस्ड हैं। ये तीसरे और चौथे लोग ऐसे हैं, जिनकी जन्म की यात्रा बंद हो जाएगी। उनकी हम पीछे बात करेंगे। पहले और दूसरे लोग ऐसे हैं, जिनकी जन्म की यात्रा जारी रहेगी।

जो पहली तरह के लोग हैं-मिश्रण; अच्छे भी, बुरे भी, दोनों ही एक साथ; कभी बुरे, कभी अच्छे; अच्छे में भी बुरे, बुरे में भी अच्छे; सबका जोड़ हैं; निर्णायक नहीं, इनडिसीसिव; इधर से उधर डोलते रहते हैं-इनके लिए साधारणतया मरने के बाद तत्काल गर्भ मिल जाता है। क्योंकि इनके लिए बहुत गर्भ उपलब्ध हैं। सारी पृथ्वी इन्हीं के लिए मैन्युफैक्चर कर रही है। इनके लिए फैक्टरी जगह-जगह है। इनकी मांग बहुत असाधारण नहीं है। ये जो चाहते है, वह बहुत साधारण व्यक्तित्व है, जो कहीं भी मिल सकता है। ऐसे आदमी प्रेत नहीं होते। ऐसे आदमी तत्काल नया शरीर ले लेते हैं।

लेकिन बहुत अच्छे लोग और बहुत बुरे लोग, दोनों ही बहुत समय तक अटक जाते हैं। उनके लिए उनके योग्य गर्भ मिलना मुश्किल हो जाता है। जैसा मैंने कहा कि हिटलर के लिए या चंगेज के लिए या स्टैलिन के लिए या गांधी के लिए या अलबर्ट शवित्जर के लिए, इस तरह के लोगों के लिए जन्म एक मृत्यु के बाद काफी समय ले लेता है-जब तक योग्य गर्भ उपलब्ध न हो। तो बुरी आत्माएं और अच्छी आत्माएं, एक्सट्रीमिस्ट; जिन्होंने बुरे होने का ठेका ही ले रखा था जीवन में, ऐसी आत्माएं; जिन्होंने भले होने का ठेका ले रखा था, ऐसी आत्माएं-इनको रुक जाना पड़ता है।

जो इनमें बुरी आत्माएं हैं, उनको ही हम भूत-प्रेत कहते है। और इनमें जो अच्छी आत्माएं हैं, उनको ही हम देवता कहते रहे हैं। ये काफी समय तक रुक जाती हैं, कई बार तो बहुत समय तक रुक जाती हैं। हमारी पृथ्वी पर हजारों साल बीत जाते हैं, तब तक रुक जाती हैं।

पूछा है कि क्या ये दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकती हैं?

कर सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में जितनी संकल्पवान आत्मा हो, उतनी ही रिक्त जगह नहीं होती। जितनी विल पावर की आत्मा हो, उतनी ही उसके शरीर में रिक्त जगह नहीं होती, जिसमें कोई दूसरी आत्मा प्रवेश कर सके। जितनी संकल्पहीन आत्मा हो, उतनी ही रिक्त जगह होती है।

इसे थोड़ा समझना जरूरी है। जब आप संकल्प से भरते हैं, तब आप फैलते हैं। संकल्प एक्सपैंडिंग चीज है। और जब आपका संकल्प निर्बल होता है, तब आप सिकुड़ते हैं। जब आप हीन-भाव से भरते हैं, तो सिकुड़ जाते हैं। यह बिलकुल सिकुड़ने और फैलने की घटना घटती है भीतर।

तो जब आप कमजोर होते हैं, भयभीत होते हैं, डरे हुए होते है, आत्मग्लानि से भरे होते हैं, आत्म-अविश्वास से भरे होते है, स्वयं के प्रति अश्रद्धा से भरे होते हैं, स्वयं के प्रति निराशा से भरे होते हैं, तब आपके भीतर का जो सूक्ष्म शरीर है, वह सिकुड़ जाता है। और आपके इस शरीर में इतनी जगह होती है फिर कि कोई भी आत्मा प्रवेश कर सकती है। आप दरवाजा दे सकते हैं।

आमतौर से भली आत्माएं प्रवेश नहीं करती है। नहीं करने का कारण है। क्योंकि भली आत्मा जिंदगीभर ऐंद्रिक सुखों से मुक्त होने की चेष्टा में लगी रहती है। एक अर्थ में, भली आत्मा शरीर से ही मुक्त होने की चेष्टा में लगी रहती है। लेकिन बुरी आत्मा के जीवन के सारे अनुभव शरीर के सुख के अनुभव होते हैं। और बुरी आत्मा, शरीर से बाहर होने पर जब उसे नया जन्म नहीं मिलता, तो उसकी तड़फन भारी हो जाती है; उसकी पीड़ा भारी हो जाती है। उसको अपना शरीर तो मिल नहीं रहा है, गर्भ उपलब्ध नहीं है, लेकिन वह किसी के शरीर पर सवार होकर इंद्रिय के सुखों को चखने की चेष्टा करती है। तो अगर कहीं भी कमजोर संकल्प का आदमी हो...।

इसीलिए पुरुषों की बजाय स्त्रियों में प्रेतात्माओं का प्रवेश मात्रा में ज्यादा होता है। क्योंकि स्त्रियों को हम अब तक संकल्पवान नहीं बना पाए हैं। जिम्मा पुरुष का है, क्योंकि पुरुष ने स्त्रियों का संकल्प तोड़ने की निरंतर कोशिश की है। क्योंकि

जिसे भी गुलाम बनाना हो, उसे संकल्पवान नहीं बनाया जा सकता। जिसे गुलाम बनाना हो, उसके संकल्प को हीन करना पड़ता है, इसलिए स्त्री के संकल्प को हीन करने की निरंतर चेष्टा की गई है हजारों साल में। जो आध्यात्मिक संस्कृतियां हैं, उन्होंने भी भयंकर चेष्टा की है कि स्त्री के संकल्प को हीन करें, उसे डराएं, उसे भयभीत करें। क्योंकि पुरुष की प्रतिष्ठा उसके भय पर ही निर्भर करेगी।

तो स्त्री में जल्दी प्रवेश...। और मात्रा बहुत ज्यादा है। दस प्रतिशत पुरुष ही प्रेतात्माओं से पीड़ित होते है, नब्बे प्रतिशत स्त्रियां पीड़ित होती हैं। संकल्प नहीं है; जगह खाली है; प्रवेश आसान है।

संकल्प जितना मजबूत हो, स्वयं पर श्रद्धा जितनी गहरी हो, तो हमारी आत्मा हमारे शरीर को पूरी तरह घेरे रहती है। अगर संकल्प और बड़ा हो जाए, तो हमारा सूक्ष्म शरीर हमारे इस शरीर के बाहर भी घेराव बनाता है-बाहर भी। इसलिए कभी किन्हीं व्यक्तियों के पास जाकर, जिनका संकल्प बहुत बड़ा है, आप तत्काल अपने संकल्प में परिवर्तन पाएंगे। क्योंकि उनका संकल्प उनके शरीर के बाहर भी वर्तुल बनाता है। उस वर्तुल के भीतर अगर आप गए, तो आपका संकल्प परिवर्तित होता हुआ मालूम पड़ेगा। बहुत बुरे आदमी के पास भी।

अगर एक वेश्या के पास ज़ाते हैं, तो भी फर्क पड़ेगा। एक संत के पास जाते हैं, तो भी फर्क पड़ेगा। क्योंकि उसके संकल्प का वर्तुल, उसके सूक्ष्म शरीर का वर्तुल, उसके स्थूल शरीर के भी बाहर फैला होता है। यह फैलाव बहुत बड़ा भी हो सकता है। इस फैलाव के भीतर आप अचानक पाएंगे कि आपके भीतर कुछ होने लगा, जो आपका नहीं मालूम पड़ता। आप कुछ और तरह के आदमी थे, लेकिन कुछ और हो रहा है भीतर।

तो हमारा संकल्प इतना छोटा भी हो सकता है कि इस शरीर के भीतर भी सिकुड़ जाए, इतना बड़ा भी हो सकता है कि इस शरीर के बाहर भी फैल जाए। वह इतना बड़ा भी हो सकता है कि पूरे ब्रह्मांड को घेर ले। जिन लोगों ने कहा, अहं ब्रह्मास्मि, वह संकल्प के उस क्षण में उन्हें अनुभव हुआ है, जब सारा संकल्प सारे ब्रह्मांड को घेर लेता है। तब चांद-तारे बाहर नहीं, भीतर चलते हुए

मालूम पड़ते हैं। तब सारा अस्तित्व अपने ही भीतर समाया हुआ मालूम पड़ता है। संकल्प इतना भी सिकुड़ जाता है कि आदमी को यह भी पक्का पता नहीं चलता कि मैं जिंदा हूं कि मर गया। इतना भी सिकुड़ जाता है।

इस संकल्प के अति सिकुड़े होने की हालत में ही नास्तिकता का गहरा हमला होता है। संकल्प के फैलाव की स्थिति में ही आस्तिकता का गहरा हमला होता है। संकल्प जितना फैलता है, उतना ही आदमी आस्तिक अनुभव करता है अपने को। क्योंकि अस्तित्व इतना बड़ा हो जाता है कि नास्तिक होने का कोई कारण नहीं रह जाता। संकल्प जब बहुत सिकुड़ जाता है, तो नास्तिक अनुभव करता है। अपने ही पैर डांवाडोल हों, अपना ही अस्तित्व न होने जैसा हो, उस क्षण आस्तिकता नहीं उभर सकती; उस वक्त जीवन के प्रति नहीं का भाव, न का भाव पैदा होता है। नास्तिकता और आस्तिकता मनोवैज्ञानिक सत्य है-मनोवैज्ञानिक।

सिमन वेल ने लिखा है कि तीस साल की उम्र तक मेरे सिर में भारी दर्द था। चौबीस घंटे होता था। तो मै कभी सोच ही नहीं पाई कि परमात्मा हो सकता है। जिसके सिर में चौबीस घंटे दर्द है, उसको बहुत मुश्किल है मानना कि परमात्मा हो सकता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि सिरदर्द जैसी छोटी चीज भी परमात्मा को दरवाजे के बाहर कर सकती है। वह ईश्वर के न होने की बात करती रही। उसे कभी खयाल भी न आया कि ईश्वर के न होने का बहुत गहरा कारण मेडिकल है। उसे खयाल भी नहीं आया कि ईश्वर के न होने का कारण सिरदर्द है। तर्क और दलीलें और नहीं। जिसके सिर में दर्द है, उसके मन से नहीं का भाव उठता है। उसके मन से हां का भाव नहीं उठता। हां के भाव के लिए भीतर बड़ी प्रफुल्लता चाहिए, तब हां का भाव उठता है।

फिर सिरदर्द ठीक हो गया। तब उसे एहसास हुआ कि उसके भीतर से इनकार का भाव कम हो गया है। तब उसे एहसास हुआ कि वह न मालूम किस अनजाने क्षण में नास्तिक से आस्तिक होने लगी।

संकल्प अगर क्षीण है, तो प्रेतात्माएं प्रवेश कर सकती हैं; बुरी प्रेतात्माएं,

जिन्हें हम भूत कहें, प्रवेश कर सकती हैं, क्योंकि वे आतुर हैं। पूरे समय आतुर हैं कि अपना शरीर नहीं है, तो आपके शरीर से ही थोड़ा-सा रस ले लें। और शरीर के रस शरीर के बिना नहीं लिए जा सकते हैं, यह तकलीफ है। शरीर के रस शरीर से ही लिए जा सकते हैं।

अगर एक कामुक आत्मा है, सेक्सुअल आत्मा है और उसके पास अपना शरीर नहीं है, तो सेक्सुअलिटी तो पूरी होती है, शरीर नहीं होता, इंद्रियां नहीं होतीं। अब उसकी पीड़ा आप समझ सकते हैं। उसकी पीड़ा बड़ी मुश्किल की हो गई। चित्त कामुक है, और उपाय बिलकुल नहीं है, शरीर नहीं है पास में। वह किसी के भी शरीर में प्रवेश करके कामवासना को तृप्त करने की चेष्टा कर सकती है।

शुभ आत्माएं आमतौर से प्रवेश नहीं करतीं, जब तक कि आमंत्रित न की जाएं। अनइनवाइटेड उनका प्रवेश नहीं होता। क्योंकि उनके लिए शरीर की कोई आकांक्षा नहीं है। लेकिन इनविटेशन पर, आमंत्रण पर, उनका प्रवेश हो सकता है। आमंत्रण का मतलब इतना ही हुआ कि अगर कोई ऐसी घड़ी हो, जहां उनका उपयोग किया जा सके, जहां वे सहयोगी हों और सेवा दे सकें, तो वे तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं। बुरी आत्मा हमेशा अनइनवाइटेड प्रवेश करती है, घर के पीछे के दरवाजे से; भली आत्मा आमंत्रित होकर प्रवेश कर सकती है।

लेकिन भली आत्माओं का प्रवेश निरंतर कम होता चला गया है, क्योंकि आमंत्रण की विधि खो गई है। और बुरी आत्माओं का प्रवेश बढ़ता चला गया है। क्यों? क्योंकि संकल्प दीन-हीन और नकारात्मक, निगेटिव हो गया है। इसलिए आज पृथ्वी पर देवता की बात करना झूठ है; भूत की बात करना झूठ नहीं है। प्रेत अभी भी अस्तित्ववान हैं; देवता कल्पना हो गए है।

लेकिन देवताओं को बुलाने की, निमंत्रण की विधियां थीं। सारा वेद उन्हीं विधियों से भरा हुआ है। उसके अपने सीक्रेट मैथड्स हैं कि उन्हें कैसे बुलाया जाए, उनसे कैसे तारतम्य, उनसे कैसे कम्युनिकेशन, उनसे कैसे संबंध स्थापित किया जाए, उनसे चेतना कैसे जुड़े। और निश्चित ही, बहुत कुछ है जो उनके द्वारा ही जाना गया है। और इसीलिए उसके लिए आदमी के पास कोई प्रमाण नहीं है।

अब यह जानकर आपको हैरानी होगी कि सात सौ साल पुराना एक पृथ्वी का नक्शा बेरूत में मिला है। सात सौ साल पुराना, पृथ्वी का नक्शा, बेरूत में मिला है। वह नक्शा ऐसा है, जो बिना हवाई जहाज के नहीं बनाया जा सकता। जिसके लिए हवाई जहाज की ऊंचाई पर उड़कर पृथ्वी देखी जाए, तो ही बनाया जा सकता है। लेकिन सात सौ साल पहले हवाई जहाज ही नहीं था। इसलिए बड़ी मुश्किल में वैज्ञानिक पड़ गए है उस नक्शे को पाकर। बहुत कोशिश की गई कि सिद्ध हो जाए कि वह नक्शा सात सौ साल पुराना नही है, लेकिन सिद्ध करना मुश्किल हुआ। वह कागज सात सौ साल पुराना है। वह स्याही सात सौ साल पुरानी है। वह भाषा सात सौ साल पुरानी है। जिन दीमको ने उस कागज को खा लिया है, वे छेद भी पांच सौ साल पुराने है। लेकिन वह नक्शा बिना हवाई जहाज के नही बन सकता।

तो एक तो रास्ता यह है कि सात सौ साल पहले हवाई जहाज रहा हो, जो कि ठीक नही है। सात हजार साल पहले रहा हो, इसकी संभावना है; सात सौ साल पहले रहा हो, इसकी संभावना नही है। क्योंकि सात सौ साल बहुत लंबा फासला नही है। सात सौ साल पहले हवाई जहाज रहा हो और बाइसिकल न रही हो, यह नही हो सकता। क्योकि हवाई जहाज एकदम से आसमान से नही बनते। उनकी यात्रा है-बाइसिकल है, कार है, रेल है, तब हवाई जहाज बन पाता है। ऐसा एकदम से टपक नही जाता आसमान से। तो एक तो रास्ता यह है कि हवाई जहाज रहा हो, जो कि सात सौ साल पहले नही था।

दूसरा रास्ता यह है कि अंतरिक्ष के यात्री आए हो-जैसा कि एक रूसी वैज्ञानिक ने सिद्ध करने की कोशिश की है-कि किसी दूसरे प्लेनेट से कोई यात्री आए हो और उन्होने यह नक्शा दिया हो। लेकिन दूसरे प्लेनेट से यात्री सात सौ साल पहले आए हो, यह भी संभव नही है। सात हजार साल पहले आए हो, यह संभव है। क्योंकि सात सौ साल बहुत लंबी बात नहीं है। इतिहास के घेरे की बात है। हमारे पास कम से कम दो हजार साल का तो सुनिश्चित इतिहास है। उसके पहले का इतिहास नही है। इसलिए इतनी बड़ी घटना सात सौ साल पहले घटी हो

कि अंतरिक्ष से यात्री आए हों और उसका एक भी उल्लेख न हो, जब कि सात सौ साल पहले की किताबें पूरी तरह उपलब्ध हैं, संभव नहीं है।

मैं तीसरा सुझाव देता हूं, जो अब तक नहीं दिया गया। और वह सुझाव मेरा यह है कि यह जो नक्शे की खबर है, यह किसी आत्मा के द्वारा दी गई खबर है, जो किसी व्यक्ति में इनवाइटेड हुई। जो किसी व्यक्ति के द्वारा बोली।

पृथ्वी गोल है, यह तो पश्चिम में अभी पता चला। ज्यादा समय नहीं हुआ, अभी कोई तीन सौ साल। लेकिन हमारे पास भूगोल शब्द हजारों साल पुराना है। तब भूगोल जिन्होंने शब्द गढ़ा होगा, उनको पृथ्वी गोल नहीं है, ऐसा पता रहा हो, नहीं कहा जा सकता। नहीं तो भूगोल शब्द कैसे गढ़ेंगे! लेकिन आदमी के पास-जमीन गोल है-इसको जानने के साधन बहुत मुश्किल मालूम पड़ते हैं। सिवाय इसके कि यह संदेश कहीं से उपलब्ध हुआ हो।

आदमी के ज्ञान में बहुत-सी बातें हैं, जिनकी कि प्रयोगशालाएं नहीं थीं, जिनका कि कोई उपाय नहीं था। जैसे कि लुकमान के संबंध में कथा है। और अब तो वैज्ञानिक को भी संदेह होने लगा है कि कथा ठीक होनी चाहिए।

लुकमान के संबंध में कथा है कि उसने पौधों से जाकर पूछा कि बता दो, तुम किस बीमारी में काम आ सकते हो? पौधे बताते हुए मालूम नहीं पड़ते। लेकिन दूसरी बात भी मुश्किल मालूम पड़ती है कि लाखों पौधों के संबंध में लुकमान ने जो खबर दी है, वह इतनी सही है, कि या तो लुकमान की उम्र लाखों साल रही हो और लुकमान के पास आज से भी ज्यादा विकसित फार्मेसी की प्रयोगशालाएं रही हों, तब वह जांच कर पाए कि कौन-सा पौधा किस बीमारी में काम आता है। लेकिन लुकमान की उम्र लाखों साल नहीं है। और लुकमान के पास कोई प्रयोगशाला की खबर नहीं है। लुकमान तो अपना झोला लिए जंगलों में घूम रहा है और पौधों से पूछ रहा है। पौधे बता सकेंगे?

मेरी अपनी समझ और है। पौधे तो नहीं बता सकते, लेकिन शुभ आत्माएं पौधों के संबंध में खबर दे सकती हैं। बीच में मीडिएटर कोई आत्मा काम कर रही है, जो पौधों की बाबत खबर दे सकती है कि यह पौधा इस काम में आ जाएगा।

अब यह बड़े मजे की बात है, जैसे कि हमारे मुल्क में आयुर्वेद की सारी खोज बहुत गहरे में प्रयोगात्मक नहीं है, बहुत गहरे में देवताओं के द्वारा दी गई सूचनाओ पर निर्भर है। इसलिए आयुर्वेद की कोई दवा आज भी प्रयोगशाला में सिद्ध होती है कि ठीक है। लेकिन हमारे पास कभी कोई बड़ी प्रयोगशाला नहीं थी, जिसमें हमने उसको सिद्ध किया हो।

जैसे सर्पगंधा है। अब आज हमको पता चला कि वह सच में ही, सुश्रुत से लेकर अब तक सर्पगंधा के लिए जो खयाल था, वह ठीक साबित हुआ। लेकिन अब पश्चिम में सर्पेटीना-सर्पगंधा का रूप है वह-अब वह भारी उपयोग की चीज हो गई है। पागलों के इलाज के लिए अनिवार्य चीज हो गई है। लेकिन यह सर्पगंधा का पता कैसे चला होगा? क्योंकि आज तो पश्चिम के पास प्रयोगशाला है, जिसमें सर्पगंधा की केमिकल एनालिसिस हो सकती है। लेकिन हमारे पास ऐसी कोई प्रयोगशाला थी, इसकी खबर नहीं मिलती। यह सर्पगंधा की खबर, आमंत्रित आत्माओं से मिली हुई खबर है। और बहुत देर नहीं है कि हमें आमंत्रित आत्माओं के उपयोग फिर खोजने पड़ेंगे।

इसलिए आज जब आप वेद को पढ़ें, तो कपोल-कल्पना हो जाती है, झूठ मालूम पड़ता है कि क्या बातचीत कर रहे हैं ये-इंद्र आओ, वरुण आओ, फलां आओ, ढिकां आओ। और इस तरह बात कर रहे हैं कि जैसे सच में आ रहे हों। और फिर इंद्र को भेंट भी कर रहे हैं, इंद्र से प्रार्थना भी कर रहे है। और इतने बड़े वेद में कहीं भी एक जगह कोई ऐसी बात नहीं मालूम पड़ती कि कोई एक भी आदमी शक कर रहा हो कि क्या पागलपन की बात कर रहे हो! किससे बात कर रहे हो! देवता, वेद के समय में बिलकुल जमीन पर चलते हुए मालूम पड़ते हैं।

निमंत्रण की विधि थी। सब हवन, यज्ञ बहुत गहरे में निमंत्रण की विधियां हैं, इनविटेशंस हैं, इनवोकेशंस हैं। उसकी बात तो कहीं आगे होगी, तो बात कर लेंगे।

लेकिन यह जो आपने पूछा, तो सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीर से मुक्त रहकर प्रेत और देव दिखाई पड़ता है।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।। 26।।

और यदि तू इसको सदा जन्मने और सदा मरने वाला माने, तो भी हे अर्जुन, इस प्रकार शोक करना योग्य नहीं है।

कृष्ण का यह वचन बहुत अदभुत है। यह कृष्ण अपनी तरफ से नहीं बोलते, यह अर्जुन की मजबूरी देखकर कहते हैं। कृष्ण कहते हैं, लेकिन तुम कैसे समझ पाओगे कि आत्मा अमर है? तुम कैसे जान पाओगे इस क्षण में कि आत्मा अमर है? छोड़ो, तुम यही मान लो, जैसा कि तुम्हें मानना सुगम होगा कि आत्मा मर जाती है, सब समाप्त हो जाता है। लेकिन महाबाहो! कृष्ण कहते हैं अर्जुन से, अगर ऐसा ही तुम मानते हो, तब भी मृत्यु के लिए सोच करना व्यर्थ हो जाता है। जो मिट ही जाता है, उसको मिटाने में इतनी चिंता क्या है? जो मिट ही जाएगा-तुम नहीं मिटाओगे तो भी मिट जाएगा-उसको मिटाने में इतने परेशान क्यों हो? और जो मिट ही जाता है, उसमें हिंसा कैसी?

एक यंत्र को तोड़ते वक्त तो हम नहीं कहते कि हिंसा हो गई। एक घड़ी को फोड़ दें पत्थर पर पटककर, तब तो नहीं कहते कि हिंसा हो गई, तब तो हम नहीं कहते कि बड़ा पाप हो गया! क्यों? क्योंकि कुछ भी तो नहीं था घड़ी में, जो न मिटने वाला हो।

तो कृष्ण कहते हैं, जो मिट ही जाने वाले यंत्र की भांति हैं, जिनमें कोई अजर, अमर तत्व ही नहीं है, तो मिटा दो इन यंत्रों को, हर्ज क्या है? फिर चिंतित क्यों होते हो? और कल तुम भी मिट जाओगे, तो किस पर लगेगा पाप? कौन होगा भागीदार पाप का? कौन भोगेगा? कौन किसी यात्रा पर तुम जा रहे हो, जहां कि इनको मारने का जिम्मा और रिस्पांसिबिलिटी तुम्हारी होने को है? तुम भी नहीं बचोगे। ये भी मर जाएंगे, तुम भी मर जाओगे; डस्ट अनटु डस्ट, धूल धूल में गिर जाएगी। तो चिंता क्या करते हो?

लेकिन ध्यान रहे, यह कृष्ण अपनी तरफ से नहीं बोलते। कृष्ण इतनी बात

कहकर अर्जुन की आंखों में देखते होंगे, कुछ परिणाम नहीं होता है। परिणाम आसान भी नहीं है। आपकी आंखों में देखूं, तो जानता हूं कि नहीं होता है।

आत्मा अमर है, सुनने से नहीं होता है कुछ। देखा होगा कृष्ण ने कि वह अर्जुन वैसा ही निढाल बैठा है। ये बातें उसके सिर पर से गुजर जाती है। सुनता है कि आत्मा अमर है, लेकिन उसकी चिंता में कोई अंतर नहीं पड़ता। तो कृष्ण यह वचन मजबूरी में अर्जुन की तरफ से बोलते है। वे कहते है, छोड़ो, मुझे छोड़ो। मै जो कहता हूं, उसे जाने दो। फिर ऐसा ही मान लो, तुम जो कहते हो, वही ठीक है। लेकिन ध्यान रहे, वे कहते है, ऐसा ही मान लो, लेट अस सपोज। कहते हैं, ऐसा ही स्वीकार कर लेते है। तुम जो कहते हो, वही मान लेते है कि आत्मा मर जाती है, तो फिर तुम चिंता कैसे कर रहे हो? फिर चिता का कोई भी कारण नही। फिर धूल धूल में गिर जाएगी। मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। पानी पानी में खो जाएगा। आग आग मे लीन हो जाएगी। आकाश आकाश में तिरोहित हो जाएगा। फिर चिता कैसी?

यह अर्जुन के ही तर्क से, अर्जुन की ही ओर से कृष्ण कोशिश करते है। यह कृष्ण का वक्तव्य बताता है कि अर्जुन को देखकर कैसी निराशा उन्हें न हुई होगी। यह वक्तव्य बहुत मजबूरी मे दिया हुआ वक्तव्य है। यह वक्तव्य खबर देता है कि अर्जुन बैठा सुनता रहा होगा। फिर भी उसकी आंखों में वही प्रश्न रहे होगे, वही चिंता रही होगी, वही उदासी रही होगी। सुन लिया होगा उसने और कुछ भी नही सुना होगा।

इस वक्त जीसस का मुझे स्मरण आता है। जीसस ने कहा है, कान है तुम्हारे पास, लेकिन तुम सुनते कहां! आंख है तुम्हारे पास, लेकिन तुम देखते कहां!

कृष्ण को ऐसा ही लगा होगा। नहीं सुन रहा है, नहीं सुन रहा है, नहीं समझ रहा है। बात भी सुनने और समझने से आने वाली कहां है! कसूर भी उसका क्या है! बात अस्तित्वगत है, बात अनुभूतिगत है। मात्र सुनने से कैसे समझ में आ जाएगी?

नहीं, अभी कृष्ण को और मेहनत लेनी पड़ेगी। और-और आयामों

से दरवाजे उसके खटखटाने पड़ेंगे। अभी तक वे जो कह रहे थे, पर्वत के शिखर से कह रहे थे। अब वे अंधेरी गली का तर्क ही अंधेरी गली के लिए उपयोग कर रहे हैं।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।। 27।।
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। 28।।

क्योंकि ऐसा होने से तो जन्मने वाले की निश्चित मृत्यु और मरने वाले का निश्चित जन्म होना सिद्ध हुआ। इससे भी तू इस बिना उपाय वाले विषय में शोक करने को योग्य नहीं है। (और यह भीष्मादिकों के शरीर मायामय होने से अनित्य हैं, इससे शरीरों के लिए शोक करना उचित नहीं है, क्योंकि) हे अर्जुन, संपूर्ण प्राणी जन्म से पहले बिना शरीर वाले और मरने के बाद भी बिना शरीर वाले ही है।

केवल बीच में ही शरीर वाले (प्रतीत होते) है।

फिर उस विषय में क्या चिंता है?

खयाल आपको आया होगा कि कृष्ण जब अपनी तरफ से बोल रहे थे, तब उन्होंने अर्जुन को मूर्ख भी कहा। जब वे अपनी सतह से बोल रहे थे, तब अर्जुन को मूढ़ कहने में भी उन्हें कठिनाई न हुई। लेकिन जब वे अर्जुन की तरफ से बोल रहे हैं, तब उसे महाबाहो, भारत...तब उसे बड़ी प्रतिष्ठा दे रहे है, बड़े औपचारिक शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। जब अपनी तरफ से बोल रहे थे, तब उसे निपट मूढ़ कहा, कि तू निपट गंवार है, तू बिलकुल मूढ़ है, तू बिलकुल मंद-बुद्धि है। लेकिन अब उसी मंद-बुद्धि अर्जुन को वे कहते हैं, हे महाबाहो!

अब उसकी ही जगह उतरकर बात कर रहे हैं। अब ठीक उसके कंधे पर हाथ रखकर बात कर रहे हैं। अब ठीक मित्र जैसे बात कर रहे है। क्योंकि इतनी बात से लगा है कि जिस शिखर की उन्होंने बात कही, वह उसकी पकड़ में शायद नहीं आती। बहुत बार ऐसा हुआ है।

मोहम्मद ने कहा है कि मैं वैसा कुआं नहीं हूं कि अगर तुम मेरे पास पानी पीने न आओ, तो मैं तुम्हारे पास न आऊं। अगर तुम मोहम्मद के पास न आओगे, तो मोहम्मद तुम्हारे पास आएगा। और अगर प्यासा कुएं के पास न आएगा, तो कुआं ही प्यासे के पास जाएगा।

कृष्ण अर्जुन के पास वापस आकर खड़े हो गए हैं। ठीक वहीं खड़े थे, भौतिक शरीर तो वहीं खड़ा था पूरे समय, लेकिन पहले वे बोल रहे थे बहुत ऊंचाई से। वहां से, जहां आलोकित शिखर है। तब वे अर्जुन को कह सके, तू नासमझ है। अब वे अर्जुन को कह रहे हैं कि तेरी समझ ठीक है। तू अपनी ही समझ का उपयोग कर। अब मैं तेरी समझ से ही कहता हूं।

लेकिन अब वे जो कह रहे हैं, वह सिर्फ तर्क और दलील की बात है। क्योंकि जो अनुभव को न पकड़ पाए, फिर उसके लिए तर्क और दलील के अतिरिक्त पकड़ने को कुछ भी नहीं रह जाता; कोई उपाय नहीं रह जाता। जो तर्क और दलील को ही पकड़ पाए, तो फिर तर्क और दलील की ही बात कहनी पड़ती है। लेकिन उस बात में प्राण नहीं है, वह बल नहीं है। वह बल हो नहीं सकता। क्योंकि कृष्ण जानते हैं कि वे जो कह रहे हैं, अब सिर्फ तर्क है, अब सिर्फ दलील है। अब वे यह कह रहे हैं कि तुझे ही ठीक मान लेते हैं। लेकिन यह जो शरीर बना है, जिन भौतिक तत्वों से, जिस माया से, खो जाएगा उसमें। विद्वान पुरुष इसके लिए चिंता नहीं किया करते।

विद्वान और ज्ञानी के फर्क को भी ठीक से समझ लेना चाहिए। क्योंकि पहले कृष्ण पूरे समय कह रहे हैं कि जो ऐसा जान लेता है, वह ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन अब वे कह रहे हैं-ज्ञानी नहीं-अब वे कह रहे हैं, विद्वान पुरुष चिंता को उपलब्ध नहीं होते। विद्वान का वह तल नहीं है, जो ज्ञानी का है। विद्वान तर्क के तल पर जीता है, युक्ति के तल पर जीता है। ज्ञानी अनुभूति के तल पर जीता है। ज्ञानी जानता है, विद्वान सोचता है।

लेकिन यही सही, कृष्ण कहते हैं, नहीं ज्ञानी होने की तैयारी तेरी, तो विद्वान ही हो जा। सोच मत कर, चिंता मत कर। क्योंकि सीधी-सी बात है कि

जब सब खो ही जाता है, इतना तो तू सोच ही सकतां है, यह तो विचार में ही आ जाता है कि सब खो जाता है, सब मिट जाता है, तो फिर चिंता मत कर, मिट जाने दे। तू बचाएगा कैसे? तू बचा कैसे सकेगा? तो जो अपरिहार्य है-दैट व्हिच इज़ इनएविटेबल-जो अपरिहार्य हैं, जो होगा ही, होकर ही रहेगा, उसमें तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त है, अपने को निमित्त समझ ले। विद्वान हो जा, चिंता से मुक्त हो।

लेकिन इसे समझ लेना। कृष्ण ने जब अर्जुन को मूढ़ भी कहा, तब भी इतना अपमान न था, जितना अब विद्वान होने के लिए कहकर हो गया है। मूढ़ कहा, तब तक भरोसा था उस पर अभी। अभी आशा थी कि उसे खींचा जा सकता है शिखर पर। उसे देखकर वह आशा छूटती है। अब वे उसे प्रलोभन दे रहे हैं विद्वान होने का। वे कह रहे हैं कि कम से कम, बुद्धिमान तो तू है ही। और बुद्धिमान पुरुष को चिंता का कोई कारण नहीं, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ऐसा मानकर चलता है कि सब चीजें बनी हैं, मिट जाती हैं। कुछ बचता ही नहीं है पीछे, बात समाप्त हो जाती है।

रास्ते में मैं आ रहा था, तो मेरे जो सारथी थे यहां लाने वाले, वे कहने लगे कि कृष्ण बड़ा अपमान करते हैं अर्जुन का! कभी मूर्ख कहते हैं, कभी नपुंसक कह देते है उसको; यह बात ठीक नहीं है।

अब वे बड़ा सम्मान कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, हे महाबाहो, हे भारत, विद्वान पुरुष शोक से मुक्त हो जाते हैं। तू भी विद्वान है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अपमान अब हो रहा है। जब उसे मूढ़ कहा था, तो बड़ी आशा से कहा था कि शायद यह चिनगारी, शायद यह चोट...वह ठीक शॉक ट्रीटमेंट था। वह बेकार चला गया। वह ठीक शॉक ट्रीटमेंट था, बड़ा धक्का था। अर्जुन को काफी क्रोध चढ़ा देते हैं वे। लेकिन उसको क्रोध भी नहीं चढ़ा। उसे सुनाई ही नहीं पड़ा कि वे क्या कह रहे हैं। वह अपनी ही रटे चला जाता है। तब वे अब, अब यह बिलकुल निराश हालत में कृष्ण कह रहे हैं।

ऐसे बहुत उतार-चढ़ाव गीता में चलेंगे। कभी आशा बनती है कृष्ण को, तो ऊंची बात कहते हैं। कभी निराशा आ जाती है, तो फिर नीचे उतर आते हैं।

इसलिए कृष्ण भी इसमें जो बहुत-सी बातें कहते हैं, वे एक ही तल पर कही गई नहीं हैं। कृष्ण भी चेतना के बहुत से सोपानों पर बात करते हैं। कहीं से भी-लेकिन अथक चेष्टा करते हैं कि अर्जुन कहीं से भी-कहीं से भी उस यात्रा पर निकल जाए, जो अमृत और प्रकाश को उसके अनुभव में ला दे।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।। 29।।

और हे अर्जुन, यह आत्मतत्व बड़ा गहन है, इसलिए कोई (महापुरुष) ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्य की तरह इसके तत्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानता।

बड़ी अदभुत बात है। एक तो कृष्ण कहते हैं, इस आत्मा की दिशा में किसी भी मार्ग से गति करने वाला एक आश्चर्य है-एक मिरेकल, एक चमत्कार। किसी भी दिशा से उन्मुख होने वाला आत्मा की तरफ-एक चमत्कार है। क्योंकि करोड़ों-करोड़ों में कभी कोई एक उस ऊंचाई की तरफ आंख उठाता है। अन्यथा हमारी आंखें तो जमीन में गड़ी रह जाती हैं, आकाश की तरफ कभी उठती ही नहीं। नीचाइयों में उलझी रह जाती हैं, ऊंचाइयों की तरफ हमारी आंख की कभी उड़ान नहीं होती। कभी हम पंख नहीं फैलाते आकाश की तरफ। कभी करोड़ों-करोड़ों में कोई एक आदमी...।

इस जगत में सबसे बड़ा आश्चर्य शायद यही है कि कभी कोई आदमी स्वयं को जानने के लिए आतुर और पिपासु होता है। होना नहीं चाहिए ऐसा; लेकिन है ऐसा। मैं कौन हूं? यह कोई पूछता ही नहीं। होना तो यह चाहिए कि यह बुनियादी प्रश्न होना चाहिए प्रत्येक के लिए। क्योंकि जिसने अभी यह भी नहीं

पूछा कि मै कौन हूं, उसके और किसी बात के पूछने का क्या अर्थ है! और जिसने अभी यह भी नहीं जाना कि मैं कौन हूं, वह और जानने निकल पड़ा है? जिसका खुद का घर अंधेरे से भरा है, जिसने वहां भी दीया नहीं जलाया, उससे ज्यादा आश्चर्य का आदमी नहीं होना चाहिए।

लेकिन कृष्ण बड़ा व्यंग्य करते है, वे बड़ी मजाक करते है; बहुत आयरानिकल स्टेटमेंट है। वे यह कहते है कि अर्जुन, बड़े आश्चर्य की बात है कि कभी करोड़ों-करोड़ो में कोई एक आदमी आत्मा के संबंध में खोज पर, जानने पर निकलता है। लेकिन पीछे और एक मजेदार बात कहते है।

वे कहते है, लेकिन वह आत्मा सोचने-समझने, मनन से नहीं उपलब्ध होता है; विचार से नही उपलब्ध होता है। एक तो यही आश्चर्य है कि मुश्किल से कभी कोई उसके संबंध में विचार करता है। लेकिन विचार करने वाला भी उसे पा नहीं लेता है। पाता तो उसे वही है, जो विचार करते-करते विचार का भी अतिक्रमण कर जाता है। जो विचार करते-करते वहां पहुंच जाता है, जहां विचार कह देता है कि बस, अब आगे मेरी गति नहीं है।

एक तो करोड़ों में कभी कोई विचार शुरू करता है। और फिर उन करोड़ो में, जो विचार करते है, कभी कोई एक विचार की सीमा के आगे जाता है। और विचार की सीमा के आगे जाए बिना, उसका कोई अनुभव नहीं है। क्योंकि आत्मा का होना विचार के पूर्व है। आत्मा विचार के पीछे और पार है। विचार आत्मा के ऊपर उठी हुई लहरें हैं, तरंगें है। विचार आत्मा की सतह पर दौड़ते हुए हवा के झोंके हैं। विचार से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। आत्मा से विचारों को जाना जा सकता है। क्योंकि विचार ऊपर हैं, आत्मा पीछे है। विचार को आत्मा से जाना सकता है, विचार से आत्मा को नहीं जाना जा सकता। मैं अपने हाथ से इस रूमाल को पकड़ सकता हूं। लेकिन इस रूमाल से अपने हाथ को नहीं पकड़ सकता। हाथ पीछे है। विचार बहुत ऊपर है।

एक जगत है हमारे बाहर, वस्तुओं का; वह बाहर है। फिर एक जगत है हमारे भीतर, विचारों का; लेकिन वह भी बाहर है। हम उसके भी पीछे हैं। हमारे

बिना वह नहीं हो सकता। हम उसके बिना भी हो सकते हैं। रात जब बहुत गहरी नींद में सो गए होते हैं-सुषुप्ति में-तब कोई विचार नहीं रह जाता, लेकिन आप होते हैं। सुबह कहते है, स्वप्न भी नहीं था, विचार भी नहीं था, बड़ी गहरी थी नींद। लेकिन आप तो थे। विचार के बिना आप हो सकते हैं, लेकिन कभी आपका विचार आपके बिना नहीं हो सकता। वह जो पीछे है, वह विचार को जान सकता है, लेकिन विचार उसे नहीं जान सकते।

लेकिन हम विचार से ही जानने की कोशिश करते है। पहले तो हम जानने की कोशिश ही नहीं करते। वस्तुओं को जानने की कोशिश करते है। वस्तुओं से किसी तरह करोड़ों में एक का छुटकारा होता है, तो विचारों में उलझ जाता है। क्योंकि वस्तुओं के बाद विचारों का जगत है। विचार से भी किसी का छुटकारा हो, तो स्वयं को जान पाता है।

तो कृष्ण कहते है, चिंतन से, मनन से, अध्ययन से, प्रवचन से उसे नहीं जाना जा सकता। एक और मजे की बात उन्होंने इसमे कही है कि आश्चर्य है कि कोई आत्मा के संबंध में समझाए, उपदेश दे।

पहली तो बात इसलिए आश्चर्य है कि कोई आत्मा के संबंध में उपदेश दे, क्योंकि आत्मा किसी की भी आवश्यकता नही है; उपदेश सुनेगा कौन? नो वन्स नेसेसिटी। बाजार में वही चीज बिक सकती है, जो किसी की जरूरत हो। आत्मा किसी की भी जरूरत नहीं है। इसलिए जो आत्मा के संबंध में उपदेश देने की हिम्मत करता है, बिलकुल पागल आदमी है। कोई जिस चीज को लेने को तैयार नहीं, उसको बेचने निकल पड़े!

वह कृष्ण को खुद भी समझ में आ रहा होगा कि अर्जुन की जो मांग नहीं, जो उसकी डिमांड नहीं, वे उसकी सप्लाई कर रहे हैं। वह बेचारा कुछ और मांग रहा है। वह मांग रहा है एस्केप, वह मांग रहा है पलायन, वह मांग रहा है कंसोलेशन, वह मांग रहा है सांत्वना। वह कह रहा है, मुझे किसी तरह बचाओ, निकालो इस चक्कर से। वह आत्मा वगैरह की बात ही नहीं कर रहा है। वह किसी की जरूरत नहीं है। इसलिए आश्चर्य है कि कभी कोई आदमी आत्मा को बेचने निकल जाता है!

पर कुछ लोग सनकी होते हैं, आत्मा को भी समझाने लगते हैं। एक तो यह आश्चर्य है कि कोई समझने को जिसे तैयार नहीं है...।

अभी मैंने पढ़ा, एक ईसाई बिशप का मैं जीवन पढ़ रहा था। कीमती आदमी था। सारे योरोप के ईसाई पादरियों का एक सम्मेलन था। तो उस बिशप ने उस पादरियों के सम्मेलन में यह कहा, उनसे पूछा कि मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि चर्चों में जब तुम बोलते हो, तो लोग सिर्फ ऊबे हुए मालूम पड़ते है; बोर मालूम पड़ते हैं। अधिक तो सोए मालूम पड़ते है। कोई रस लेता नहीं मालूम पड़ता। और लोग बार-बार घड़ी देखते मालूम पड़ते है। कारण क्या है? उत्तर वे बिशप नहीं दे सके, जो इकट्ठे थे। तब जिसने पूछा था, उस फकीर ने खुद ही कहा कि मैं समझता हूं कि कारण यह है कि तुम उन प्रश्नों के उत्तर दे रहे हो, जो कोई पूछता ही नहीं है, जो किसी के प्रश्न ही नहीं है।

पहला तो आश्चर्य कि कोई आत्मा को समझाने निकलने की हिम्मत करे, करेजियस है मामला कि कोई आत्मा की दुकान खोले, कोई ग्राहक मिलने की उम्मीद नहीं होनी चाहिए। और दूसरा इस कारण भी आश्चर्य है कि आत्मा ऐसा तत्व है, जो समझाया नहीं जा सकता। कोई उपाय जिसे समझाने का नहीं है।

इसलिए कृष्ण या कबीर या बुद्ध या मोहम्मद या नानक, इनकी तकलीफ, इनकी उलझन बड़ी गहरी है। कुछ इन्होंने जाना है, जो ये चाहेंगे कि सबको जना दें। जो ये चाहेंगे कि जो इन्हें मिला है, वह सबको मिल जाए। जो आनंद की वर्षा और जो अमृत का सागर इनमें उतर आया है, सब में उतर आए। लेकिन समझाने की बड़ी मुश्किल है। शब्द बेकार है। जिसे विचार से जाना नहीं, उसे विचार से कहेंगे कैसे! और जिसे शब्द छोड़कर जाना, उसे शब्द से प्रकट कैसे करेंगे! तो आश्चर्य इसलिए भी है कि वह कहा नहीं जा सकता, फिर भी कहना ही पड़ेगा, फिर भी कहना ही पड़ा है।

इसलिए एक और एब्सर्ड, बिलकुल असंगत सी घटना दुनिया में घटी कि बुद्ध कहते हैं, कहा नहीं जा सकता; और जितना बुद्ध बोलते हैं, उतना कोई आदमी नहीं बोलता। और कृष्ण कहते हैं, समझाया नहीं जा सकता; और समझाए

चले जा रहे हैं। और महावीर कहते हैं, वाणी के बाहर है, शब्द के बाहर है; लेकिन यह भी तो वाणी से और शब्द से ही कहना पड़ता है।

विट्गिंस्टीन ने अपने टेक्स्टेटस में एक वाक्य लिखा है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट नाट बी सेड-जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं ही कहना चाहिए। लेकिन विट्गिंस्टीन की बात अगर कृष्ण, बुद्ध और महावीर मान लें, तो यह दुनिया बहुत गरीब होती, यह बहुत दीन और दरिद्र होती।

तो मैं तो कहना चाहूंगा, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट बी सेड-जो नहीं कहा जा सकता, उसे भी कहना ही चाहिए। नहीं कहा जा सकेगा, यह पक्का है! लेकिन नहीं कह सकने की तकलीफ में भी कुछ संवेदित हो जाएगा, कुछ कम्युनिकेट हो जाएगा। नहीं कहा जा सकता, इस मुसीबत में भी कोई चीज शब्दों के बाहर और शब्दों के पार और पंक्तियों के बीच में निवेदित हो जाएगी। उसी की चेष्टा चल रही है।

संगीत वही नहीं है, जो स्वरों में होता है; संगीत वह भी है, जो दो स्वरों के बीच के मौन में होता है। वही नहीं कहा जाता, जो शब्दों में कहा जाता है; वह भी कहा जाता है, जो दो शब्दों के बीच के साइलेंस में, शून्य में होता है। वही नहीं सुना जाता, जो शब्द से सुना जाता है; वह भी सुना जा सकता है, जो शब्द के बाहर, इर्द-गिर्द, आस-पास छूट जाता है।

तो कृष्ण कह रहे हैं, मिरेकल है, चमत्कार है।

शेष सांझ बात करेंगे।

•••

दसवां प्रवचन

जीवन की परम धन्यता-स्वधर्म की पूर्णता में

प्रश्न : अट्ठाइसवें श्लोक पर सुबह बात हुई-

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना।।

इसमें कहा गया है कि आदि में अप्रकट, अंत में अप्रकट और मध्य में प्रकट है जो, तो यह जो मैनिफेस्टेड है, प्रकट है, इसमें ही द्वैतता का अनुभव होता है। और जो अप्रकट है, उसमें अद्वैत का दर्शन किया जाता है। तो यह जो मध्य में मैनिफेस्टेड है, उसमें जो द्वैतता है, डुअलिज्म है, उसका परिहार करने के लिए आप कोई विशेष प्रक्रिया का सूचना देंगे?

अव्यक्त है प्रारंभ में, अव्यक्त है अंत में; मध्य में व्यक्त का जगत है।

जिब्रान ने कहीं कहा है, एक रात, अंधेरी अमावस की रात में, एक छोटे-से झोपड़े में बैठा था, मिट्टी का एक दीया जलाकर। टिमटिमाती थोड़ी-सी रोशनी

थी। द्वार के बाहर भी अंधकार था। भवन के पीछे के द्वार के बाहर भी अंधकार था। सब ओर अंधकार था। केवल उस छोटे-से झोपड़े में उस दीए की थोड़ी-सी रोशनी थी। और एक रात का पक्षी फड़फड़ाता हुआ झोपड़े के द्वार से प्रविष्ट हुआ, उसने दो या तीन चक्कर झोपड़े के भीतर टिमटिमाती रोशनी में लगाए, और पीछे के द्वार से बाहर हो गया। जिब्रान ने उस रात अपनी डायरी में लिखा कि उस पक्षी को अंधेरे से प्रकाश में दो क्षण के लिए आते देखकर, फिर प्रकाश में दो क्षण फड़फड़ाते देखकर और फिर गहन अंधकार में खो जाते देखकर मुझे लगा कि जीवन भी ऐसा ही है।

अव्यक्त है प्रारंभ में, अव्यक्त है बाद में; दो क्षण की व्यक्त की फड़फड़ाहट है। दो क्षण के लिए वह जो मैनिफेस्टेड है, वह जो प्रकट है, उसमें फूल खिलते है, पत्ते आते है, जीवन हंसता है, रोता है और फिर खो जाता है। अव्यक्त में अद्वैत है-पहले भी, अंत में भी, दोनों ओर। मध्य में द्वैत है; द्वैत ही नहीं है, अनेकत्व है। दो ही नहीं हैं, अनेक हैं। सब चीजें पृथक-पृथक मालूम होती हैं।

तो पूछ रहे है कि उस अपृथक को, उस अभिन्न को, उस एक को, उस अद्वय को, उस मूल को और आदि को, मध्य के इन व्यक्त क्षणों में जानने का क्या कोई प्रयोग है?

निश्चित ही है।

एक वृक्ष के नीचे खड़े हैं। पत्ते हवाओं में हिल रहे हैं। सूरज की रोशनी में पत्ते चमक रहे हैं। एक-एक पत्ता अलग-अलग मालूम होता है। और अगर पत्ते सचेतन हो जाएं, अगर एक-एक पत्ता होश से भर जाए, तो सोच भी न पाएगा कि साथ का जो पड़ोसी पत्ता है, वह और मैं कहीं एक हैं, कहीं नीचे शाखा पर जुड़े हैं। पड़ोस में हिलते हुए पत्ते को देखकर जागा हुआ, होश में आ गया पत्ता सोचेगा, कोई पराया है।

सोचना ठीक भी है; तर्कयुक्त भी है। क्योंकि पड़ोस में कोई पत्ता बूढ़ा हो रहा है और यह पत्ता तो अभी जवान है। अगर ये दोनों एक होते, तो दोनों एक साथ बूढ़े हो गए होते। पड़ोस में कोई पत्ता गिरने के करीब है, पीला होकर

सूखकर गिर रहा है। गिर गया है कोई, जमीन पर सूखा पड़ा है, हवाओं में उड़ रहा है। अगर वह इस पत्ते से एक होता, तो वह वृक्ष पर और जिससे एक है, वह पृथ्वी पर कैसे हो सकता था! वह हरा है, कोई सूख गया है। वह जवान है, कोई बूढ़ा हो गया है। कोई अभी बच्चा है, किसी की अभी कोंपल फूटती है। उस पत्ते का सोचना ठीक ही है कि वह अलग है।

लेकिन काश! यह पत्ता बाहर से न देखे। अभी बाहर से देख रहा है, देख रहा है दूसरे पत्ते को। काश! यह पत्ता अपने भीतर देख सके और भीतर उतरे, तो क्या बहुत दूर वह रस-धार है, जहां से ये दोनों पत्ते जुड़े हैं! वह भी जो बूढ़ा, वह भी जो जवान; वह भी जो आ रहा है, वह भी जो जा रहा है; क्या वह रस-धार बहुत दूर है? यह पत्ता अपने भीतर उतरे, स्वयं में उतरे, तो उस शाखा को जरूर ही देख पाएगा, जान पाएगा, जहां से सब पत्ते निकले हैं।

लेकिन फिर वह शाखा भी समझ सकती है कि दूसरी शाखा से अन्य है, भिन्न है। वह शाखा भी भीतर उतरे, तो उस वृक्ष को खोज लेने में बहुत कठिनाई नहीं है, जहां सभी शाखाएं जुड़ी हैं। लेकिन वह वृक्ष भी सोच सकता है कि पड़ोस में खड़ा हुआ वृक्ष और है, अन्य है। लेकिन वह वृक्ष भी नीचे उतरे, तो क्या उस पृथ्वी को खोजना बहुत कठिन होगा, जिस पर कि दोनों वृक्ष जुड़े हैं और एक ही रस-धार से जीवन को पाते हैं! पृथ्वी भी सोचती होगी कि दूसरे ग्रह-मंडल, तारे, चांद, सूरज अलग हैं। काश! पृथ्वी भी अपने भीतर उतर सके, तो जैसे पत्ते ने उतरकर जाना, वैसे पृथ्वी भी जानती है कि सारा ब्रह्मांड भीतर एक से जुड़ा है!

दो ही रास्ते हैं देखने के। एक रास्ता है जो तू से शुरू होता है, और एक रास्ता है जो मैं से शुरू होता है। जो रास्ता तू से शुरू होता है, वह अनेक के दर्शन में ले जाता है। जो रास्ता मैं से शुरू होता है, वह एक के दर्शन में ले जाता है। जो तू से शुरू होता है, वह अनमैनिफेस्टेड में नहीं ले जाएगा, वह अव्यक्त में नहीं ले जाएगा, वह व्यक्त में ही ले जाएगा। क्योंकि दूसरे के तू को हम बाहर से ही छू सकते हैं, उसकी आंतरिक गहराइयों में उतरने का कोई उपाय नहीं; हम उसके बाहर ही घूम सकते हैं। भीतर तो हम सिर्फ स्वयं के ही उतर सकते हैं।

इसलिए प्रत्येक के भीतर वह सीढ़ी है, जहां से वह उतर सकता है वहां, जहां अब भी अव्यक्त है। सब व्यक्त नहीं हो गया है। सब कभी व्यक्त हो भी नहीं सकता। अनंत है अव्यक्त। क्योकि जो अद्वैत है, वह अनंत भी होगा; और जो व्यक्त है, वह सीमित भी होगा। व्यक्त की सीमा है, अव्यक्त की कोई सीमा नहीं है। जो अव्यक्त है, वह अनंत है, वह अभी भी है। उस बड़े सागर पर बस एक लहर प्रकट हुई है। उस लहर ने सीमा बना ली है। वह सागर असीम है।

लेकिन अगर लहर दूसरी लहर को देखे, तो सागर तक कभी न पहुंच पाएगी। दूसरी लहर से सागर तक पहुंचने का कोई भी उपाय नही है। क्योंकि दूसरी लहर के भीतर ही पहुंचने का कोई उपाय नही है। हम सिर्फ अपने ही भीतर उतर सकते है। और अपने ही भीतर उतरकर सबके भीतर उतर सकते है। स्वय मे उतरना पहली सीढ़ी है, स्वयं मे उतरते ही सर्व मे उतरना हो जाता है।

और यह बड़े मजे की बात है कि जो दूसरे मे उतरता है, उसको ही लगता है कि मै हूं। और जो मै मे उतरता है, उसे लगता है, मै नही हूं, सर्व है। मै की सीढी पर उतरते ही पता चलता है कि मै भी खो गया, सर्व ही रह गया।

लेकिन हम जीवन मे सदा दूसरे से शुरू करते है, दि अदर। बस वह दूसरे से ही हम सब सोचते है। अपने को छोड़कर ही हम चलते है, उसको बाद दिए जाते है। जन्मो-जन्मो तक एक चीज को हम छोड़ते चले जाते है, निग्लेक्ट किए जाते है, एक चीज के प्रति हमारी उपेक्षा गहन है-स्वयं को हम सदा ही छोड़कर चलते है। सब जोड़ लेते है, सब हिसाब मे ले लेते है। बस वह एक, जो अपना होना है, उसे हिसाब के बाहर रख देते है।

वेई वू ने एक किताब लिखी है, दि टेथ मैन, दसवां आदमी। और बहुत पुरानी भारतीय कथा से वह किताब शुरू की है। उस कहानी से हम सब परिचित है, कि दस आदमियो ने नदी पार की। वर्षा थी, बाढ़ थी। नदी पार उतरकर सहज ही उन्होंने सोचा कि कोई बह न गया हो! तो उन्होंने गिनती की। निश्चित ही, गिनती उन्होंने वैसी ही की जैसी हम करते है। लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई। थे तो दस, लेकिन गिनती में नौ ही निकले। एक ने की, दूसरे ने की, तीसरे ने की, फिर तो कन्फर्म हो गया कि नौ ही बचे है, एक खो गया।

जैसे सभी की जिंदगी का ढंग एक ही था-हम सभी का है-प्रत्येक ने स्वयं को छोड़कर गिना। गिनती नौ हुई। अब वह जो एक खो गया, उसके लिए बैठकर वे रोने लगे। यह भी पक्का पता नहीं चलता था कि वह कौन खो गया! ऐसे शक भी होता है कि कोई नहीं खोया। लेकिन शक ही है, क्योंकि गणित कहता है कि खो गया। अब गणित इतना प्रामाणिक मालूम होता है कि अब शक को अलग ही हटा देना उचित है। रो लेना भी उचित है, क्योंकि जो खो गया मित्र, उसके लिए अब और तो कुछ कर नहीं सकते। वे वहां बैठकर एक वृक्ष के नीचे रोते हैं।

वहां से एक फकीर गुजरा है। उसने पूछा कि क्या हुआ? क्यों रोते हो? उन्होंने कहा, एक साथी खो गया है। दस चले थे उस पार से, अब गिनते हैं तो नौ ही है! वे फिर छाती पीटकर रोने लगे। उस फकीर ने नजर डाली और देखा कि वे दस ही हैं। पर समझा वह फकीर। संसारी आदमी की बुद्धि और संसारी आदमी के गणित को भलीभांति जानता था। जानता था कि संसारी की भूल ही एक है। वही भूल दिखता है, हो गई है।

उसने कहा, जरा फिर से गिनो। लेकिन एक काम करो, मैं एक-एक आदमी के गाल पर चांटा मारता हूं। जिसको मैं चांटा मारूं, वह बोले, एक! दूसरे को मारूं, दो! तीसरे को मारूं, तीन! मैं चांटा मारता चलता हूं। चांटा इसलिए, ताकि तुम याद रख सको कि तुम छूट नहीं गए हो।

बड़ी हैरानी हुई, गिनती दस तक पहुंच गई। वे बड़े चकित हुए और उन्होंने कहा, क्या चमत्कार किया? यह गिनती दस तक कैसे पहुंची? हमने बहुत गिना, लेकिन नौ पर ही पहुंचती थी!

तो उस फकीर ने कहा, दुनिया में गिनने के दो ढंग हैं। दुनिया में दो तरह के गणित हैं। एक गणित जो तू से शुरू होता है और एक गणित जो मै से शुरू होता है। जो गणित तू से शुरू होता है, वह गणित कभी भी अव्यक्त में नहीं ले जाएगा। नहीं ले जाएगा इसलिए कि तू के भीतर प्रवेश का द्वार ही नहीं है। जो गणित मैं से शुरू होता है, वह अव्यक्त में ले जाता है।

इसलिए धर्म की परम अनुभूति परमात्मा है। और धर्म का प्राथमिक चरण आत्मा है। आत्मा से शुरू करना पड़ता है, परमात्मा पर पूर्णता होती है। स्वयं से चलना पड़ता है, सर्व में निष्पत्ति होती है।

तो अपने भीतर से गिनती शुरू करें। अभी भी आपके भीतर अव्यक्त मौजूद है। झांकते ही नहीं वहां, यह दूसरी बात है। आपके भीतर अव्यक्त मौजूद है।

इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा कि अव्यक्त आपके भीतर कैसे है! आपके ठीक पैरों के नीचे है। जिस जमीन पर आप खड़े हैं, वहीं! वहीं थोड़े ही दो कदम नीचे। चले नहीं कि अव्यक्त मौजूद है। कौन चला रहा है आपकी श्वास को? आप? तो जरा बंद करके देखें, तो पता चलेगा, आप नहीं चला रहे हैं। जरा रोकें, तो पता चल जाएगा, आप नहीं चला रहे हैं। श्वास धक्के देगी और चलेगी, तब आपको पता चलेगा, आपके नीचे से भी कोई और गहरे में इसे चला रहा है। खून चल रहा है चौबीस घंटे, आप नहीं चला रहे हैं। आपने कभी चलाया नहीं, चलाना पड़ता तो बहुत मुश्किल में पड़ जाते। वह काम ही इतना होता कि और कोई काम न बचता। और मिनट दो मिनट भी चूक जाते, भूल जाते, तो समाप्ति हो जाती। वह श्वास आदमी पर अगर होती चलाने की, तो दुनिया में आदमी बचता नहीं, कभी का समाप्त हो गया होता। एक क्षण चूके कि गए। नहीं, आप सोए रहें, बेहोश पड़े रहें, शराब पीए पड़े रहें, वह श्वास चलती रहेगी, वह खून दौड़ता रहेगा।

खाना तो आप खा लेते हैं, पचाता कौन है? आप? अभी तक बड़ी से बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला रोटी को खून में बदलने में समर्थ नहीं हो पाई है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का छोटा-सा पेट जो करता है, अगर किसी दिन हम समर्थ हुए, तो कम से कम सैकड़ों मील जगह घेरे, इतनी बड़ी फैक्टरी और लाखों लोग काम करें, इतना इंतजाम, एक आदमी के पेट में जो रहा है, उसके लिए करना पड़ेगा। लेकिन फिर भी पक्का नहीं है कि यह हो सकेगा। कौन चला रहा है? आप?

निश्चित ही, एक बात पक्की है कि आप नहीं चला रहे हैं। तो आपके भीतर अव्यक्त, आपके भीतर छिपी हुई कोई ताकत, आपके मैं की सीमा के पार...!

आप सोते हैं रोज। लेकिन इस भ्रांति में मत पड़ना कि आप सोते है, क्योंकि सोना कोई एक्ट नहीं है, कोई क्रिया नहीं है। भाषा में है। भाषा से कोई लेना-देना नहीं है। सोना बिलकुल ही क्रिया नहीं है। क्योंकि जिसको नींद नहीं आती है, उसको भलीभांति पता है कि कितनी ही करवट बदलता है, कितने ही उपाय करता है, नहीं आती, नहीं आती, नहीं आती। सच तो यह है कि जितने उपाय करता है, उतनी ही नही आती। और अगर कभी आती है तो उसके उपाय की वजह से नहीं आती, उपाय कर-कर के थक गया होता है, तब आती है। नीद ला नहीं सकते आप कि ले आएं। कहां से आती है? आपके भीतर अव्यक्त से आती है। मनोवैज्ञानिक से पूछे, तो उसे थोड़ी-सी समझ मिली है उस अव्यक्त की, उसे वह अनकांशस कह रहा है। वह कह रहा है, अचेतन से आती है।

पैर पर चोट लग गई है। तत्काल, तत्काल मवाद से भर जाता है घाव। आपने कुछ किया? आपने कुछ भी नही किया। लेकिन पता नहीं, पूरे शरीर से वे जीवाणु दौडकर उस घाव के पास पहुंच जाते है। जिसको आप मवाद कहते है, वह मवाद नहीं है; वह उन जीवाणुओ की पर्त है, जो तत्काल उसे चारो तरफ से घेर लेते है, बाहर के जगत से सुरक्षा देने के लिए। चमड़ी तो टूट गई है, दूसरी पर्त चाहिए। वह पर्त उसे घेर लेती है। और भीतर अव्यक्त तत्काल, जो घाव बन गया है, उसे ठीक करने मे लग जाता है।

साधारण चिकित्सक सोचता है कि हम ठीक कर देते है बीमारी को। लेकिन जो असाधारण चिकित्सक है जगत मे, जो जरा गहरे उतरे है मनुष्य की बीमारी मे, वे कहते है कि नही, ज्यादा से ज्यादा हम थोड़ा-सा सहयोग पहुचाते है; इतना भी कहना अतिशयोक्ति है। शायद इतना ही कहना उचित है कि हम थोड़ी-सी बाधाएं अलग करते है; बाकी हीलिग फोर्स भीतर से आती है।

और अब तो मनोवैज्ञानिक निरंतर इतने गहरे उतर रहे है, वे कहते है कि अगर एक आदमी के भीतर जीने की इच्छा चली गई है, तो घाव भरना मुश्किल हो जाता है। अगर एक आदमी के भीतर से जीवन की इच्छा चली गई है, तो बीमारी को चिकित्सा ठीक नहीं कर पाती। क्योकि अव्यक्त ने, जीने की जो शक्ति

थी, वह देनी बंद कर दी, वापस ले ली। बूढ़े आदमी के शरीर में कोई बुनियादी फर्क नहीं हो गए होते हैं। लेकिन अव्यक्त सिकुड़ने लगता है। वह शक्ति वापस लौटने लगती है। उतार शुरू हो गया।

अगर हम अपने भीतर थोड़ा-सा झांकें, तो हमें पता चलेगा कि हम जहां जी रहे हैं, वह शायद किसी एक बहुत बड़ी ऊर्जा का ऊपरी शिखर है। बस, उस शिखर से ही हम परिचित है, उसके पीछे हम बिलकुल परिचित नहीं हैं। उसके पीछे अव्यक्त अभी भी मौजूद है। सभी व्यक्त घटनाओं के पीछे अव्यक्त मौजूद है। सभी दृश्य घटनाओं के पीछे अदृश्य मौजूद है। सभी चेतन घटनाओं के पीछे अचेतन मौजूद है। सभी दिखाई पड़ने वाले जगत और रूप के पीछे अरूप मौजूद है। जरा रूप की परत में गहरे उतरें।

कैसे उतरें? क्या करें?

दूसरे को भूलें। बहुत कठिन है। आंख बंद करें, तो भी दूसरा ही याद आता है। आंख बंद करे, तो भी दूसरा ही दिखाई पड़ता है। आंख बंद करें, तो भी दूसरे से ही मिलना होता रहता है। दूसरे से आब्सेस्ड है, दूसरे से रुग्ण है। दूसरा है कि पीछा छोड़ता ही नहीं; बस, चित्त में घूमता ही चला जाता है। यह जो दूसरे की भीतर भीड़ है, इसे विदा करें।

विदा करने का उपाय है, इस भीड़ के प्रति साक्षी का भाव करें। भीतर आंख बंद करके, वे जो दूसरों के प्रतिबिंब है, उनके साक्षी भर रह जाएं। देखते रहें, कुछ कहें मत। न पक्ष लें, न विपक्ष लें। न प्रेम करें, न घृणा करें। न किसी चित्र को कहें कि आओ; न किसी चित्र को कहें कि जाओ। बस बैठे रह जाएं और देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। धीरे-धीरे चित्र विदा होने लगते है। क्योंकि जिन मेहमानों को आतिथेय देखता ही रहे, वे मेहमान ज्यादा देर नहीं टिक सकते। मित्रता दिखाए तो भी टिक सकते हैं, शत्रुता दिखाए तो भी आ सकते हैं। कुछ भी न दिखाए...।

तो बुद्ध ने एक सूत्र दिया है, उपेक्षा, इंडिफरेंस। बस, रह जाए, कुछ भी न दिखाए; न पक्ष, न विपक्ष। तो धीरे-धीरे दूसरे के चित्र बिखर जाते हैं। विचार खो जाते हैं।

और जिस क्षण भी दूसरे के चित्र नहीं होते, उसी क्षण स्वयं के होने का बोध पहली दफा उतरता है। जिस क्षण दूसरा आपके भीतर मौजूद नही है, उसी क्षण अचानक आपको अपनी प्रेजेंस का, अपने होने का अनुभव होता है; कहीं से कोई झरना फूट पड़ता है जैसे। जैसे पत्थर रखा था दूसरे का झरने के ऊपर, वह हट गया और झरने की धारा फूट पड़ी। आप पहली दफा अपनी प्रेजेंस को, अपने होने को, अपने अस्तित्व को अनुभव करते है और अव्यक्त मे यात्रा शुरू हो जाती है। उसके आगे आपको कुछ नहीं करना है।

जैसे एक आदमी छत से कूद जाए। कूद जाए, तब तो ठीक है। कूदने के पहले पूछे कि मै छत से कूद तो जाऊंगा, लेकिन फिर जमीन तक आने के लिए क्या करूंगा? तो हम कहेगे, तुम कुछ करना ही मत, बाकी काम जमीन कर लेगी। तुम छत से कूद भर जाना, बाकी काम जमीन पर छोड़ देना। वह बड़ी कुशल है। उसका ग्रेविटेशन है, उसकी अपनी कशिश है, अपना गुरुत्वाकर्षण है, वह तुम्हें खीच लेगी। तुम सिर्फ एक कदम छत से उठा लेना।

बस, दूसरे से एक कदम उठा लेना आप, बाकी अव्यक्त खीच लेगा। उसका अपना ग्रेविटेशन है; उससे बड़ा कोई ग्रेविटेशन नहीं है; उससे बड़ी कोई कशिश नहीं है। वह खींच लेगा। लेकिन हम दूसरे को पकड़े है। वह दूसरे को पकड़े होने की वजह से, दूसरे के साथ हम इतने जोर से चिपके हुए है कि वह द्वार ही नहीं खुल पाता, जहां से अव्यक्त हमें पुकार ले और खींच ले और बुला ले और अपने में डुबा ले।

और एक बार अव्यक्त में डूबकर लौटे, तो फिर दूसरे में भी वही दिखाई पड़ेगा, जो स्वयं में दिखाई पड़ा है। क्योंकि दूसरे को हम वहीं तक जानते है, जितना हम स्वयं को जानते हैं। जिस दिन आपको अपने भीतर अव्यक्त दिखाई पड़ जाएगा, वह इटरनल एबिस, वह अंतहीन खाई अव्यक्त की अपने भीतर मुंह खोलकर दिखाई पड़ जाएगी, उस दिन प्रत्येक आंख में और प्रत्येक चेहरे में वही अव्यक्त दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। फिर पत्ते में और फूल में और आकाश में, सब तरफ उस अव्यक्त की मौजूदगी अनुभव होने लगती है।

लेकिन यात्रा का पहला कदम स्वयं के भीतर है। उपेक्षा या साक्षी या कोई भी नाम दें, अवेयरनेस, कुछ भी नाम दें-दूसरे के जो चित्र भीतर हैं, दूसरे के जो प्रतिबिंब भीतर हैं, उनके प्रति होश से भर जाएं और कुछ मत करें, वे गिर जाते हैं। कुछ किया कि वे पकड़ जाते हैं। कुछ मत करें और अचानक आप पाएंगे कि घटना घट गई और आप अव्यक्त में उतर गए।

कृष्ण उसी अव्यक्त की बात कर रहे हैं। वह पहले भी था, बाद में भी है, अभी भी है। सिर्फ व्यक्त से ढंका है। जरा व्यक्त की परत के नीचे जाएं और वह प्रकट हो जाता है।

प्रश्न : हम अगर जीने की इच्छा छोड़ दें, तो क्या अव्यक्त का सिकुड़ना शुरू होता है? या अव्यक्त का सिकुड़ना शुरू होता है, इसके प्रभाव से हम जीने की इच्छा खो बैठते हैं? प्रश्न यह है कि आरंभ कहां से होता है? क्या पारस्परिक असर नहीं होता?

जीवन की इच्छा हम छोड़ दें तो अव्यक्त सिकुड़ना शुरू हो जाता है, या अव्यक्त सिकुड़ना शुरू हो जाता है, इसलिए हम जीवन की इच्छा छोड़ देते हैं-ये अगर दो घटनाएं होतीं, तो मैं कोई उत्तर दे पाता। ये दो घटनाएं नहीं हैं; यह साइमलटेनियस, युगपत घटना है। अव्यक्त का सिकुड़ना और हमारा जीने की इच्छा छोड़ देना, एक ही घटना है। हमारा जीने की इच्छा छोड़ देना और अव्यक्त का सिकुड़ना भी एक ही घटना है। क्योंकि हम अव्यक्त से पृथक नहीं हैं, हम उससे अन्य नहीं हैं, हम उससे दूसरे नहीं हैं। यह एक ही चीज है।

हां, हमें सबसे पहले जो पता चलता है, उसमें फर्क हो सकता है। अस्तित्व में दोनों एक चीज हैं; पता चलने में फर्क हो सकता है। एक आदमी को पहले पता चल सकता है कि मेरी जीवन की इच्छा मरती जाती है। एक आदमी को पता चल सकता है कि मेरी तो इच्छा कोई मरी नहीं, लेकिन भीतर कुछ सिकुड़ना शुरू हो गया है। यह आदमियों पर निर्भर करेगा कि उनकी कहां से शुरुआत होगी।

अगर कोई आदमी निरंतर अहंकार में ही जीया है, तो उसकी प्रतीति और होगी। और कोई आदमी निरंतर निरहंकार में जीया है, तो उसकी प्रतीति और होगी। वह प्रतीति अहंकार के अस्तित्व पर निर्भर करेगी, घटना के अस्तित्व पर नहीं। घटना तो एक ही है। घटना एक ही है। वे घटनाएं दो नहीं हैं। लेकिन हम तो अहंकार में ही जीते हैं। इसलिए साधारणतः जब जीवन सिकुड़ना शुरू होता है, अस्तित्व जब डूबना शुरू होता है, तो हमें ऐसा ही लगता है...।

बूढ़े आदमी कहते हुए सुने जाते हैं कि अब जीने की कोई इच्छा न रही। अब जीना नहीं चाहते। अब तो मौत ही आ जाए तो अच्छा है। लेकिन अभी भी वे यह कह रहे हैं कि अब जीने की कोई इच्छा न रही, जैसे कि अपनी इच्छा से अब तक जीते थे। लेकिन सब चीजों को अपने से बांधकर देखा है, तो इसको भी अपने से ही बांधकर वे देखेंगे।

हमारी स्थिति करीब-करीब ऐसी ही है। मैंने सुना है कि जगन्नाथ की रथ-यात्रा चल रही है। हजारों लोग रथ को नमस्कार कर रहे हैं। एक कुत्ता भी रथ के आगे हो लिया। उस कुत्ते की अकड़ देखते ही बनती है। ठीक कारण है। सभी उसको नमस्कार कर रहे है! जो भी सामने आता है, एकदम चरणों में गिर जाता है। सामने जो भी आ जाता है, चरणों में गिर जाता है। उस कुत्ते की अकड़ बढ़ती चली जा रही है। फिर पीछे लौटकर देखता है, तो पता चलता है कि सामने ही नहीं स्वागत हो रहा है, पीछे भी रथ चल रहा है। स्वभावतः, जिस कुत्ते का इतना स्वागत हो रहा हो, उसके पीछे रथ चलना ही चाहिए। यह रथ कुत्ते के पीछे चल रहा है! ये लोग कुत्ते को नमस्कार कर रहे हैं!

हमारा अहंकार करीब-करीब जीवन की घटनाओं और पीछे अव्यक्त के चलने वाले रथ के बीच में, कुत्ते की हालत में होता है। सब नमस्कार इस मैं को होते हैं; सब पीछे से घटने वाली घटनाएं इस मैं को होती हैं। लेकिन कौन इस कुत्ते को समझाए? कैसे समझाए?

इस पर निर्भर करेगा कि आपने पूरे जीवन को कैसे लिया है। जब आपको भूख लगी है, तब आपने सोचा है कि मैं भूख लगा रहा हूं या अव्यक्त से भूख आ

रही है! जब आप बच्चे से जवान हो गए हैं, तो आपने समझा कि मैं जवान हो गया हूं या अव्यक्त से जवानी आ रही है!

यह इंटरप्रिटेशन की बात है, यह व्याख्या की बात है। घटना तो वही है, जो हो रही है, वही हो रही है। लेकिन कुत्ता अपनी व्याख्या करने को तो स्वतंत्र है। रथ चल रहा है, नमस्कार रथ को की जा रही है, लेकिन कुत्ते को व्याख्या करने से तो नहीं रोक सकते कि नमस्कार मुझे हो रही है, रथ मेरे लिए चल रहा है!

आदमी जो व्याख्या कर रहा है, उसी से सभी कुछ अहंकार-केंद्रित हो जाता है। अन्यथा अहंकार को छोड़ें, तो फिर दो बातें नहीं रह जातीं, एक ही बात रह जाती है, क्योंकि हम भी अव्यक्त के ही हिस्से हैं। हम अगर अलग होते, तब उपाय भी था; हम भी अव्यक्त के ही हिस्से हैं। हम भी जो कर रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही कर रहा है। हम भी जो सोच रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही सोच रहा है। हम भी जो हो रहे हैं, वह भी अव्यक्त ही हो रहा है।

जिस दिन हमें ऐसा दिखाई पड़ेगा, उस दिन यह सवाल नहीं बनेगा। लेकिन अभी बनेगा, क्योंकि हमें लगता है, कुछ हम कर रहे हैं। कुछ हम कर रहे हैं, वह मनुष्य की व्याख्या है। उसी व्याख्या में अर्जुन उलझा है, इसलिए पीड़ित और परेशान है। वह यह कह रहा है कि मैं मारूं! इन सबको मैं काट डालूं! नहीं, ये सब मेरे हैं, मैं यह न करूंगा। इससे तो बेहतर है कि मैं भाग जाऊं। लेकिन भागना भी वही करेगा, मारना भी वही करेगा। वह कर्ता को नहीं छोड़ पाएगा, वह मै की व्याख्या नहीं छोड़ पा रहा है।

कृष्ण अगर कुछ भी कह रहे हैं, तो इतना ही कह रहे हैं कि तू जो व्याख्या कर रहा है मैं के केंद्र से, वह केंद्र ही झूठा है, वह केंद्र कहीं है ही नहीं। उस केंद्र के ऊपर तू जो सब समर्पित कर रहा है, वहीं तेरी भूल हुई जा रही है।

लेकिन हमें सब चीजें दो में टूटी हुई दिखाई पड़ती हैं। यह श्वास मेरे भीतर आती है, फिर दूसरी श्वास बाहर जाती है। ये दो श्वासें नहीं हैं, एक श्वास है। कोई पूछ सकता है कि मैं श्वास को बाहर निकालता हूं, इसलिए मुझे श्वास भीतर लेनी पड़ती है? या चूंकि मैं श्वास भीतर लेता हूं, इसलिए मुझे श्वास बाहर

निकालनी पड़ती है ? तो हम कहेंगे, भीतर आना और बाहर जाना एक ही श्वास के डोलने का फर्क है। एक ही श्वास है; वही भीतर आती है, वही बाहर जाती है।

असल में बाहर और भीतर भी दो चीजें नहीं है अव्यक्त में। बाहर और भीतर भी अव्यक्त में-बाहर और भीतर भी अव्यक्त में-एक ही चीज के दो छोर हैं। लेकिन जहां हम जी रहे हैं, मैनिफेस्टेड जगत में, व्यक्त में, जहां सब अनेक हो गया है, वहां सब भिन्न है, वहां सब अलग है। फिर उस अलग से हमारे सब सवाल उठते है।

बुद्ध के पास एक व्यक्ति आया है। और बहुत सवाल पूछता है। तो बुद्ध ने कहा, ऐसा कर, तू सवालो के उत्तर ही चाहता है ? उसने कहा, उत्तर ही चाहता हूं। बुद्ध ने कहा, और कितने लोगो से तूने पूछा है ? उसने कहा, मै बहुत लोगो से पूछकर थक चुका हूं, अब आपके पास आया हूं। बुद्ध ने कहा, इतने लोगों से पूछकर तुझे उत्तर नहीं मिला, तो तुझे यह खयाल नही आता कि पूछने से उत्तर मिलेगा ही नहीं ! उसने कहा कि नही, यह खयाल नहीं आया। मुझे तो इतना ही खयाल आता है कि अब और किसी से पूछें, अब और किसी से पूछे, अब और किसी से पूछे। बुद्ध ने कहा, तो कब तक तू पूछता रहेगा ? मैं भी तुझे उत्तर दे दूं उसी तरह, जैसे दूसरों ने तुझे दिए थे ? या कि तुझे सच ही उत्तर चाहिए। उसने कहा, मुझे सच ही उत्तर चाहिए।

तो बुद्ध ने कहा, फिर तू रुक जा; फिर तू सालभर पूछ ही मत। उसने कहा, बिना पूछे उत्तर कैसे मिलेगा ? बुद्ध ने कहा, तू प्रश्न छोड़। सालभर बाद पूछना। सालभर पूछ ही मत, सालभर सोच ही मत, सालभर बात ही मत कर, सालभर मौन ही हो जा। उसने कहा, लेकिन इससे क्या होगा ? यह, बुद्ध ने कहा, सालभर बाद ठीक इसी दिन पूछ लेना। जब बुद्ध ने उससे यह कहा कि ठीक इसी दिन पूछ लेना, तो एक भिक्षु वृक्ष के नीचे बैठा था, खिलखिलाकर हंसने लगा।

उस आदमी ने उस भिक्षु से पूछा, हंसते हैं आप, क्या बात है ? हंसने की क्या बात है ? उस भिक्षु ने कहा, पूछना हो तो अभी पूछ लेना, क्योंकि इसी धोखे में हम भी पड़े। हम साल बिता चुके हैं। जब सालभर बाद खुद ही जान लेते है,

तो पूछने को बचता नहीं है। पूछना हो तो अभी पूछ लेना, नहीं तो फिर पूछ ही न पाओगे। ये बुद्ध बड़े धोखेबाज हैं। मैं भी इसी धोखे में पड़ा और पीछे मुझे पता चला कि और लोग भी इस धोखे में पड़े हैं। बुद्ध ने कहा, मैं अपने वचन पर अडिग रहूंगा। अगर सालभर बाद तू पूछेगा, तो मैं उत्तर दूंगा।

साल बीत गया। फिर वही दिन आ गया। और बुद्ध ने उस आदमी को कहा कि मित्र, अब खड़े हो जाओ और प्रश्न पूछ लो! वह हंसने लगा और उसने कहा कि जाने दें, बेकार की बात-चीत में कोई सार नहीं है। पर बुद्ध ने कहा, वायदा था मेरा, तो मै तुम्हें याद दिलाए देता हूं। पीछे मत कहना कि मैंने धोखा दिया।

उसने कहा कि नहीं, आप उस दिन उत्तर देते तो ही धोखा होता। क्योंकि जब मैं चुप हुआ, तब मैंने देखा कि सारे प्रश्न विचार से निर्मित थे, क्योंकि विचार ने अस्तित्व को खंड-खंड में तोड़ा हुआ था। और अस्तित्व था अखंड। अब जब मैं भीतर निर्विचार हुआ, तो मैंने पाया कि सारे प्रश्न झूठे थे; क्योंकि अस्तित्व को तोड़कर खड़े किए गए थे।

उस अव्यक्त में, उस अखंड में सब प्रश्न गिर जाते हैं, लेकिन व्यक्त में सब प्रश्न उठते हैं। तो या तो हम प्रश्न पूछते रहें, तो जिंदगी दर्शनशास्त्र बन जाती है। और या हम भीतर उतरें, तो जिंदगी धर्म बन जाती है। और अधर्म धर्म के खिलाफ उतना नहीं है, जितनी फिलासफी है, जितना दर्शन है धर्म के खिलाफ। क्योंकि वह विचार, और विचार, और विचार में ले जाता है। और हर विचार चीजों को तोड़ता चला जाता है। आखिर में सब चीजें टूट जाती हैं; प्रश्न ही प्रश्न रह जाते हैं; कोई उत्तर नहीं बचता।

भीतर उतरें, वहां एक ही है, वहां दो नहीं हैं। और जहां दो नहीं हैं, वहां प्रश्न नहीं हो सकता। प्रश्न के लिए कम से कम दो का होना जरूरी है कम से कम। पूछा जा सके, इसलिए कम से कम दो का होना जरूरी है।

वह जो पहले था अव्यक्त, वह जो बाद में रह जाएगा अव्यक्त, वह अभी भी है। उसमें उतरना, उसमें डूबना ही मार्ग है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।। 30।।
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। 31।।

हे अर्जुन, यह आत्मा सब के शरीर में सदा ही अवध्य है, इसलिए संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए तू शोक करने को योग्य नहीं है।

और अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने को योग्य नहीं है, क्योकि धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारक कर्तव्य क्षत्रिय के लिए नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कहते है कि और सब बाते छोड़ भी दो, तो भी क्षत्रिय हो, और क्षत्रिय के लिए युद्ध से भागना श्रेयस्कर नही है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, कई कारणों से।

एक तो विगत पांच सौ वर्षो मे, सभी मनुष्य समान है, इसकी बात इतनी प्रचारित की गई है कि कृष्ण की यह बात बहुत अजीब लगेगी, बहुत अजीब लगेगी, कि तुम क्षत्रिय हो। समाजवाद के जन्म के पहले, सारी पृथ्वी पर, उन सारे लोगों ने, जिन्होंने सोचा है और जीवन को जाना है, बिलकुल ही दूसरी उनकी धारणा थी। वह धारणा यह थी कि कोई भी व्यक्ति समान नहीं है। एक।

और दूसरी धारणा उस असमानता से ही बंधी हुई थी और वह यह थी कि व्यक्तियों के टाइप हैं, व्यक्तियों के विभिन्न प्रकार है। बहुत मोटे मे, इस देश के मनीषियों ने चार प्रकार बांटे हुए थे। वे चार वर्ण थे। वर्ण की धारणा भी बुरी तरह, बुरी तरह निंदित हुई। इसलिए नहीं कि वर्ण की धारणा के पीछे कोई मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं है, बल्कि इसलिए कि वर्ण की धारणा मानने वाले लोग अत्यंत नासमझ सिद्ध हुए। वर्ण की धारणा को प्रतिपादित जो आज लोग कर रहे है, अत्यंत प्रतिक्रियावादी और अवैज्ञानिक वर्ग के हैं। संग-साथ से सिद्धांत तक मुसीबत में पड़ जाते हैं!

इसलिए आज बड़ी मुश्किल पड़ती है यह बात कि कृष्ण का यह कहना

कि तू क्षत्रिय है। जिस दिन यह बात कही गई थी, उस दिन यह मनोवैज्ञानिक सत्य बहुत स्पष्ट था। अभी जैसे-जैसे पश्चिम में मनोविज्ञान की समझ बढ़ती है, वैसे-वैसे यह सत्य पुनः स्थापित होता जाता है। कार्ल गुस्ताव जुंग ने फिर आदमी को चार टाइप में बांटा है। और आज अगर पश्चिम में किसी आदमी की भी मनुष्य के मनस में गहरी से गहरी पैठ है, तो वह जुंग की है। उसने फिर चार हिस्सों में बांट दिया है।

नहीं, आदमी एक ही टाइप के नहीं हैं। पश्चिम में जो मनोविज्ञान का जन्मदाता है फ्रायड, उसने तो मनोवैज्ञानिक आधार पर समाजवाद की खिलाफत की है। उसने कहा कि मैं कोई अर्थशास्त्री नहीं हूं, लेकिन जितना ही मैं मनुष्य के मन को जानता हूं, उतना ही मैं कहता हूं कि मनुष्य असमान है। इनइक्वालिटी इज़ दि फैक्ट, और इक्वालिटी सिर्फ एक झूठी कहानी है, पुराणकथा है। समानता है नहीं; हो नहीं सकती; क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति बुनियाद में बहुत भिन्न हैं।

इन भिन्नताओं की अगर हम बहुत मोटी रूप-रेखा बांधें, तो इस मुल्क ने कृष्ण के समय तक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य को विकसित कर लिया था और हमने चार वर्ण बांटे थे। चार वर्णो में राज है। और जहां भी कभी मनुष्यों को बांटा गया है, वह चार से कम में नहीं बांटा गया है और चार से ज्यादा में भी नहीं बांटा गया; जिन्होंने भी बांटा है-इस मुल्क में ही नहीं, इस मुल्क के बाहर भी। कुछ कारण दिखाई पड़ता है। कुछ प्राकृतिक तथ्य मालूम होता है पीछे।

ब्राह्मण से अर्थ है ऐसा व्यक्ति, जिसके प्राणों का सारा समर्पण बौद्धिक है, इंटेलेक्चुअल है। जिसके प्राणों की सारी ऊर्जा बुद्धि में रूपांतरित होती है। जिसके जीवन की सारी खोज ज्ञान की खोज है। उसे प्रेम न मिले, चलेगा; उसे धन न मिले, चलेगा; उसे पद न मिले, चलेगा; लेकिन सत्य क्या है, इसके लिए वह सब समर्पित कर सकता है। पद, धन, सुख, सब खो सकता है। बस, एक लालसा, उसके प्राणों की ऊर्जा एक ही लालसा के इर्द-गिर्द जीती है, उसके भीतर एक ही दीया जल रहा है और वह दीया यह है कि ज्ञान कैसे मिले? इसको ब्राह्मण...।

आज पश्चिम में जो वैज्ञानिक हैं, वे ब्राह्मण हैं। आइंस्टीन को ब्राह्मण कहना चाहिए, लुई पाश्चर को ब्राह्मण कहना चाहिए। आज पश्चिम में तीन सौ वर्षों में जिन लोगों ने विज्ञान के सत्य की खोज में अपनी आहुति दी है, उनको ब्राह्मण कहना चाहिए।

दूसरा वर्ग है क्षत्रिय का। उसके लिए ज्ञान नहीं है उसकी आकांक्षा का स्रोत, उसकी आकांक्षा का स्रोत शक्ति है, पावर है। व्यक्ति हैं पृथ्वी पर, जिनका सारा जीवन शक्ति की ही खोज है। जैसे नीत्से, उसने किताब लिखी है, विल टु पावर। किताब लिखी है उसने कि जो असली नमक हैं आदमी के बीच-नीत्से कहता है-वे सभी शक्ति को पाने में आतुर हैं, शक्ति के उपासक हैं, वे सब शक्ति की खोज कर रहे हैं। इसलिए नीत्से ने कहा कि मैंने श्रेष्ठतम संगीत सुने हैं, लेकिन जब सड़क पर चलते हुए सैनिकों के पैरों की आवाज और उनकी चमकती हुई संगीनें रोशनी में मुझे दिखाई पड़ती हैं, इतना सुंदर संगीत मैंने कोई नहीं सुना।

ब्राह्मण को यह आदमी पागल मालूम पड़ेगा, संगीन की चमकती हुई धार में कहीं कोई संगीत होता है? कि सिपाहियों के एक साथ पड़ते हुए कदमों की चाप में कोई संगीत होता है? संगीत तो होता है कंटेंप्लेशन में, चिंतना में, आकाश के नीचे वृक्ष के पास बैठकर तारों के संबंध में सोचने में। संगीत तो होता है संगीत में, काव्य में। संगीत तो होता है खोज में सत्य की। यह पागल है नीत्से!

लेकिन नीत्से किसी एक वर्ग के लिए ठीक-ठीक बात कह रहा है। किसी के लिए तारों में कोई अर्थ नहीं होता। किसी के लिए एक ही अर्थ होता है, एक ही संकल्प होता है कि शक्ति और ऊर्जा के ऊपरी शिखर पर वह कैसे उठ जाए! उसे हमने कहा था क्षत्रिय।

कृष्ण पहचानते हैं अर्जुन को भलीभांति। वह टाइप क्षत्रिय का है। अभी बातें वह ब्राह्मण जैसी कर रहा है। इसमें कनफ्यूज्ड हो जाएगा। इसमें उपद्रव में पड़ जाएगा। उसके व्यक्तित्व का पूरा का पूरा बनाव, स्ट्रक्चर, उसके मनस की एनाटामी, उसके मनस का सारा ढांचा क्षत्रिय का है। तलवार ही उसकी आत्मा है; वही उसकी रौनक है, वही उसका संगीत है। अगर परमात्मा की झलक उसे

कहीं से भी मिलनी है, तो वह तलवार की चमक से मिलनी है। उसके लिए कोई और रास्ता नहीं है।

तो उससे वे कह रहे हैं, तू क्षत्रिय है; अगर और सब बातें भी छोड़, तो तुझसे कहता हूं कि तू क्षत्रिय है। और तुझसे मैं कहता हूं कि क्षत्रिय से यहां-वहां होकर तू सिर्फ दीन-हीन हो जाएगा, यहां-वहां होकर तू सिर्फ ग्लानि को उपलब्ध होगा, यहां-वहां होकर तू सिर्फ अपने प्रति अपराधी हो जाएगा।

और ध्यान रहे, अपने प्रति अपराध जगत में बड़े से बड़ा अपराध है। क्योंकि जो अपने प्रति अपराधी हो जाता है, वह फिर सबके प्रति अपराधी हो जाता है। सिर्फ वे ही लोग दूसरे के साथ अपराध नहीं करते, जो अपने साथ अपराध नहीं करते। और कृष्ण की भाषा में समझें, तो अपने साथ सबसे बड़ा अपराध यही है कि जो उस व्यक्ति का मौलिक स्वर है जीवन का, वह उससे च्युत हो जाए, उससे हट जाए।

तीसरा एक वर्ग और है, जिसको तलवार में सिर्फ भय के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा; संगीत तो कभी नहीं, सिर्फ भय दिखाई पड़ेगा। जिसे ज्ञान की खोज नासमझी मालूम पड़ेगी कि सिरफिरों का काम है। तो तीसरा वर्ग है, जिसके लिए धन महिमा है। जिसके लिए धन ही सब कुछ है। धन के आस-पास ही जिसके जीवन की सारी व्यवस्था निर्मित होती है। अगर वैसे आदमी को मोक्ष की भी बात करनी हो, तो उसके लिए मोक्ष भी धन के रूप में ही दिखाई पड़ सकता है। अगर वह भगवान का भी चिंतन करेगा, तो भगवान को लक्ष्मीनारायण बनाए बिना नहीं रह सकता। इसमें उसका कोई कसूर नहीं है। सिर्फ फैक्ट, सिर्फ तथ्य की बात कर रहा हूं मैं। ऐसा है। और ऐसा आदमी अगर छिपाए अपने को, तो व्यर्थ ही कठिनाई में पड़ेगा। अगर वह दबाए अपने को, तो कठिनाई में पड़ेगा। उसके लिए जीवन की जो परम अनुभूति का द्वार है, वह शायद धन की खोज से ही खुलने वाला है। इसलिए और कहीं से खुलने वाला नहीं है।

अब एक राकफेलर या एक मार्गन या एक टाटा, ये कोई छोटे लोग नहीं हैं। कोई कारण नहीं है इनके छोटे होने का। ये अपने वर्ग में वैसे ही श्रेष्ठ हैं, जैसे

कोई याज्ञवल्क्य, जैसे कोई पतंजलि, जैसे कोई अर्जुन अपने वर्गों में होंगे। इसमें कोई तुलना नहीं है, कोई कंपेरिजन नहीं है।

वर्ण की जो धारणा है, वह तुलनात्मक नहीं है, वह सिर्फ तथ्यात्मक है। जिस दिन वर्ण की धारणा तुलनात्मक हुई कि कौन ऊपर, कौन नीचे, उस दिन वर्ण की वैज्ञानिकता चली गई और वर्ण एक सामाजिक अनाचार बन गया। जिस दिन वर्ण में तुलना पैदा हुई-कि क्षत्रिय ऊपर, कि ब्राह्मण ऊपर, कि वैश्य ऊपर, कि शूद्र ऊपर, कि कौन नीचे, कि कौन पीछे-जिस दिन वर्ण का शोषण किया गया, वर्ण के वैज्ञानिक सिद्धांत को जिस दिन सामाजिक शोषण की आधारशिला में रखा गया, उस दिन से वर्ण की धारणा अनाचार हो गई।

सभी सिद्धांतों का अनाचार हो सकता है, किसी भी सिद्धांत का शोषण हो सकता है। वर्ण की धारणा का भी शोषण हुआ। और अब इस मुल्क में जो वर्ण की धारणा के समर्थक है, वे उस वर्ण की वैज्ञानिकता के समर्थक नहीं हैं। उस वर्ण के आधार पर जो शोषण खड़ा है, उसके समर्थक है। उनकी वजह से वे तो डूबेंगे ही, वर्ण का एक बहुत वैज्ञानिक सिद्धांत भी डूब सकता है।

एक चौथा वर्ग भी है, जिसे धन से भी प्रयोजन नहीं है, शक्ति से भी अर्थ नहीं है, ज्ञान की भी कोई बात नहीं है, लेकिन जिसका जीवन कहीं बहुत गहरे मे सेवा और सर्विस के आस-पास घूमता है। जो अगर अपने को कहीं समर्पित कर पाए और किसी की सेवा कर पाए, तो फुलफिलमेंट को, आप्तता को उपलब्ध हो सकता है।

ये जो चार वर्ग है, इनमें कोई नीचे-ऊपर नहीं है। ऐसे चार मोटे विभाजन है। और कृष्ण की पूरी साइकोलाजी, कृष्ण का पूरा का पूरा मनोविज्ञान इस बात पर खड़ा है कि प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा तक पहुंचने का जो मार्ग है, वह उसके स्वधर्म से गुजरता है। स्वधर्म का मतलब हिंदू नहीं, स्वधर्म का मतलब मुसलमान नहीं, स्वधर्म का मतलब जैन नहीं; स्वधर्म का मतलब, उस व्यक्ति का जो वर्ण है। और वर्ण का जन्म से कोई संबंध नहीं है।

लेकिन संबंध निर्मित हो गया। हो जाने के पीछे बहुत कारण हैं, वह मैं बात करूंगा। हो जाने के पीछे कारण थे, वैज्ञानिक ही कारण थे। संबंध था नहीं जन्म

के साथ वर्ण का, इसलिए फ्लुइडिटी थी, और कोई विश्वामित्र यहां से वहां हो भी जाता था। संभावना थी कि एक वर्ण से दूसरे वर्ण में यात्रा हो जाए। लेकिन जैसे ही यह सिद्धांत खयाल में आ गया और इस सिद्धांत की परम प्रामाणिकता सिद्ध हो गई कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण से ही, अपने स्वधर्म से ही सत्य को उपलब्ध हो सकता है, तो एक बहुत जरूरी बात पैदा हो गई और वह यह कि यह पता कैसे चले कि कौन व्यक्ति किस वर्ण का है! अगर जन्म से तय न हो, तो शायद ऐसा भी हो सकता है कि एक आदमी जीवनभर कोशिश करे और पता ही न लगा पाए कि वह किस वर्ण का है। उसका क्या है झुकाव, वह क्या होने को पैदा हुआ है-पता ही कैसे चले? तो फिर सुगम यह हो सकता है कि अगर जन्म से कुछ निश्चय किया जा सके।

लेकिन जन्म से निश्चय किया कैसे जा सके? कोई आदमी किसी के घर में पैदा हो गया, इससे तय हो जाएगा? कोई आदमी किसी के घर में पैदा हो गया, ब्राह्मण के घर में, तो ब्राह्मण हो जाएगा?

जरूरी नहीं है। लेकिन बहुत संभावना है। प्रोबेबिलिटी ज्यादा है। और उस प्रोबेबिलिटी को बढ़ाने के लिए, सर्टेन करने के लिए बहुत से प्रयोग किए गए। बड़े से बड़ा प्रयोग यह था कि ब्राह्मण को एक सुनिश्चित जीवन व्यवस्था दी गई, एक डिसिप्लिन दी गई। यह डिसिप्लिन इसलिए दी गई कि इस आदमी को या इस स्त्री को जो नई आत्मा अपने गर्भ की तरह चुनेगी, तो उस आत्मा को बहुत स्पष्ट हो जाना चाहिए कि वह उसके टाइप से मेल खाता है कि नहीं खाता है।

इसलिए मैने परसों आपसे कहा कि वर्णसंकर होने के डर से नहीं, क्योंकि वर्णसंकर से तो बहुत ही विकसित व्यक्तित्व पैदा हो सकते हैं, लेकिन दो जातियों में शादी न हो, उसका कारण बहुत दूसरा था। उसका कुल कारण इतना था कि हम प्रत्येक वर्ण को एक स्पष्ट फार्म, एक रूप दे देना चाहते थे। और प्रत्येक वर्ण को इतना स्पष्ट ढांचा दे देना चाहते थे कि आत्माएं, जो चुनाव करती हैं अपने नए जन्म के लिए, उनके लिए एकदम सुगम व्यवस्था हो जाए। फिर भी भूल-चूक हो जाती थी। इतने बड़े समाज में बहुत वैज्ञानिक प्रयोग भी भूल-चूक ले आता है। तो कभी किसी...।

अब एक पिता और एक मां, जिनके दोनों के जीवन की खोज ज्ञान रही है, निश्चित ही ये जिस गर्भ को निर्मित करेंगे, वह गर्भ किसी ज्ञान की खोजी आत्मा के लिए सुगमतम होगा। इसलिए बहुत संभावना है कि ब्राह्मण के घर में ब्राह्मण का टाइप पैदा हो। संभावना है, निश्चय नहीं है। भूल-चूक हो सकती है। इसलिए भूल-चूक के लिए तरलता थी, थोड़ी यात्रा हो सकती थी।

इन चार हिस्सों में जो स्ट्रैटिफिकेशन किया गया समाज का, चार हिस्सों में तोड़ दिया गया, ये चार हिस्से नीचे-ऊपर की धारणा से बहुत बाद में भरे। पहले तो एक बहुत वैज्ञानिक, एक बहुत मनोवैज्ञानिक प्रयोग था, जो इनके बीच किया गया। ताकि आदमी पहचान सके कि उसके जीवन का मौलिक, उसके जीवन का मौलिक पैशन, उसके जीवन की मौलिक वासना क्या है। क्योकि वह उसी वासना से यात्रा करके निर्वासना तक पहुंच सकता है।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे है कि तू क्षत्रिय है। और सब बातें छोड़ दे, तो भी मैं तुझे कहता हूं कि तेरे लिए यही उचित है, तू लड़ने से मत भाग। तू लड़। तू लड़ ही सकता है। तेरा सारा व्यक्तित्व ही योद्धा का व्यक्तित्व है। तू हाथ में किताब लेकर नहीं बैठ सकता। हाथ मे किताब रहेगी, लेकिन तेरे प्राणों तक किताब नहीं पहुंच सकती। तू सेवा करने की फिक्र में पड़ जाए कि सेवक हो जाऊं, लोगों के पैर दबाऊं, तो तेरे हाथ पैर दबाते रहेंगे, तेरी आत्मा वहां नहीं होगी। तू धन कमाने में लग जा, तो तू रुपये इकट्ठा करता रहेगा, लेकिन वे रुपये तेरे लिए निर्मूल्य होंगे; उनका मूल्य नहीं होगा।

मूल्य रुपये में नहीं होता, मूल्य व्यक्ति के वर्ण में होता है। उससे रुपये मे आता है। मूल्य रुपये में नहीं होता, मूल्य व्यक्ति के वर्ण में होता है। अगर वैश्य के हाथ में रुपया आ जाए तो उसमें मूल्य होता है, क्षत्रिय के हाथ मे रुपये का इतना ही मूल्य हो सकता है कि वह तलवार खरीद ले, इससे ज्यादा मूल्य नहीं होता। इंट्रिंजिक वैल्यू नहीं होती रुपये की क्षत्रिय के हाथ में; हां, एक्सटर्नल वैल्यू हो सकती है कि एक तलवार खरीद ले।

एक ब्राह्मण के हाथ में रुपये का कोई मतलब नहीं होता, कोई मतलब ही नहीं होता; ठीकरा होता है। इसलिए ब्राह्मण रुपये को ठीकरा कहते रहेंगे। वैश्य की

समझ में कभी नहीं आता कि बात क्या है! यह हो नहीं सकता। उसे तो दिखाई पड़ेगा कि इस जगत में कुछ चल नहीं सकता, पैसा ही सब कुछ चला रहा है।

इसलिए अब तक दुनिया में जो भी व्यवस्थाएं बनी हैं, वे भी गहरे में वर्ण की ही व्यवस्थाओं के रूपांतरण हैं। अब तक पृथ्वी पर कोई भी व्यवस्था ब्राह्मण की नहीं बन सकी। संभावना है आगे। आज जो पश्चिम में बहुत बुद्धिमान लोग मेरिटोक्रेसी की बात कर रहे हैं, गुणतंत्र की, तो कभी ऐसा वक्त आ सकता है कि जगत में ब्राह्मण की व्यवस्था हो। शायद वैज्ञानिक इतने प्रभावशाली हो जाएंगे आने वाले पचास सालों में कि राजनीतिज्ञों को अपने आप जगह खाली कर देनी पड़े। अभी भी बहुत प्रभावशाली हो गए हैं। अभी भी एक वैज्ञानिक के ऊपर निर्भर करता है बड़े से बड़ा युद्ध, कि कौन जीतेगा।

अगर आइंस्टीन जर्मनी में होता, तो जीत का हिसाब और होता। आइंस्टीन अमेरिका में था, तो हिसाब और हो गया। हिटलर को अगर कोई भी भूल-चूक पछताती होगी अभी भी नर्क में, तो एक ही भूल-चूक पछताती होगी कि इस यहूदी को भाग जाने दिया, वही गलती हो गई। यह एक आदमी पर इतना बड़ा निर्णय होगा...।

ज्ञान निर्णायक होता जा रहा है! क्षत्रिय दुनिया पर हुकूमत कर चुके। वैश्य आज अमेरिका में हुकूमत कर रहे हैं। शूद्र आज रूस और चीन में हुकूमत कर रहे हैं। शूद्र यानी प्रोलिटेरिएट, शूद्र यानी वह जिसने अब तक सेवा की थी, लेकिन बहुत सेवा कर चुका, अब वह कहता है, हटो! अब हम मालकियत भी करना चाहते हैं।

लेकिन ब्राह्मण के हाथ में भी कभी आ सकती है व्यवस्था। संभावना बढ़ती जाती है। क्योंकि क्षत्रियों के हाथ में जब तक व्यवस्था रही, सिवाय तलवार चलने के कुछ भी नहीं हुआ। अमेरिका के हाथ में, जब से वैश्यों के हाथ में धन की सत्ता आई है, तब से सारी दुनिया में सिवाय धन के और कोई चीज विचारणीय नहीं रही। और जब से प्रोलिटेरिएट, सेवक, श्रमिक के हाथ में व्यवस्था आई है, तब से वह दुनिया में एरिस्टोक्रेसी ने जो भी श्रेष्ठ पैदा किया था, उसे नष्ट करने में लगा है।

चीन में जिसे वे सांस्कृतिक क्रांति कह रहे हैं, वह सांस्कृतिक क्रांति नहीं, सांस्कृतिक हत्या है। जो भी संस्कृति ने पैदा किया है चीन की, उस सबको नष्ट करने में लगे हैं। बुद्ध की मूर्तियां तोड़ी जा रही हैं, मंदिर गिराए जा रहे हैं! विहार, मस्जिदें, गुरुद्वारे गिराए जा रहे हैं। कीमती चित्र, बहुमूल्य पेंटिंग्स, वे सब बुर्जुआ हो गई हैं, उन सबमें आग लगाई जा रही है।

यह जो कृष्ण उसको कह रहे हैं अर्जुन को, वह एक बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि तू अन्यथा हो नहीं सकता। और इसको भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि क्यों नहीं हो सकता। अगर अर्जुन चाहे, तो क्यों ब्राह्मण नहीं हो सकता? अगर बुद्ध क्षत्रिय घर में पैदा होकर ब्राह्मण हो सकते है, और बुद्ध जैसा ब्राह्मण नहीं हुआ। अगर महावीर क्षत्रिय घर में पैदा होकर ब्राह्मण हो सकते हैं, और महावीर जैसा ब्राह्मण नहीं हुआ। जैनों के तो चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय है, लेकिन क्षत्रिय का कोई काम नही किया; शुद्धतम ब्राह्मण की यात्रा पर निकले। तो क्यों कृष्ण जोर देते है कि अर्जुन, तू क्षत्रिय ही हो सकता है। जब बुद्ध हो सकते है, महावीर हो सकते हैं, पार्श्व हो सकते है, नेमिनाथ हो सकते है-नेमिनाथ तो कृष्ण के चचेरे भाई ही थे-वे जब हो सकते है, तो इस अर्जुन का क्या कसूर है कि नहीं हो सकता! तो थोड़ी-सी बातें समझ लेनी जरूरी है।

आज मनोविज्ञान कहता है कि तीन साल की उम्र तक आदमी जितना सीखता है, वह पचास प्रतिशत है पूरे जीवन के ज्ञान का, फिफ्टी परसेंट। बाकी शेष जीवन में वह पचास प्रतिशत और सीखेगा। पचास प्रतिशत तीन साल में सीख लेता है; शेष पचास प्रतिशत आने वाले जीवन मे सीखेगा। और वह जो पचास प्रतिशत उसने तीन वर्ष की उम्र तक सीखा है, उसे बदलना करीब-करीब असंभव है। बाद में जो पचास प्रतिशत सीखेगा, उसे बदलना कभी भी संभव है। तीन वर्ष तक मानना चाहिए, समझना चाहिए कि व्यक्ति का मन करीब-करीब प्रौढ़ हो जाता है भीतर।

अगर बुद्ध और महावीर क्षत्रिय घरों में पैदा होकर भी ब्राह्मण की यात्रा पर निकल जाते हैं, तो उनके लक्षण बहुत बचपन से साफ हैं। बुद्ध को एक प्रतियोगिता

में खड़ा किया गया कि हरिण को निशाना लगाएं, तो वे इनकार कर देते है। इस अर्जुन ने कभी ऐसा नहीं किया। यह अब तक निशाना ही लगाता रहा है; इसकी सारी यात्रा अब तक की क्षत्रिय की ही यात्रा है। आज अचानक, आकस्मिक, एक क्षण में यह कहने लगा कि नहीं। तो इसके पास जो व्यक्तित्व का ढांचा है, वह पूरा का पूरा ढांचा ऐसा नही है कि बदला जा सके। उसकी सारी तैयारी, सारा शिक्षण, सारी कंडीशनिंग बहुत व्यवस्था से क्षत्रिय के लिए हुई है। आज अचानक वह भाग नहीं सकता।

कृष्ण उससे कहते है कि तू जो छोड़ने की बात कर रहा है, वह उपाय नहीं है कोई; कठिन है। तू क्षत्रिय है, यह जान। और अब शेष यात्रा तेरी क्षत्रिय की तरह गौरव के ढंग से पूरी हो सकती है, या तू अगौरव को उपलब्ध हो सकता है और कुछ भी नहीं। तो वे कहते है कि या तो तू यश को उपलब्ध हो सकता है क्षत्रिय की यात्रा से, या सिर्फ अपयश में गिर सकता है।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।। 32।।

हे पार्थ, अपने आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वाररूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते है।

इस दूसरे सूत्र मे भी वे क्षत्रिय की धन्यता की स्मृति दिला रहे है। क्षत्रिय की क्या धन्यता है। क्षत्रिय के लिए क्या ब्लिसफुल है। क्षत्रिय के लिए क्या फुलफिलमेंट है। वह कैसे फुलफिल्ड हो सकता है। वह कैसे आप्तकाम हो सकता है, कैसे भर सकता है पूरा।

युद्ध ही उसके लिए अवसर है। वहीं वह कसौटी पर है। वहीं चुनौती है, वहीं संघर्ष है, वहां मौका है जांच का; उसके क्षत्रिय होने की अग्निपरीक्षा है। कृष्ण कह रहे है कि जैसे स्वर्ग और नर्क के द्वार पर कोई खड़ा हो और चुनाव हाथ में हो। युद्ध में उतरता है तू, चुनौती स्वीकार करता है, तो स्वर्ग का यश तेरा है।

भागता है, पलायन करता है, पीठ दिखाता है, तो नर्क का अपयश तेरा है। यहां स्वर्ग और नर्क किसी भौगोलिक स्थान के लिए सूचक नहीं हैं। क्षत्रिय का स्वर्ग ही यही है...।

मैंने सुना है कि अकबर के दरबार में दो राजपूत गए। युवा, जवान, अभी मूंछ की रेखाएं आनी शुरू हुई हैं। दोनों अकबर के सामने गए और उन्होंने कहा कि हम दो बहादुर हैं और सेवा में उपस्थित हैं; कोई काम! तो अकबर ने कहा, बहादुर हो, इसका प्रमाण क्या है? उन दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, हंसे। तलवारें बाहर निकल गईं। अकबर ने कहा, यह क्या करते हो? लेकिन जब तक वह कहे, तब तक तलवारें चमक गईं, कौध गईं। एक क्षण में तो खून के फव्वारे बह रहे थे; एक-दूसरे की छाती में तलवारें घुस गई थीं। खून के फव्वारों से चेहरे भर गएं थे। और वे दोनों हंस रहे थे और उन्होंने कहा, प्रमाण मिला? क्योंकि क्षत्रिय सिर्फ एक ही प्रमाण दे सकता है कि मौत मुस्कुराहट से ली जा सकती है। तो हम सर्टिफिकेट लिखवाकर कहां से लाएं? सर्टिफिकेट कोई और हो भी नहीं सकता बहादुरी का।

अकबर तो घबड़ा गया, उसने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि इतना मैं कभी नहीं घबड़ाया था। मानसिंह को उसने बुलाया और कहा कि क्या, यह मामला क्या है? मैंने तो ऐसे ही पूछा था! तो मानसिंह ने कहा, क्षत्रिय से दोबारा ऐसे ही मत पूछना। क्योंकि जिंदगी हम हाथ पर लेकर चलते हैं। क्षत्रिय का मतलब यह है कि मौत एक क्षण के लिए भी विचारणीय नहीं है। लेकिन अकबर ने लिखवाया है कि हैरानी तो मुझे यह थी कि मरते वक्त वे बड़े प्रसन्न थे; उनके चेहरों पर मुस्कुराहट थी। तो मानसिंह से उसने पूछा कि यह मुस्कुराहट, मरने के बाद भी! तो मानसिंह ने कहा, क्षत्रिय जो हो सकता था, हो गया। फूल खिल गया। तृप्त! कोई यह नहीं कह सका कि क्षत्रिय नहीं! बात खतम हो गई।

वह जो कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि स्वर्ग और नर्क, जिसके सामने दोनों के द्वार खुले हों, ऐसा क्षत्रिय के लिए युद्ध का क्षण है। वहीं है कसौटी उसकी, वही है परीक्षा उसकी। जिसकी तू प्रतीक्षा करता था, जिसके लिए तू तैयार हुआ आज तक, जिसकी तूने अभीप्सा और प्रार्थना की, जो तूने चाहा, वह आज पूरा

होने को है। और ऐन वक्त पर तू भाग जाने की बात करता है! अपने हाथ से नर्क में गिरने की बात करता है!

क्षत्रिय के व्यक्तित्व को उसकी पहचान कहां है? उस मौके में, उस अवसर में, जहां वह जिंदगी को दांव पर ऐसे लगाता है, जैसे जिंदगी कुछ भी नहीं है। इसके लिए ही उसकी सारी तैयारी है। इसकी ही उसकी प्यास भी है। यह मौका चूकता है वह, तो सदा के लिए तलवार से धार उतर जाएगी; फिर तलवार जंग खाएगी, फिर आंसू ही रह जाएंगे।

अवसर है प्रत्येक चीज का। ज्ञानी का भी अवसर है, धन के यात्री का भी अवसर है, सेवा के खोजी का भी अवसर है। अवसर जो चूक जाता है, वह पछताता है। और जब व्यक्तित्व को उभरने का आखिरी अवसर हो, जैसा अर्जुन के सामने है, शायद ऐसा अवसर दोबारा नहीं होगा, तो कृष्ण कहते हैं, उचित ही है कि तू स्वर्ग और नर्क के द्वार पर खड़ा है। चुनाव तेरे हाथ में है। स्मरण कर कि तू कौन है! स्मरण कर कि तूने अब तक क्या चाहा है! स्मरण कर कि यह पूरी जिंदगी, सुबह से सांझ, सांझ से सुबह, तूने किस चीज की तैयारी की है! अब वह तलवार की चमक का मौका आया है और तू जंग देने की इच्छा रखता है?

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।। 33।।
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।। 34।।

और यदि तू इस धर्मयुक्त संग्राम को नहीं करेगा, तो स्वधर्म को और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।

और सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति को भी कथन करेंगे और वह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मरण से भी अधिक बुरी होती है।

अभय क्षत्रिय की आत्मा है, फियरलेसनेस। कैसा भी भय न पकड़े उसके मन को, कैसे भी भय के झंझावात उसे कंपाएं न। कैसा भी भय हो, मृत्यु

का ही सही, तो भी उसके भीतर हलन-चलन न हो। एक छोटी-सी कहानी आपसे कहूं, उससे ख्याल आ सकेगा।

सुना है मैंने कि चीन में एक बहुत बड़ा धनुर्धर हुआ। उसने जाकर सम्राट को कहा कि अब मुझे जीतने वाला कोई भी नहीं है। तो मैं घोषणा करना चाहता हूं राज्य में कि कोई प्रतियोगिता करता हो, तो मै तैयार हूं। और अगर कोई प्रतियोगी न निकले-या कोई प्रतियोगी निकले, तो मैं स्पर्धा के लिए आ गया हूं। और मै यह चाहता हूं कि अगर कोई प्रतियोगी न निकले या प्रतियोगी हार जाए, तो मुझे पूरे देश का श्रेष्ठतम धनुर्धर स्वीकार किया जाए। सम्राट ने कहा, इसके पहले कि तुम मुझसे कुछ बात करो, मेरा जो पहरेदार है, उससे मिल लो। पहरेदार ने कहा कि धनुर्धर तुम बड़े हो, लेकिन एक व्यक्ति को मै जानता हूं, कुछ दिन उसके पास रह आओ। कहीं ऐसा न हो कि नाहक अपयश मिले।

उस व्यक्ति की खोज करता हुआ वह धनुर्धर जंगल पहुंचा। जब उस व्यक्ति के पास उसने देखा और रहा, तो पता चला कि वह तो कुछ भी नहीं जानता था।

तीन वर्ष उसके पास सीखा। सब सीख गया। तब उसके मन मे हुआ कि अब तो मै सब सीख गया, लेकिन फिर भी अब मै किस मुंह से राजा के पास जाऊं, क्योंकि मेरा गुरु तो कम से कम मुझसे ज्यादा जानता ही है। नही ज्यादा, तो मेरे बराबर जानता ही है। तो अच्छा यह हो कि मै गुरु की हत्या करके चला जाऊं।

अक्सर गुरुओ की हत्या शिष्य ही करते हैं-अक्सर। यह बिलकुल स्वाभाविक नियम से चलता है।

तो गुरु सुबह-सुबह लकड़ियां बीनने गया है जंगल में; वह एक वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया। धनुर्धर है, दूर से उसने तीर मारा, गुरु लकड़ियां लिए चला आ रहा है। लेकिन अचानक सब उलटा हो गया। वह तीर पहुंचा, उस गुरु ने देखा, एक लकड़ी सिर के बंडल से निकालकर उस तीर को मारी। वह तीर उलटा लौटा और जाकर उस युवक की छाती में छिद गया।

गुरु ने आकर तीर निकाला और कहा कि इतना भर मैंने बचा रखा था। शिष्यों से गुरु को थोड़ा-सा बचा रखना पड़ता है। लेकिन तुम नाहक...। मुझसे कह देते। मैं गांव आऊंगा नहीं। और शिष्य से प्रतियोगिता करने आऊंगा? पागल हुए हो? तुम जाओ, घोषणा करो, तुम मुझे मरा हुआ समझो। तुम्हारे निमित्त अब किसी को सिखाऊंगा भी नहीं। और मेरे आने की कोई बात ही नहीं; तुमसे प्रतियोगिता करूंगा! जाओ, लेकिन जाने के पहले ध्यान रखना कि मेरा गुरु अभी जिंदा है। और मै कुछ भी नहीं जानता। उसके पास दस-पांच साल रहकर जो थोड़े-बहुत कंकड़-पत्थर बीन लिए थे, वही। इसलिए उसके दर्शन एक बार कर लो।

बड़ा घबड़ाया वह आदमी। महत्वाकांक्षी के लिए धैर्य बिलकुल नहीं होता। तीन साल इसके साथ खराब हुए। लेकिन अब बिना उस आदमी को देखे जा भी नहीं सकता। तो गया पहाड़ो मे खोजता हुआ, और ऊंचे शिखर पर। उसके गुरु ने कहा था कि मेरा बूढ़ा गुरु है, कमर उसकी झुक गई है, तुम पहचान लोगे। जब वह उसके पास पहुंचा, तो उसने जाकर देखा कि एक अत्यंत वृद्ध आदमी, सौ के ऊपर पार हो गया होगा, कमर झुक गई है, बिलकुल गोल हो गया है। सोचा कि यह आदमी!

उसने कहा कि क्या आप ही वे धनुर्धर है, जिनके पास मुझे भेजा गया है? तो उस बूढ़े ने आंखें उठाई, उसकी पलकों के बाल भी बहुत बड़े हो गए थे, बामुश्किल आंखें खोलकर उसने देखा और कहा, हां, ठीक है। कैसे आए हो? क्या चाहते हो? उसने कहा, मै भी एक धनुर्धर हूं।

तो वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा, अभी धनुष-बाण साथ लिए हो! कैसे धनुर्धर हो? क्योंकि जब कोई कला में पूर्ण हो जाता है, तो यह व्यर्थ का बोझ नहीं ढोता है। जब वीणा बजाने में वीणावादक पूर्ण हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है, क्योंकि फिर वीणा पूर्ण संगीत के मार्ग पर बाधा बन जाती है। और जब धनुर्धर पूरा हो जाता है, तो धनुष-बाण किसलिए? ये तो सिर्फ अभ्यास के लिए थे।

बहुत घबड़ाया वह धनुर्धर। उसने कहा, सिर्फ अभ्यास ही! तो आगे और

कौन-सी धनुर्विद्या है? तो उस बूढ़े ने कहा, आओ मेरे साथ। वह बूढ़ा उसे लेकर पहाड़ के कगार पर चला गया, जहां नीचे हजारों फीट का गड्ढ है।

वह बूढ़ा आगे बढ़ने लगा, वह धनुर्धर पीछे खड़ा रह गया। वह बूढ़ा आगे बढ़ा, उसके पैरों की अंगुलियां पत्थर के बाहर झांकने लगीं। उसकी झुकी हुई गरदन खाई में झांकने लगी। उसने कहा कि बेटे, और पास आओ; इतने दूर क्यों रुक गए हो! उसने कहा, लेकिन वहां तो मुझे बहुत डर लगता है। आप वहां खड़े ही कैसे है? मेरी आंखें भरोसा नहीं करती, क्योंकि वहां तो जरा श्वास भी चूक जाए...!

तो उस बूढ़े ने कहा, जब अभी मन इतना कंपता है, तो निशाना तुम्हारा अचूक नही हो सकता। और जहां भय है, वहां क्षत्रिय कभी पैदा नही होता है। उस बूढ़े ने कहा, जहां भय है, वहां क्षत्रिय कभी पैदा नहीं होता है। वहां धनुर्धर के जन्म की संभावना नहीं है। भयभीत किस चीज से हो? और अगर भय है, तो मन में कंपन होगे ही, कितने ही सूक्ष्म हों, कितने ही सूक्ष्म हो, मन में कंपन होंगे ही।

तो कृष्ण अर्जुन को कह रहे है, तू और भयभीत? तो कल जो तेरा सम्मान करते थे, कल जिनके बीच तेरे यश की चर्चा थी, कल जो तेरा गुणगान गाते थे, कल तक जो तेरी तरफ देखते थे कि तू एक जीवंत प्रतीक है क्षत्रिय का, वे सब हंसेगे। अपयश की चर्चा हो जाएगी, कीर्ति को धब्बा लगेगा। तू यह क्या कर रहा है? तेरा निज-धर्म है जो, तेरी तैयारी है जिसके लिए, जिसके विपरीत होकर तू जी भी न सकेगा; कीर्ति के शिखर से गिरते ही, तू श्वास भी न ले सकेगा।

और ठीक कहते है कृष्ण। अर्जुन जी नहीं सकता। क्षत्रिय मर सकता है गौरव से, लेकिन पलायन करके गौरव से जी नहीं सकता। वह क्षत्रिय होने की संभावना में ही नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं, जो तेरी संभावना है, उससे विपरीत जाकर तू पछताएगा, उससे विपरीत जाकर तू सब खो देगा।

इस संबंध में दो-तीन बातें अंत में आपसे कहूं, जो खयाल ले लेने जैसी हैं; उनसे बड़ी भ्रांति होती है, अगर वे खयाल में न रहें। लग सकता है कि कृष्ण

क्या युद्धखोर हैं, वार-मांगर हैं! लग सकता है कि युद्ध की ऐसी उत्तेजना! युद्ध के लिए ऐसा प्रोत्साहन! तो भूल हो जाएगी, अगर आपने ऐसा सोचा।

कृष्ण सिर्फ एक मनस-शास्त्री हैं। अर्जुन की पोटेंशियलिटी को समझते हैं; अर्जुन क्या हो सकता है, यह समझते हैं; और अर्जुन क्या होकर तृप्त हो सकता है, यह समझते हैं। और अर्जुन क्या होने से चूक जाए, तो सदा के लिए दुख और विषाद को उपलब्ध हो जाएगा और अपने ही हाथ नर्क में, आत्मघाती हो जाएगा, यह भी समझते हैं।

अब आज सारी दुनिया में मनस-शास्त्र के सामने जो गहरे से गहरा सवाल है, वह यही है कि हम प्रत्येक बच्चे को उसकी संभावना, उसकी पोटेंशियलिटी बता सकें, वह क्या हो सकता है। सब अस्तव्यस्त है।

रवींद्रनाथ के पिता रवींद्रनाथ को कवि नहीं बनाना चाहते है। कोई भी पिता नहीं बनाना चाहेगा। मैंने तो सुना है कि महाकवि निराला के घर एक रात एक छोटी-सी बैठक चलती थी। सुमित्रानंदन पंत थे, महादेवी थीं, मैथिलीशरण गुप्त थे, और कुछ लोग थे। मैथिलीशरण गुप्त बहुत दिन बाद आए थे। तो जैसी उनकी आदत थी, निराला के भोजन बनाने वाले महाराज को भी पूछा कि ठीक तो हो? सब ठीक तो है? उसने कहा, और तो सब ठीक है महाराज, लेकिन मेरा लड़का, किसी तरह उसे ठीक करें, बर्बाद हुआ जा रहा है। तो मैथिलीशरण ने पूछा, क्या हुआ तुम्हारे लड़के को? क्या गुंडा-बदमाश हो गया? चोर-लफंगा हो गया? उसने कहा कि नहीं-नहीं, मेरा लड़का कवि हो गया है।

इन सब कवियों पर क्या गुजरी होगी, पता नहीं।

रवींद्रनाथ के पिता भी नहीं चाहते थे कि कवि हो जाए लड़का। सब चेष्टा की, पढ़ाया, लिखाया, पूरा परिवार बड़ा ही धुआंधार पीछे लगा था-इंजीनियर बन जाए, डाक्टर बन जाए, प्रोफेसर बन जाए-कुछ भी बन जाए, काम का बन जाए।

रवींद्रनाथ के घर में एक किताब रखी है, जोड़ासांको भवन में। बड़ा परिवार था, बहुत बच्चे थे, सौ लोग थे घर में। हर बच्चे के जन्मदिन पर उस

किताब में उस बच्चे के संबंध में घर के सब बड़े-बूढ़े भविष्यवाणियां लिखते थे। उस किताब में रवींद्रनाथ के सारे भाई-बहन-काफी थे, दर्जनभर-सबके संबंध में बहुत अच्छी बातें लिखी हैं। रवींद्रनाथ के संबंध में किसी ने अच्छी बात नहीं लिखी है। रवींद्रनाथ की मां ने खुद लिखा है कि रवि से हमें कोई आशा नहीं है। सब लड़के बड़े होनहार हैं; कोई प्रथम आता है, कोई गोल्ड मेडल लाता है, कोई यूनिवर्सिटी में चमकता है। यह लड़का बिलकुल गैर-चमक का है।

लेकिन आज आप नाम भी नहीं बता सकते कि रवींद्रनाथ के उन सब चमकदार भाइयों के नाम क्या हैं! वे अचानक कहीं खो गए।

मनोविज्ञान इस समय बहुत व्यस्त है कि यह जो जगत इतना दुखी मालूम पड़ रहा है, इसका बहुत बुनियादी कारण जो है, वह डिसप्लेसमेंट है। हर आदमी जो हो सकता है, वह नहीं हो पा रहा है। वह कही और लगा दिया गया है। एक चमार है, वह प्रधानमंत्री हो गया है। जिसे प्रधानमंत्री होना चाहिए, वह कहीं जूते बेच रहा है। सब अस्तव्यस्त है। किसी को भी पता भी तो नहीं है कि वह क्या हो सकता है! धक्के है, बिलकुल एक्सिडेंटल है जैसे सब, सांयोगिक है जैसे सब। बाप को एक सनक सवार है कि लड़के को इंजीनियर होना चाहिए, तो इंजीनियर होना चाहिए। अब बाप की सनक से लड़के का क्या लेना-देना! होना था तो बाप को हो जाना चाहिए था। लेकिन बाप को सनक सवार है, बेटे को इंजीनियर होना चाहिए। फिर बाप भी क्या कर सकता है, उसे कुछ भी तो पता नही है।

इसलिए आज सारी दुनिया में मनोवैज्ञानिक इस बात के लिए आतुर है कि प्रत्येक बच्चे की पोटेंशियलिटी की खोज ही मनुष्यता के लिए मार्ग बन सकती है।

वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह युद्ध की बात नहीं कह रहे है, भूलकर भी मत समझ लेना यह। इससे बड़ी भ्रांति पैदा होती है। कृष्ण जब यह कह रहे हैं, तो यह बात स्पेसिफिकली, विशेष रूप से अर्जुन के टाइप के लिए निवेदित है। यह बात, अर्जुन की जो संभावना है, उस संभावना के लिए उत्प्रेरित है। यह बात हर किसी के लिए नहीं है। यह हर कोई के लिए नहीं है।

लेकिन इतने बड़े मनोविज्ञान की समझ खो गई। महावीर ने अहिंसा की बात कही। वह कुछ लोगों के लिए सार्थक है, अगर पूरे मुल्क को पकड़ ले तो खतरा है। कृष्ण ने हिंसा की बात कही। वह अर्जुन के लिए सार्थक है, और कुछ लोगो के लिए बिलकुल सार्थक है, पूरे मुल्क को पकड़ ले तो खतरा है।

लेकिन भूल निरंतर हो जाती है। वह निरंतर भूल यह हो जाती है कि हम प्रत्येक सत्य को जनरलाइज कर देते है; उसको सामान्य नियम बना देते हैं। कोई सत्य व्यक्त जगत मे सामान्य नियम नही है। अव्यक्त जगत की बात छोड़ें, व्यक्त जगत मे, मैनिफेस्टेड जगत मे सभी सत्य सशर्त है, उनके पीछे शर्त है।

ध्यान रखेगे पूरे समय कि अर्जुन से कही जा रही है यह बात, एक पोटेशियल क्षत्रिय से, जिसके जीवन मे कोई और स्वर नही रहा है, न हो सकता है। उसकी आत्मा जो हो सकती है, कृष्ण उसके पीछे बिलकुल लाठी लेकर पड़ गए है, कि तू वही हो जा, जो तू हो सकता है। वह भाग रहा है। वह बचाव कर रहा है, वह डर रहा है, वह भयभीत हो रहा है, वह पच्चीस तर्क खोज रहा है।

कृष्ण युद्धखोर नही है। कृष्ण अर्जुन से कह रहे है यह। और आप भूलकर भी यह मत समझ लेना कि सबके लिए, अर्जुन से कहा गया सत्य, सत्य है। ऐसा भूलकर मत समझ लेना।

हां, एक ही बात सत्य है उसमे, जो जनरलाइज की जा सकती है; और वह यह है कि प्रत्येक की संभावना ही उसका सत्य है। इससे अगर कोई भी बात निकालनी हो, तो इतनी ही निकलती है कि प्रत्येक की उसकी निज-संभावना ही उसके लिए सत्य है।

गीता की इस किताब को अगर महावीर पढ़े, तो भी पढ़कर महावीर महावीर ही होगे, अर्जुन नही हो जाएंगे। क्योकि वे राज समझ जाएंगे कि मेरी पोटेंशियलिटी क्या है, वही मेरी यात्रा है। इस किताब को बुद्ध पढ़ें, तो दिक्कत नहीं आएगी जरा भी। वे कहेंगे, बिलकुल ठीक, मै अपनी यात्रा पर जाता हूं, जो मै हो सकता हूं।

प्रत्येक को जाना है अपनी यात्रा पर, जो वह हो सकता है। और प्रत्येक को

खोज लेना है व्यक्त जगत मे कि मेरे होने की क्या संभावना है। गीता का संदेश इतना ही है, युद्धखोरी का नहीं है। लेकिन भ्रांति हुई है गीता को पढ़कर। युद्धखोर को लगता है कि बिलकुल ठीक, होना चाहिए युद्ध। गैर-युद्धखोर को लगता है, बिलकुल गलत है, युद्ध करवाने की बात कर रहे है!

कृष्ण का युद्ध से लेना-देना ही नही है। जब मै ऐसा कहूंगा, तो आपको जरा मुश्किल होगी, लेकिन मै फिर पुन:-पुन: कहता हूं, कृष्ण को युद्ध से लेना-देना नहीं है। कृष्ण एक मनोवैज्ञानिक सत्य कह रहे है। वे कह रहे है अर्जुन से, यह तेरा नक्शा है, यह तेरा बिल्ट-इन-प्रोसेस है। तू यह हो सकता है। इससे अन्यथा होने की चेष्टा मे सिवाय अपयश, असफलता, आत्मघात के और कुछ भी नहीं है।

शेष कल सुबह बात करेगे।

•••

ग्यारहवां प्रवचन

अर्जुन का जीवन शिखर-युद्ध के ही माध्यम से

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।। 35।।

और जिनके लिए तू बहुत माननीय होकर भी अब तुच्छता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से उपराम हुआ मानेगे।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।। 36।।
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। 37।।

तेरे बैरी तेरे सामर्थ्य की निदा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचनो को कहेगे। फिर उससे अधिक दुख क्या होगा? इसलिए युद्ध करना तेरे लिए सब प्रकार से अच्छा है। क्योकि या तो मरकर तू स्वर्ग को प्राप्त होगा, अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा। इससे हे अर्जुन, युद्ध के लिए निश्चय के साथ खड़ा हो।

कृष्ण की बात यदि यूनान के मनस्वी प्लेटो ने पढ़ी होती, तो सौ प्रतिशत स्वीकृति देता। प्लेटो से किसी ने पूछा, स्वर्ग क्या है? सुख क्या है? तो प्लेटो ने जो सुख की परिभाषा की है, वह समझने जैसी है। प्लेटो ने कहा, अंतस की निजता का बाहर के आचरण से जहां संगीतपूर्ण तालमेल है, वहीं सुख है; जहां अंतस की निजता का बाहर के आचरण से तालमेल है, अविरोध है, वहीं आनंद है। और प्लेटो ने कहा, व्यक्ति जो हो सकता है, जो उसके बीज में छिपा है, जिस दिन वही हो जाता है, उसी दिन स्वर्ग है।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, क्षत्रिय होकर ही तेरा स्वर्ग है। उससे विचलित होकर तेरा कोई सुख नहीं है। तेरी जो निजता है, तेरी जो इंडिविजुअलिटी है, जो तेरे भीतर का गुणधर्म है, जो तू भीतर से बीज लिए बैठा है, जो तू हो सकता है, वही होकर ही-अन्यथा नहीं-तू स्वर्ग को उपलब्ध होगा, तू सुख को उपलब्ध होगा, तू आनंद को अनुभव कर सकता है।

जीवन का आशीर्वाद, जीवन की प्रफुल्लता स्वयं के भीतर जो भी छिपा है, उसके पूरी तरह प्रकट हो जाने में है। जीवन का बड़े से बड़ा दुख, जीवन का बड़े से बड़ा नर्क एक ही है कि व्यक्ति वह न हो पाए, जो होने के लिए पैदा हुआ है; व्यक्ति वह न हो पाए, जो हो सकता था और अन्य मार्गों पर भटक जाए। स्वधर्म से भटक जाने के अतिरिक्त और कोई नर्क नहीं है। और स्वधर्म को उपलब्ध हो जाने के अतिरिक्त और कोई स्वर्ग नहीं है।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि इस दिखाई पड़ने वाले लोक में जिसे लोग सुख कहते हैं, वह तो तुझे मिलेगा ही; लेकिन न दिखाई पड़ने वाले लोक में... !

इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है कि परलोक से हमने जो अर्थ ले रखा है, वह सदा मृत्यु के बाद जो लोक है, उसका ले रखा है। हमने जो व्याख्या कर रखी है अपने मन में इस लोक की और उस लोक की, वह टेंपोरल है, टाइम में है। हमने सोच रखा है कि यह लोक खतम होता है, जहां हमारा जीवन समाप्त होता है, और परलोक शुरू होता है। ऐसा नहीं है।

यह लोक और परलोक साथ ही मौजूद हैं। टेंपोरल नहीं है, समय में

उनका विभाजन नहीं है। बाहर जो हमें मिलता है, वह इहलोक है; भीतर जो हमें मिलता है, वह परलोक है। परलोक का केवल मतलब इतना ही है कि इस लोक के जो पार है, इस लोक के जो बियांड है-वह अभी भी है, इस वक्त भी है। जिसको जीसस ने किंगडम आफ गॉड कहा है, प्रभु का राज्य कहा है, उसे ही इस देश ने परलोक कहा है। परलोक का संबंध आपके जीवन के समाप्त होने से नहीं है; परलोक का संबंध आपके दृश्य से अदृश्य में प्रवेश से है। वह आप अभी भी कर सकते हैं, और वह आप मृत्यु के बाद भी चाहें तो नहीं कर सकते हैं। चाहें तो मृत्यु के बाद भी इहलोक में ही घूमते रहें-इसी लोक में। और चाहें तो जीते-जी परलोक में प्रवेश कर जाएं।

वह आंतरिक-जहां समय और क्षेत्र मिट जाते है, जहां टाइम और स्पेस खो जाते है, जहां दृश्य खो जाते है और अदृश्य शुरू होता है-वह जो आंतरिकता का, वह जो भीतर का लोक है, वहां भी कृष्ण कहते हैं, स्वर्ग। लेकिन स्वर्ग से आप किसी परियों के देश की बात मत समझ लेना। स्वर्ग सिर्फ इनर हार्मनी का नाम है, जहां सब स्वर जीवन के संगीतपूर्ण है। और नर्क सिर्फ इनर, आंतरिक विसंगीत का नाम है, जहां सब स्वर एक-दूसरे के विरोध में खड़े है।

सार्त्र ने नर्क की परिभाषा में एक वचन कहा है। उसने कहा है कि मनुष्य के मन में नर्क उसी क्षण उत्पन्न हो जाता है, जिस क्षण उसके चित्त मे दो बातें खड़ी हो जाती है। टु बी, व्हाट वन इज़ नाट; एंड नाट टु बी, व्हाट वन इज़-वह होने की इच्छा, जो कि मै नहीं हूं; और वह नहीं होने की इच्छा, जो कि मै हूं-इन दोनों के बीच में ही नर्क उपस्थित हो जाता है। सार्त्र भी कृष्ण से राजी होगा।

अर्जुन ऐसे ही नर्क में खड़ा हो गया है। जो है, वह न होने की इच्छा पैदा हुई है उसे; जो नहीं है, वह होने की इच्छा पैदा हुई है। वह एक ऐसे असंभव तनाव में खड़ा हो गया है, जिसमें प्रवेश तो बहुत आसान, लेकिन लौटना बहुत मुश्किल है।

जिंदगी में किसी भी चीज से लौटना बहुत मुश्किल है। जाना बहुत आसान है, लौटना सदा मुश्किल है। और स्वयं के धर्म से जाना बहुत आसान है, क्योंकि

स्वधर्म से विपरीत जाना सदा उतार है। वहां हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता, सिर्फ हम अपने को छोड़ दें, तो हम उतर जाते हैं। स्वधर्म को पाना चढ़ाव है। उतर जाना बहुत आसान है, चढ़ना बहुत कठिन हो जाता है।

पश्चिम का इस समय का एक बहुत कीमती मनोवैज्ञानिक अभी-अभी गुजरा है। उसका नाम था अब्राहम मैसलो। अब्राहम मैसलो के पूरे जीवन की खोज एक छोटे-से शब्द में समा जाती है। और वह शब्द है, पीक एक्सपीरिएंस। वह शब्द है, शिखर का अनुभव। अब्राहम मैसलो का कहना है कि व्यक्ति के जीवन में स्वर्ग का क्षण वही है, जो उसके व्यक्तित्व के शिखर का क्षण है। जिस क्षण कोई व्यक्ति जो हो सकता है, उसके होने के शिखर पर पहुंच जाता है, जिसके आगे कोई उपाय नहीं बचता, जिसके आगे कोई मार्ग नहीं बचता, जिसके आगे कोई ऊंचाई नहीं बचती, जब भी कोई व्यक्ति अपने भीतर के पीक को छू लेता है, तभी समाधि, एक्सटैसी अनुभव करता है।

निश्चित ही, जो पीक एक्सपीरिएंस अर्जुन के लिए होगा, वही पीक एक्सपीरिएंस बुद्ध के लिए नहीं हो सकता। जो पीक एक्सपीरिएंस, शिखर की अनुभूति बुद्ध की है, वही अनुभूति जीसस के लिए नहीं हो सकती।

लेकिन एक बात ध्यान रख लें, जब हम कहते हैं कि वही अनुभूति नहीं हो सकती, तो हमारा प्रयोजन व्यक्ति से है। अर्जुन और मार्ग से उस अनुभूति पर पहुंचेगा; वह क्षत्रिय है, वह क्षत्रिय के मार्ग से पहुंचेगा। हो सकता है, जब दो तलवारें खिंच जाएंगी, और जीवन और मृत्यु साथ-साथ खड़े हो जाएंगे, श्वास ठहर जाएगी और पलभर के लिए सब रुक जाएगा जगत, और पलभर के लिए निर्णय न रह जाएगा कि जीवन में अब एक पल और है-उस तलवार की धार पर, उस चुनौती के क्षण में अर्जुन अपनी पीक पर होगा, वह अपने क्षत्रिय होने के आखिरी शिखर पर होगा। जहां जीवन और मृत्यु विकल्प होंगे, जहां क्षण में सब तय होता होगा-उस डिसीसिव मोमेंट में वह अपने पूरे शिखर पर पहुंच जाएगा।

यह जो शिखर की अनुभूति है, बुद्ध को किसी और मार्ग से मिलेगी, महावीर को किसी और मार्ग से मिलेगी, मोहम्मद को किसी और मार्ग से मिलेगी।

मार्ग भिन्न होंगे, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति जब अपने शिखर पर पहुंचता है, तो शिखर की जो भीतरी अनुभूति है, वह एक होगी।

इसलिए कृष्ण अर्जुन को कह रहे है, एक अवसर मिला है और अवसर बार-बार नहीं मिलते। खोए अवसरो के लिए कभी-कभी जन्मो प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

मार्गन से किसी ने एक दिन पूछा-वह अमेरिका का बड़ा करोड़पति था, अरबपति था-उससे पूछा कि आपको जिंदगी में इतनी सफलता कैसे मिली? तो मार्गन ने कहा, मैंने कभी कोई अवसर नहीं खोया। जब भी अवसर आया, मैंने छलांग लगाई और उसे पकड़ा। अपने को खोने को मै राजी रहा, लेकिन अवसर को खोने को राजी नहीं रहा।

उस आदमी ने पूछा, तो हम कैसे पहचानेंगे कि अवसर आ गया! और जब तक हम पहचानेंगे, तब तक कहीं ऐसा न हो कि अवसर निकल जाए! कहीं ऐसा न हो कि हम पहचाने और छलांग लगाएं, तब तक अवसर जा चुका हो! क्योंकि क्षण तो, क्षण नहीं रुकता। आया नहीं कि गया नहीं। पहचानते-पहचानते चला जाता है। तो आप कैसे पहचानते थे और छलांग लगाते थे?

मार्गन ने जो उत्तर दिया, वह बहुत हैरानी का है। मार्गन ने कहा कि मैं कभी रुका ही नहीं; मैं छलांग लगाता ही रहा। अवसर आ गया तो छलांग काम कर गई, अवसर नहीं आया तो भी मै छलांग लगाता रहा। क्योंकि इतना मौका नहीं था कि मैं प्रतीक्षा करूं, अवसर को पहचानूं, फिर छलांग लगाऊं। मैं छलांग लगाता ही रहा। अवसर का घोड़ा नीचे आ गया, तो हम सवार थे; लेकिन हमारी छलांग जारी थी, जब घोड़ा नहीं था, तब भी।

कृष्ण के लिए जो बड़ी से बड़ी चिंता अर्जुन की तरफ से दिखाई पड़ती है, वह यही दिखाई पड़ती है, एक विराट अवसर...। अर्जुन को महाभारत जैसा अवसर न मिले, तो अर्जुन का फूल खिल नहीं सकता। कोई छोटी-मोटी लड़ाई में नहीं खिल सकता उसका फूल। जहां जीत सुनिश्चित हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता। जहां जीत पक्की हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता।

जहां जीत निश्चिंत हो, वहां अर्जुन का फूल नहीं खिल सकता। जहां जीत चिंता हो, जहां जीत अनिर्णीत हो, जहां हार की उतनी ही संभावना हो, जितनी जीत की है, तो ही उस चुनौती के दबाव में, उस चुनौती की पीड़ा में, उस चुनौती के प्रसव में अर्जुन का फूल खिल सकता है और अर्जुन अपने शिखर को छू सकता है।

इसलिए कृष्ण इतना आग्रह कर रहे हैं कि सब खो देगा! स्वर्ग का क्षण तुझे उपलब्ध हुआ है, उसे तू खो देगा-इस जगत में भी, उस जगत में भी। उस जगत का मतलब, मृत्यु के बाद नहीं-बाहर के जगत में भी, भीतर के भी जगत मे।

और ध्यान रहे, बाहर के जगत में तभी स्वर्ग मिलता है, जब भीतर के जगत में स्वर्ग मिलता है। यह असंभव है कि भीतर के जगत में नर्क हो और बाहर के जगत में स्वर्ग मिल जाए। हां, यह संभव है कि बाहर के जगत में नर्क हो, तो भी भीतर के जगत में स्वर्ग मिल जाए। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर भीतर के जगत में स्वर्ग मिल जाए, तो बाहर का नर्क भी नर्क नही मालूम पड़ता है। और बाहर के जगत में स्वर्ग मिल जाए और भीतर के जगत में नर्क हो, तो बाहर का स्वर्ग भी स्वर्ग नहीं मालूम पड़ता है।

हम जीते हैं भीतर से, हमारे जीने के सारे गहरे आधार भीतर हैं। इसलिए जो भीतर है, वही बाहर फैल जाता है। भीतर सदा ही बाहर को जीत लेता है, ओवरपावर कर लेता है। इसलिए जब आपको बाहर नर्क दिखाई पड़े, तो बहुत खोज करना। पाएंगे कि भीतर नर्क है, बाहर सिर्फ रिफ्लेक्शन है, बाहर सिर्फ प्रतिफलन है। और जब बाहर स्वर्ग दिखाई पड़े, तब भी भीतर देखना। तो पाएंगे, भीतर स्वर्ग है, बाहर सिर्फ प्रतिफलन है।

इसलिए जो बुद्धिमान हैं, वे बाहर के नर्क को स्वर्ग बनाने में जीवन नष्ट नहीं कर देते। वे भीतर के नर्क को स्वर्ग बनाने का श्रम करते हैं। और एक बार भीतर का नर्क स्वर्ग बन जाए, तो बाहर कोई नर्क होता ही नहीं।

मैंने सुना है कि बक, इंग्लैड का एक बहुत बड़ा विचारक था। वह ऐसे नास्तिक था, लेकिन चर्च जाता था। मित्रों ने कई बार उससे कहा भी कि तुम चर्च किसलिए जाते हो? क्योंकि तुम नास्तिक हो!

ठीक ऐसी ही बात कभी डेविड ह्यूम से भी किसी ने पूछी थी। डेविड ह्यूम भी एक नास्तिक था, बड़े से बड़ा इस जगत में जो हुआ, कीमती से कीमती। वह भी लेकिन रविवार को चर्च जरूर जाता था। तो ह्यूम ने जो उत्तर दिया, वही बक ने भी उत्तर दिया था।

बक ने कहा कि चर्च में जो कहा जाता है, उसमें मेरा कोई विश्वास नहीं। लेकिन वह जो आदमी कहता है, उसकी आंखों में मैं झांकता हूं, तो मुझे लगता है कि वह आदमी किसी भीतरी विश्वास से कह रहा है। और सप्ताह में एक दिन ऐसे आदमी की आंख में झांक लेना उचित है, जिसे भीतरी कोई स्वर्ग का अनुभव हो रहा है। वह जो कहता है, उसमें मुझे कोई भरोसा नही है कि वह आदमी जो कह रहा है, वह ठीक हो सकता है। उसके सिद्धांतो को मै तर्कयुक्त नहीं मानता। लेकिन फिर भी सप्ताह में मै एक ऐसे आदमी की आंख में झांक लेना चाहता हूं, जो भीतर आश्वस्त है। उसकी सुगंध!

यह बक ने एक दिन, चर्च में जो फकीर बोलता था, उससे पूछा कि मै तुमसे पूछना चाहता हूं। उस दिन उसने बाइबिल के एक वचन की व्याख्या करते हुए कहा कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास करते है, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं। बक ने उससे पूछा कि आप कहते है, भले लोग, जो परमात्मा मे विश्वास करते है, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं। तो मै पूछना चाहता हूं कि बुरे लोग, जो परमात्मा में विश्वास करते है, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते है या नही? और यह भी पूछना चाहता हूं कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास नहीं करते है, वे स्वर्ग को उपलब्ध होते हैं या नहीं?

वह फकीर साधारण फकीर नहीं था, ईमानदार आदमी था। उसने कहा, उत्तर देना मुश्किल है, जब तक कि मैं परमात्मा से न पूछ लूं। क्योंकि इसका मुझे कुछ भी पता नहीं। रुको, सात दिन मैं प्रार्थना करूं, फिर उत्तर दे सकता हूं। क्योंकि तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। अगर मैं यह कहूं कि भले लोग, जो परमात्मा में विश्वास नहीं करते, नर्क जाते हैं, तो भलाई बेमानी हो जाती है, मीनिंगलेस हो जाती है। और अगर मैं यह कहूं कि भले लोग, जो परमात्मा में

विश्वास नहीं करते हैं, वे भी स्वर्ग को उपलब्ध हो जाते हैं, तो परमात्मा बेमानी हो जाता है। उसमें विश्वास का कोई अर्थ नहीं रहता। तो रुको।

लेकिन वह फकीर सात दिन सो नहीं सका। सब तरह की प्रार्थनाएं कीं, लेकिन कोई उत्तर न मिला।

सातवां दिन आ गया। सुबह ही आठ बजे बक मौजूद हो जाएगा और पूछेगा कि बोलो! तो वह पांच बजे ही चर्च में चला गया, हाथ जोड़कर बैठकर प्रार्थना करता रहा। प्रार्थना करते-करते उसे नींद लग गई। उसने एक स्वप्न देखा। वही जो सात दिन से उसके प्राणो में चल रहा था, वही स्वप्न बन गया।

उसने स्वप्न देखा कि वह ट्रेन में बैठा हुआ है, तेजी से ट्रेन जा रही है। उसने लोगों से पूछा, यह ट्रेन कहां जा रही है? उन्होंने कहा, यह स्वर्ग जा रही है। उसने कहा, अच्छा हुआ; मै देख ही लूं। सुकरात कहां है? आदमी अच्छा था, लेकिन ईश्वर में भरोसा नहीं था। वे सारे लोग कहां हैं? बुद्ध कहां हैं? आदमी अच्छे से अच्छा था, लेकिन ईश्वर की कभी बात नहीं की। महावीर कहां हैं? आदमी अच्छे से अच्छा था, लेकिन परमात्मा की जब भी किसी ने बात की, तो कह दिया कि नहीं है। ये कहां है?

स्वर्ग पहुंच गई ट्रेन। बड़ी निराशा हुई लेकिन स्वर्ग को देखकर। ऐसी आशा न थी। सब उजड़ा-उजड़ा मालूम पड़ता था। सब रूखा-रूखा मालूम पड़ता था। रौनक न थी। पूछा, यही स्वर्ग है न? लोगों ने कहा, यही स्वर्ग है। पूछा कि महावीर कहां? बुद्ध कहां? सुकरात कहां? बहुत खोज-बीन की, पता चला कि नहीं हैं। बहुत घबड़ाया फकीर। स्टेशन भागा हुआ आया और कहा कि नर्क की गाड़ी?

नर्क की गाड़ी में बैठा और नर्क पहुंचा। लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ा। देखा कि बड़ी रौनक है। जैसी स्वर्ग में होने की आशा थी, ऐसी रौनक है। जैसी नर्क में उदासी होनी चाहिए थी, वैसी स्वर्ग में थी। बड़ी चिंता हुई उसे कि कुछ भूल-चूक तो नहीं हो रही है! स्टेशन पर उतरा, तो बड़ी ही रौनक है; रास्तों से निकला, तो बड़ा काम चल रहा है, बड़ा आनंद है; कहीं गीत है, कहीं कुछ है, कहीं कुछ है।

उसने पूछा कि सुकरात, महावीर, बुद्ध यहां हैं? उन्होंने कहा, यहां हैं। उसने कहा, लेकिन यह नर्क है! सुकरात नर्क में? तो जिस आदमी से उसने पूछा

था, उसने कहा कि चलो, मैं तुम्हें सुकरात से मिला देता हूं। एक खेत में सुकरात गड्ढा खोद रहा था। उसने सुकरात से पूछा कि तुम सुकरात और यहां नर्क में? अच्छे आदमी और नर्क में? तो सुकरात हंसने लगा और उसने कहा, तुम अभी भी गलत व्याख्याएं किए जा रहे हो। तुम कहते हो कि अच्छा आदमी स्वर्ग में जाता है। हम कहते हैं, अच्छा आदमी जहां जाता है, वहां स्वर्ग आता है। तुम गलत ही बात-व्याख्या-अभी तक तुम अपनी बाइबिल से गलत व्याख्या किए जा रहे हो। हम कहते हैं, अच्छा आदमी जहां जाता है, वहां स्वर्ग आता है; बुरा आदमी जहां जाता है, वहां नर्क आता है।

अच्छे आदमी स्वर्ग में नहीं जाते। स्वर्ग कोई रेडीमेड जगह नहीं है कि वहां कोई चला गया। स्वर्ग अच्छे आदमी का निर्माण है। वह उसके भीतर जब अच्छा निर्मित हो जाता है, तो बाहर अच्छा फैल जाता है। वह अच्छे आदमी की छाया है; वह अच्छे आदमी की सुगंध है; वह अच्छे आदमी के प्राणों की वीणा से उठा संगीत है। नर्क कोई स्थान नहीं है; वह बुरे आदमी के जीवन से उठे विसंगीत का फैल जाना है; वह बुरे आदमी के भीतर से उठी दुर्गंधों का छा जाना है; वह बुरे आदमी के भीतर जो विक्षिप्तता है, उसका बाहर तक उतर आना है।

कृष्ण जब अर्जुन से कहते हैं कि स्वर्ग का क्षण है, उसे तू खो रहा है। तो एक ही बात ध्यान में रखनी है कि तेरे आंतरिक व्यक्तित्व के लिए जो शिखर अनुभव हो सकता है, उसका क्षण है, और तू उसे खो रहा है।

प्रश्न: आपने बताया कि साधन में, मार्ग में भिन्न रहने पर भी बुद्ध, महावीर, रमण की भीतरी अनुभूति में भेद नहीं होता है। किंतु अभिव्यक्ति देखते हैं, तो एक-दूसरे से भिन्न और कभी-कभी विरुद्ध दिशा की मालूम होती है। जैसे कि शंकर का बुद्ध से विरोध है। यह कैसे?

अनुभूति में तो कभी भेद नहीं होता, लेकिन अभिव्यक्ति में बहुत भेद होता है। और जो लोग अभिव्यक्ति को देखकर ही सोचते हैं, उन्हें विरोध भी दिखाई

पड़ सकता है। साधारण नहीं, असाधारण दुश्मनी और शत्रुता दिखाई पड़ सकती है। क्योंकि अभिव्यक्ति अनुभूति से नहीं आती, अभिव्यक्ति व्यक्ति से आती है। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है।

मैं एक बगीचे में जाऊं। फूल खिले हैं; पक्षी गीत गा रहे है; एक रुपया पड़ा है। अगर मैं रुपये का मोही हूं, तो मुझे फूल दिखाई नहीं पड़ेंगे। मुझे पक्षियों के गीत सुनाई पड़ते हुए भी सुनाई नहीं पड़ेंगे। सब खो जाएगा, रुपया ही दिखाई पड़ेगा, इम्फेटिकली मुझे रुपया ही दिखाई पड़ेगा। रुपया मेरी जेब में आ जाए, तो शायद पक्षी का गीत भी सुनाई पड़े।

लेकिन एक कवि प्रवेश कर गया है। उसे रुपया दिखाई ही नहीं पड़ेगा। जहां पक्षी गीत गा रहे है, वहां रुपया दिखाई पड़ जाए, तो वह आदमी कवि नहीं है। उसका सारा व्यक्तित्व पक्षी के गीतों की तरफ बह जाएगा। चित्रकार है, उसका सारा व्यक्तित्व रंगों के लिए बह जाएगा।

फिर वे एक ही बगीचे से होकर लौटें और गांव में आकर अगर हम उनसे पूछें कि क्या देखा? तो बगीचा एक था, जहां वे गए थे, लेकिन अभिव्यक्ति भिन्न होगी। अभिव्यक्ति में चुनाव होगा। जो जिसने देखा होगा या जो जिसको पकड़ा होगा या जो जिसको प्रकट कर सकता होगा, वह वैसे ही प्रकट करेगा।

मीरा भी उस जगत में गई है उस अनुभूति के, लेकिन लौटकर नाचने लगी। महावीर की नाचने की कल्पना भी नहीं कर सकते। सोच भी नहीं सकते, कि महावीर और नाचें। उनके व्यक्तित्व में नाचने की कोई जगह ही नहीं है। महावीर भी उस जगत से लौटे हैं, पर वे नाचते नहीं। उस जगत की जो खबर वे लाए हैं, वह खबर अपने ही ढंग से प्रकट करेंगे। उनकी खबर उनकी अहिंसा से प्रकट होनी शुरू होती है। उनके शील से, उनके चरित्र से, उनके उठने-बैठने से-छोटी-छोटी चीज से प्रकट होती है कि वे अद्वैत को जानकर लौटे हैं।

रात महावीर एक ही करवट सोते हैं, करवट नहीं बदलते। कोई पूछता है महावीर से कि आप रातभर एक ही करवट क्यों सोते हैं? तो वे कहते हैं कि कहीं करवट बदलूं और कोई कीड़ा-मकोड़ा दबकर दुख पाए। इसलिए एक ही

करवट, दि लीस्ट जो पासिबल है, बिलकुल कम से कम जो संभव है, वह यह। एक करवट तो सोना ही पड़ेगा, तो एक करवट ही सोए रहते हैं। रातभर पैर भी नहीं हिलाते कि रात के अंधेरे में कोई दब जाए, कोई दुख पाए।

अब इस व्यक्ति की अद्वैत की जो अनुभूति है, वह अहिंसा से प्रकट हो रही है। यह यही कह रहा है कि एक ही है। क्योंकि जब तक कीड़ा-मकोड़ा मैं ही नहीं हूं, तब तक उसके लिए इतनी चिंता पैदा नहीं होती। लेकिन यह महावीर का अपना ढंग है, यह उनके व्यक्तित्व से आ रहा है।

मीरा नाच रही है। उसने जो जाना है, वह उसके भीतर नाच की तरह अभिव्यक्त हो रहा है। वह नाच ही सकती है। वह जो खुशी, वह जो आनंद उसके भीतर भर गया है, अब कोई शब्द उसे प्रकट नहीं कर सकते। वह तो उसके घुंघरुओं से प्रकट होगा। वह उसी अद्वैत को, पद-घुंघरू-बांध खबर लाएगी।

अब अगर हम महावीर और मीरा को आमने-सामने करें, तो हम कहेंगे, इनकी अनुभूतियां अलग होनी चाहिए। कहां बजता हुआ घूंघरु, कहां रात भी करवट न लेता हुआ आदमी! कहां नाचती हुई मीरा के न मालूम कितने पैर पृथ्वी पर पड़े और कहां महावीर कि एक-एक पैर को सम्हालकर रखते हैं, फूंककर रखते हैं। वर्षा आ जाती है तो चलते नहीं, जमीन गीली हो तो पैर नहीं उठाते, कि कहीं कोई कीड़ा न दब जाए। और कहां नाचते हुए पैर मीरा के! बड़ा विपरीत है। महावीर कहेंगे, बहुत हिंसा हुई जा रही है। मीरा कहेगी, नाच ही नहीं रहे, तो कहां जाना उसको! क्योंकि उसे जानकर जो नहीं नाचा, तो जाना ही कहां!

फिर शंकर जैसा व्यक्ति है, वह भी जानकर आता है वहां से। तो वह कहता है कि एक ब्रह्म ही सत्य है, बाकी सब माया है। बुद्ध जैसा व्यक्ति है, जो कहता है, कोई ब्रह्म-व्रह्म नहीं है; कुछ नहीं है, शून्य है सब। बड़ी उलटी बातें कहते हैं, तो विवाद दिखाई पड़ता है, बड़ा विरोध दिखाई पड़ता है।

शंकर और बुद्ध से ज्यादा विरोधी आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि एक कहता है, पाजिटिव है सब, विधायक है सब; और एक कहता है, निगेटिव है सब, नकारात्मक है सब। लेकिन वह भी व्यक्तित्व की एंफेसिस है, वह भी

व्यक्तित्व का ही प्रभाव है। जो जानकर वे लौटे हैं, वह करीब-करीब ऐसा है जैसे कि कोई गिलास आधा भरा रखा हो और दो आदमी उसे देखकर आए हों। और एक आदमी आकर कहे कि गिलास आधा खाली है, और एक आदमी कहे कि झूठ, गिलास आधा भरा है। एक खाली पर जोर दे और एक भरे पर जोर दे। और विवाद निश्चित हो जाने वाला है, क्योंकि भरा और खाली बड़े विपरीत शब्द है। बिलकुल हो जाने वाला है।

बर्नार्ड शा के संबंध में मैंने सुना है कि वह अमेरिका गया बहुत-बहुत निमंत्रणों के बाद। तब वह कहता रहा कि अमेरिका बड़ा नासमझ, ईडियाटिक मुल्क है; मैं जाता ही नहीं, ऐसे मूढ़ों के बीच जाकर मै क्या करूंगा। इधर वह गाली देता रहा, उधर अमेरिका में आकर्षण बढ़ता गया। जो गाली देता है, उसके प्रति आकर्षण तो बढ़ ही जाता है। बहुत निमंत्रण थे, तो बर्नार्ड शा गया। जिस जगह उसे उतारा गया, वहां इतना भीड़-भड़क्का हो गया और इतना खतरा था कि कोई झगड़ा न हो जाए, तो उसे चोरी से पहले ही दूसरी जगह उतारकर ले जाया गया।

और पहली ही सभा में वह बोला, तो उसने उपद्रव शुरू किया। वह पहली ही सभा में बोला, तो उसने कहा कि जहां तक मै देख पा रहा हूं, यहां मौजूद कम से कम पचास प्रतिशत आदमी बिलकुल महामूर्ख है-सभा में उसने कहा-यहां मै देख रहा हूं, तो कम से कम फिफ्टी परसेंट आदमी बिलकुल महामूढ़ है। जो अध्यक्ष था, वह घबड़ा गया और लोग चिल्लाने लगे कि शर्म! शर्म! वापस लो अपने शब्द! अध्यक्ष ने कहा कि आप शुरू से ही उपद्रव की बात कह दिए। किसी तरह लोगों को समझाइए!

तो बर्नार्ड शा ने कहा कि नहीं! नहीं! मै क्या कहना चाह रहा था और मुझसे बड़ी गलती हो गई। मैं कह रहा था कि जहां तक दिखाई पड़ता है, यहां उपस्थित पचास प्रतिशत लोग बहुत बुद्धिमान मालूम पड़ते है। और लोगों ने तालियां बजाईं कि यह बात ठीक कही गई है। और बर्नार्ड शा ने झुककर अध्यक्ष से कहा कि कन्फर्म हो गया कि पचास परसेंट यहां बिलकुल गधे हैं।

लेकिन इन दो वक्तव्यों में बड़ा फर्क मालूम पड़ता है। बात वही है। शंकर और बुद्ध के बीच भी ऐसा ही मामला है।

बुद्ध को नकारात्मक शब्द प्रिय है। उसके कारण हैं उनके व्यक्तित्व में, साइकोलाजिकल कारण हैं। बुद्ध आ रहे हैं समृद्ध घर से, जहां सब पाजिटिव था। महल था, राज्य था, धन था, स्त्रियां थीं-सब था। इतना ज्यादा था सब कि बुद्ध के लिए पाजिटिव शब्द में कोई रस नहीं रह गया। इतना सब भरा था कि अब बुद्ध के लिए रस खाली होने में है।

शंकर एक गरीब ब्राह्मण के लड़के हैं, जहां कुछ भी नहीं है। एक भिखारी घर से आ रहे हैं, जहां कुछ भी नहीं था। जहां झोपड़ा था, जिसमें कुछ भी नहीं था। शंकर का रस नहीं में नहीं हो सकता, नहीं तो बहुत देखी। शंकर का रस है में है, पाजिटिव में है।

तो शंकर के लिए ब्रह्म जब प्रकट होगा, तो वह होगा-सब है। और बुद्ध के लिए जब ब्रह्म प्रकट होगा, तो ऐसा होगा-सब खाली है। यह साइकोलाजिकल टाइप का फर्क है। इसमें अनुभूति का जरा भी फर्क नहीं है।

शंकर और बुद्ध तो बहुत दूर है। बुद्ध के वक्त ही महावीर हैं। एक ही साथ, एक ही इलाके में हैं। और कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि एक ही गांव में दोनों थे। तो बिलकुल कंटेंप्रेरी हैं। टाइप में भी बहुत फर्क नहीं होना चाहिए, क्योंकि महावीर भी शाही घर से आते हैं, बुद्ध भी शाही घर से आते हैं। दोनों साथ-साथ हैं। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक गांव में आधी धर्मशाला में महावीर ठहरे थे, आधी में बुद्ध ठहरे थे। फिर भी बातचीत नहीं हो सकी; फिर भी मिलना नहीं हुआ।

और बातें बड़ी विपरीत हैं। क्योंकि महावीर कहते हैं, आत्मा को जान लेना ही ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, जो आत्मा को मानता है, उससे बड़ा अज्ञानी नहीं है। अब और क्या विरोध हो सकता है! तलवारें सीधी खिंची हैं। महावीर कहते हैं, आत्मा को जान लेना ही ज्ञान है। और बुद्ध कहते हैं, आत्मा? आत्मा को मानने वाले से बड़ा कोई अज्ञानी नहीं है।

और फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि दोनों एक ही बात कहते हैं। फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि वक्तव्य विरोधी हैं, अनुभूति विरोधी जरा भी नहीं है। फिर क्यों ऐसे वक्तव्य हैं?

शब्दो के अर्थ उस परम अनुभूति में बहुत निंजी और प्राइवेट हो जाते है। एक तो हमारी कामन मार्केट की, बाजार की भाषा है, जहां सब शब्द कामन है। अगर हम कहते है मकान, तो वही मतलब होता है, जो आपका है। वैसे गहरे मे फर्क होता है। लेकिन ऊपर से काम चलने लायक बराबर होता है। जब मै कहता हूं मकान, तो मुझे मेरा मकान खयाल मे होता है और आपको अपना मकान खयाल में होता है। अगर हम दोनो मकान की तस्वीर खीचे, तो फर्क पड़ जाएगा।

जब मै कहता हूं कुत्ता, तो मेरा अपना अनुभव है कुत्तो का, वही होता है उस शब्द में। आपका अपना अनुभव है, वही होता है। हो सकता है, कुत्तो से मैने जो जाना हो, वह प्रीतिपूर्ण हो, और आपने सिवाय कुत्तो से बचपन से डर के अलावा कुछ भी न जाना हो। जब भी गली से निकले हो, तभी कुत्ता भौका हो। तो जब कुत्ता शब्द हम बोलते है, तो शब्द बिलकुल सामान्य होता है, लेकिन अगर भीतर हम खोजने जाएं, तो आपका कुत्ता और होगा, मेरा कुत्ता और होगा। लेकिन कामचलाऊ दुनिया है शब्दो की, वहां चल जाता है। वहां चल जाता है।

जैसे-जैसे गहरी अनुभूति मे उतरते है-जो कि बाजार में नही है, जो कि एकांत मे है-वहां मुश्किल बढ़नी शुरू हो जाती है। जब महावीर कहते है आत्मा, तो उनका अपना निजी अर्थ है। यह बिलकुल प्राइवेट लैग्वेज है। महावीर का मतलब होता है आत्मा से, जहां अहंकार नही है। अहंकार को छोड़कर जो भीतर शेष रह जाता है, वही आत्मा है। और तब वे कहते है कि आत्मा को जान लेना ज्ञान है। और आत्मा को जान लेने का मार्ग अहंकार का विसर्जन है। अगर हम अहंकार को शून्य कर दें स्वयं से, तो जो बचता है, महावीर के लिए आत्मा है।

बुद्ध आत्मा से अहंकार का ही मतलब लेते है। वे कहते है, जहां तक मै का स्वर है, और आत्मा का मतलब है मै, वहां तक अहंकार है। तो बुद्ध जहां-जहां आत्मा कहते हैं, वहां-वहां उनका मतलब होता है अहंकार।

बुद्ध ने जिस शब्द का उपयोग किया है आत्मा के लिए, वह है अत्ता। अत्ता बहुत बढ़िया शब्द है। आत्मा में भी वह बात नहीं है, जो अत्ता में है पाली के। अत्ता का मतलब ही होता है, दि एनफोर्स्ड ईगो। अत्ता शब्द के स्वर में और दबाव में भी वह बात है-मैं।

बुद्ध कहते हैं, जहां-जहां अत्ता है, जहां-जहां मैं है, वहां-वहां अज्ञान है। और जो आदमी अत्ता को मानता है, आत्मा को मानता है, वह अज्ञानी है। लेकिन बुद्ध भी कहते हैं कि जो अत्ता को छोड़ देता है, तब जो शेष रह जाता है, वही ज्ञान है।

इसीलिए बुद्ध को लोग कहते हैं अनात्मवादी, और महावीर को कहते है आत्मवादी। और वे दोनों एक ही बात कह रहे है, वहां वाद का कोई उपाय नहीं है। वाद शब्दों तक है। वाद अभिव्यक्ति तक है। वाद एक्सप्रेशन है, एक्सपीरिएंस नहीं।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। बड़ी कठिनाई है, हमारे पास तो शब्द आते हैं। और शब्द भी पंडितों के द्वारा आते है। शब्द भी शास्त्रीयता के मार्ग से गुजरकर आते हैं। शब्द ही रह जाते हैं। और अक्सर ऐसा नहीं हो पाता कि हम अनुभूति से खोजने जाएं कि महावीर कहते हैं कि अहंकार छोड़ दो, तो जो बचता है, आत्मा है-हम अहंकार छोड़कर देखें। बुद्ध कहते है कि आत्मा के भाव को ही छोड़ दो, तब जो शेष रह जाता है, वही समाधि है-वह भी करके देखें। तब आपको पता चलेगा, बड़ा पागलपन हुआ। ये तो दोनों एक ही जगह पहुंचा देते है! लेकिन इतनी किसी को सुविधा नही है।

हम शब्दकोश से सुनते हैं, दर्शनशास्त्र में पढ़ते हैं। बौद्ध पंडित हैं, जैन पंडित हैं, हिंदू पंडित हैं, उनके पास शब्दों के सिवाय कुछ भी नहीं है। वे उन शब्दों की व्याख्याएं करते चले जाते है। फिर प्रत्येक निजी शब्द के पास-निजी कह रहा हूं, क्योंकि इतना एकांत अनुभव है महावीर और बुद्ध और शंकर का कि मामला प्राइवेट ही है, वह बहुत पब्लिक नहीं है-उस निजी शब्द के आस-पास फिर व्याख्याओं का जाल बुनता चला जाता है। फिर जाल इतना बड़ा हो जाता है कि महावीर के आस-पास जो जाल खड़ा हुआ वह, बुद्ध के आस-पास जो जाल खड़ा हुआ वह, शंकर के आस-पास जो जाल खड़ा हुआ वह, वे इतने दुश्मन हो जाते हैं हजार दो हजार साल की यात्रा में कि वह जो बीच में मूल शब्द था और शब्द के भी मूल में जो अनुभूति थी, वह कहीं की कहीं खो जाती है, उसका फिर कोई भी पता नहीं रहता।

इसलिए अड़चन है। अन्यथा अनुभूति कभी भी भिन्न नहीं है। अभिव्यक्ति भिन्न हो सकती है, होती है, एक होने की संभावना भी नहीं है। जिस दिन मनुष्य

यह जान पाएगा, उस दिन धर्मों के बीच विवाद नहीं है। और जितना जल्दी जान ले, उतना शुभ है। क्योंकि धर्मों के बीच सारा विवाद भाषा का विवाद है, सत्य का विवाद नहीं है। और जो लोग भाषा के लिए विवाद कर रहे हैं, कम से कम धार्मिक तो नहीं हैं, शब्द-शास्त्री होंगे, लिंग्विस्ट्स होंगे। मगर वे शब्द-शास्त्री अपने को धार्मिक समझ लेते हैं, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। 38।।

यदि तुझे स्वर्ग तथा राज्य की इच्छा न हो, तो भी सुख-दुख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर, उसके उपरांत युद्ध के लिए तैयार हो। इस प्रकार युद्ध को करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

सुख और दुख को समान समझकर, लाभ और हानि को समान समझकर, जय और पराजय को समान समझकर, युद्ध में प्रवृत्त होने पर पाप नहीं लगेगा। कृष्ण का यह वक्तव्य बहुत केटेगोरिकल है, बहुत निर्णायक है। पाप और पुण्य को थोड़ा समझना पड़े।

साधारणतः हम समझते है कि पाप एक कृत्य है और पुण्य भी एक कृत्य है। लेकिन यहां कृष्ण कह रहे है कि पाप और पुण्य कृत्य नहीं है, भाव है। अगर पाप और पुण्य कृत्य है, एक्ट है, तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि मै लाभ-हानि को बराबर समझूं या न समझूं? अगर मैं आपकी हत्या कर दूं, लाभ-हानि बराबर समझूं या न समझूं, आपकी हत्या के कृत्य मे कौन-सा फर्क पड़ जाएगा? अगर मैं एक घर में चोरी करूं लाभ-हानि को बराबर समझकर, तो यह पाप नहीं होगा; और लाभ-हानि को बराबर न समझूं, तो यह पाप होगा? तब इसका मतलब यह हुआ कि पाप और पुण्य का कृत्य से, एक्ट से कोई संबंध नहीं है, बल्कि व्यक्ति के भाव से संबंध है। यह तो बहुत विचारने की बात है।

हम सब तो पाप और पुण्य को कृत्य से बांधकर चलते हैं। हम कहते हैं,

बहुत बुरा काम किया। हम कहते हैं, बहुत अच्छा काम किया। कृष्ण तो इस पूरी की पूरी व्यवस्था को तोड़े डालते हैं। वे कहते हैं, काम अच्छे और बुरे होते ही नहीं, करने वाला अच्छा और बुरा होता है। नाट दि एक्ट, बट दि एक्टर, कृत्य नहीं कर्ता! जो होता है वह नहीं, जिससे होता है वह!

लेकिन मनुष्य की सारी नीति कृत्य पर निर्भर है। कहती है, यह काम बुरा है और यह काम अच्छा है। अच्छे काम करो और बुरे काम मत करो। कौन-सा काम बुरा है? कौन-सा काम अच्छा है? क्योंकि कोई भी काम एटामिक नहीं है, आणविक नहीं है; काम एक शृंखला है। समझें उदाहरण से।

आप रास्ते से गुजर रहे हैं, एक आदमी आत्महत्या कर रहा है। आप उसे बचाएं या न बचाएं? स्वभावतः, आप कहेंगे कि आत्महत्या करने वाले को बचाना चाहिए, कृत्य अच्छा है। लेकिन आप उसे बचा लेते हैं और कल वह पंद्रह आदमियों की हत्या कर देता है। आप नहीं बचाते, तो पंद्रह आदमी बचते थे। आपने बचाया, तो पंद्रह आदमी मरे। कृत्य आपका अच्छा था या बुरा?

कृत्य एक सीरीज है अंतहीन। आप समाप्त हो जाएंगे, आपका कृत्य समाप्त नहीं होगा, वह चलता रहेगा। आप मर जाएंगे, और आपने जो किया था, वह चलता रहेगा।

आपने एक बेटा पैदा किया। यह बेटा पैदा करना अच्छा है या बुरा? यह बेटा कल हिटलर बन सकता है। यह एक करोड़ आदमियों को मार डाल सकता है। लेकिन यह बेटा कल हिटलर बनकर एक करोड़ आदमियों को मार डाले, तो भी कृत्य अच्छा है या बुरा? क्योंकि वे एक करोड़ आदमी क्या करते अगर बचते, इस पर सब निर्भर होगा। लेकिन यह शृंखला तो अनंत होगी।

कृत्य इंडिविजुअल नहीं है। कृत्य के पास कोई आणविक इंतजाम नहीं है; वह तो बड़ी शृंखला की एक कड़ी है। बस, एक कड़ी है और आगे शृंखला अंतहीन है। आप चले जाएंगे और कृत्य जारी रहेगा। जैसे कि हमने पत्थर फेंका एक झील में, पत्थर डूब गया। लेकिन पत्थर का झील से जो संघात हुआ था, वह जो लहर उठी थी-पत्थर तो डूबकर झील में बैठ गया-लेकिन वह जो संघात हुआ

था, जो लहर उठ गई थी, वह उठ गई। अब वह लहर चल पड़ी। अब वह लहर और लहरों को, और लहरों को, और लहरों को, उठाती रहेगी। पत्थर कभी का शांत होकर बैठ गया और लहर अनंत चलती रहेगी, अनंत तटों को छूती रहेगी। करीब-करीब कृत्य ऐसा ही है।

आप करते हैं, आप तो बाहर हो जाते है करके, कृत्य चल पड़ता है। इसलिए कौन-सा कृत्य ठीक है, जब तक हम पूरे विश्व का अंत न पा लें, तब तक तय नहीं हो सकता। जब तक कि सब सृष्टि समाहित न हो जाए, तब तक तय करना मुश्किल है कि महात्मा ने जो किया था, वह अच्छा था, कि असाधु ने जो किया था, वह अच्छा था!

मैं अभी पश्चिम के एक विचारक का एक हैरानी से भरा हुआ वक्तव्य पढ़ रहा था। उसने यह पूछा है कि अगर एक आदमी दूसरे महायुद्ध के पहले हिटलर को गोली मार दे, तो यह कृत्य अच्छा है या बुरा? बात तो ठीक पूछता है। अगर एक आदमी दूसरे महायुद्ध के पहले हिटलर को गोली मार दे, तो यह कृत्य शुभ है या अशुभ? क्योंकि यह आदमी करोड़ों आदमियों को मरने से बचा रहा है, बड़ी बर्बादी को रोक रहा है। लेकिन इस आदमी को सजा होती और सारी दुनिया में इसके कृत्य का विरोध होता कि इसने गलत काम किया है।

तो जो लोग कृत्य से सोचते हैं-और हम सभी लोग सोचते है, दुनिया के समस्त नीतिशास्त्र कृत्य पर जोर देते है कि यह ठीक है और यह गलत है।

कृष्ण इससे उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे है कि यह सवाल नहीं है कि तुमने जो किया है, वह ठीक है या गलत। गहरे में सवाल दूसरा है, और वह सवाल यह है कि तुम कौन हो? तुम क्या हो? तुम्हारी मनोदशा क्या है? इस पर सब निर्भर है।

मेरे देखे भी, कृत्य पर आधारित जो नीति है, बहुत बचकानी है, चाइल्डिश है। लेकिन हम सभी ऐसा सोचते हैं। हम सभी ऐसा सोचते हैं।

कृष्ण कह रहे हैं, व्यक्ति की भावदशा क्या है? और वे एक सूत्र दे रहे हैं कि अगर लाभ और हानि बराबर है, अगर सुख और दुख समान हैं, अगर जय

और पराजय में कोई अंतर नहीं, तो तू जो भी करेगा, उसमें कोई पाप नहीं है। क्या करेगा, इसकी वे कोई शर्त ही नहीं रखते। कहते हैं, फिर तू जो भी करेगा, उसमें कोई पाप नहीं है।

विचारणीय है, और गहरी है बात। क्योंकि कृष्ण यह कह रहे हैं कि दूसरे को चोट पहुंचाने की बात तभी तक होती है, जब तक लाभ और हानि में अंतर होता है। जिसे लाभ और हानि में अंतर ही नहीं है...शर्त बड़ी मुश्किल है। क्योंकि लाभ-हानि में अंतर न हो, यह बड़ी गहरी से गहरी उपलब्धि है।

ऐसा व्यक्ति, जिसे लाभ और हानि में अंतर नहीं है, क्या ऐसा कोई भी कृत्य कर सकता है, जिसे हम पाप कहते हैं! जिसे जय और पराजय समान हो गई हों, जिसे असफलता और सफलता खेल हो गए हों, जो दोनों को एक-सा स्वागत, स्वीकार देता हो, जिसकी दोनों के प्रति समान उपेक्षा या समान स्वीकृति हो, क्या ऐसा व्यक्ति गलत कर सकता है?

कृष्ण का जोर व्यक्ति पर है, कृत्य पर नहीं। और व्यक्ति के पीछे जो शर्त है, वह बहुत बड़ी है। वह शर्त यह है कि उसे द्वंद्व समान दिखाई पड़ने लगे, उसे प्रकाश और अंधेरा समान दिखाई पड़ने लगे। यह तो बड़ी ही गहरी समाधि की अवस्था मे संभव है।

इसलिए ऊपर से तो वक्तव्य ऐसा दिखता है कि कृष्ण अर्जुन को बड़ी स्वच्छंद छूट दे रहे हैं; क्योंकि अब वह कुछ भी कर सकता है। ऊपर से ऐसा लगता है, इससे तो स्वच्छंदता फलित होगी, अब तुम कुछ भी कर सकते हो। लेकिन कृष्ण अर्जुन को गहरे से गहरे रूपांतरण और ट्रांसफार्मेशन में ले जा रहे हैं, स्वच्छंदता में नहीं।

असल में जिस व्यक्ति को जय और पराजय समान हैं, वह कभी भी स्वच्छंद नहीं हो सकता है। उपाय नहीं है, जरूरत नहीं है, प्रयोजन नहीं है। लाभ के लिए ही आदमी पाप में प्रवृत्त होता है; हानि से बचने के लिए ही आदमी पाप में प्रवृत्त होता है।

एक आदमी असत्य बोलता है। दुनिया में कोई भी आदमी असत्य के लिए असत्य नहीं बोलता है, लाभ के लिए असत्य बोलता है। अगर दुनिया में सत्य

बोलने से लाभ होने लगे, तो असत्य बोलने वाला मिलेगा ही नहीं। तब बड़ी मुश्किल से खोजना पड़ेगा। कोई त्यागी, महात्यागी असत्य बोले, बात अलग। कोई बड़ा संकल्पवान तय ही कर ले कि असत्य बोलूंगा, तो बात अलग। लेकिन अगर सत्य के साथ लाभ होता हो, तो असत्य बोलने वाला नहीं मिलेगा। तब तो इसका मतलब यह हुआ कि असत्य कोई नहीं बोलता, लाभ ही असत्य का मार्ग लेता है। हानि से बचना ही असत्य का मार्ग लेता है। आदमी चोरी के लिए चोरी नहीं करता, लाभ के लिए चोरी करता है। कोई दुनिया में चोरी के लिए चोरी नहीं करता।

आज तक दुनिया में किसी ने भी कोई पाप लाभ के अतिरिक्त और किसी कारण से नहीं किया; या हानि से बचने के लिए किया, दोनो एक ही बात है। पाप भी-और मजे की बात है, पुण्य भी-पुण्य भी आदमी लाभ के लिए करता है या हानि से बचने के लिए करता है।

प्लेटो ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। और कहानी है एक नैतिक प्रश्न उठाने के लिए। कहानी है कि एक आदमी को यदि कोई ऐसी तरकीब मिल जाए, कोई ऐसा ताबीज मिल जाए, कि वह इनविजिबल हो सके, अदृश्य हो सके-जब चाहे तब अदृश्य हो सके-तो प्लेटो पूछता है कि क्या ऐसा आदमी नैतिक हो सकेगा? वह आपकी दुकान पर आए और हीरे-जवाहरात उठा ले; और अदृश्य है, पुलिस उसे पकड़ न पाए, समाज उसे अनैतिक कह न पाए। वह किसी के घर में रात घुस जाए; दिखाई न पड़े, अदृश्य हो सके। तो प्लेटो ने यह पूछा है कि क्या ऐसा नैतिक आदमी खोजना संभव है, जिसके हाथ में अदृश्य होने का ताबीज हो और जो नैतिक रह जाए? बडा कठिन मालूम पड़ता है ऐसा आदमी खोजना।

आप भी अगर सोचें कि आपको ताबीज मिल गया, एक पांच मिनट के लिए सोचें कि हाथ में ताबीज है, अब क्या करिएगा! आपका मन फौरन रास्ते बताएगा कि यह-यह करो-पड़ोस वाले की पत्नी को ले भागो, फलां आदमी की कार ले भागो, फलां की दुकान में घुस जाओ-फौरन आपका मन आपको सब रास्ते बता देगा। अभी मिला नहीं ताबीज आपको, लेकिन ताबीज मिल जाए,

इसका खयाल भी आपको फौरन बता देगा कि आप क्या-क्या कर सकते हो-जो कि आप नहीं कर पा रहे हो, क्योंकि अनैतिक होने में हानि मालूम पड़ रही है। और कोई कारण नहीं है। इस जगत में जो हमें नैतिक और अनैतिक लोग दिखाई पड़ते हैं, उनके नैतिक और अनैतिक होने का निर्णायक सूत्र लाभ और हानि है।

कृष्ण नीति को बड़े दूसरे तल पर ले जा रहे है, बिलकुल अलग डायमेंशन में। वे यह कह रहे हैं, यह सवाल ही नहीं है। इसीलिए तो जो शक्तिशाली होता है, वह नीति-अनीति की फिक्र नहीं करता। इसलिए अगर चाणक्य से पूछें या मैक्यावेली से पूछें, तो वे कहेंगे, नीति का कोई मतलब नहीं होता, नीति सिर्फ कमजोरो का बचाव है। शक्तिशाली तो कोई नीति की फिक्र नहीं करता, क्योंकि उसे अनीति से कोई हानि नहीं हो सकती। सिर्फ कमजोर नीति की फिक्र करता है, क्योंकि अनीति से हानि हो सकती है। मैक्यावेली तो सुझाव देता है कि अगर तुम्हारे पास शक्ति है, तो शक्ति का मतलब ही यह है कि तुम अनैतिक होने के लिए स्वतंत्र हो। अगर कमजोर हो, तो उसका मतलब इतना ही है कि तुम्हे नैतिक होने की मजबूरी है।

नीति और अनीति के गहरे में लाभ-हानि पकड़ मे आती है।

दुनिया रोज अनैतिक होती जा रही है, ऐसा हमें लगता है। कुल कारण इतना है कि दुनिया में इतने लोग शक्तिशाली कभी नहीं थे, जितने आज है। कुल कारण इतना है। दुनिया अनैतिक होती हुई दिखाई पड़ती है, क्योकि दुनिया मे इतना धन इतने अधिक लोगों के पास कभी भी नही था। जिनके पास था, वे सदा अनैतिक थे। दुनिया अनैतिक होती मालूम पड़ती है, क्योकि अतीत की दुनिया मे राजाओं-महाराजाओं के हाथ मे ताकत थी। नई दुनिया लोकतंत्र है, वहां एक-एक व्यक्ति के पास शक्ति वितरित कर दी गई है। अब प्रत्येक व्यक्ति शक्ति के मामले में ज्यादा समर्थ है, जितना कभी भी नही था। दुनिया अनैतिक होती मालूम पड़ती है, क्योंकि इतने अधिक लोग शिक्षित कभी नही थे और शिक्षा एक शक्ति है। जो लोग शिक्षित थे, उनके नैतिक होने का कभी भरोसा नहीं था।

जितनी शिक्षा बढ़ेगी, उतनी अनीति बढ़ जाएगी; जितनी समृद्धि बढ़ेगी,

उतनी अनीति बढ़ जाएगी; जितनी शक्ति बढ़ेगी, उतनी अनीति बढ़ जाएगी। मजा यह है कि नीति और अनीति के बहुत गहरे में लाभ-हानि ही बैठी है।

इसलिए कृष्ण का यह वचन बड़े गहरे इंप्लिकेशंस का है। वे अर्जुन से कहते हैं कि जब तक तुझे लाभ और हानि में भेद है, तब तक तू जो भी करेगा, वह पाप है। और जिस दिन तुझे लाभ-हानि में कोई भेद नहीं है, उस दिन तू निश्चिंत हो। फिर तू जो भी करेगा, वह पाप नहीं है।

इसलिए सवाल नहीं है यह कि हम चुनें कि क्या करणीय है और क्या करणीय नहीं है। असली सवाल और गहरे में है और वह यह है कि क्या मेरे चित्त में लाभ और हानि का प्रभाव पड़ता है? अगर पड़ता है, तो मैं मंदिर भी बनाऊं तो पाप होगा, उसके बहुत गहरे में लाभ-हानि ही होगी। अगर मैं पुण्य भी करूं, तो सिर्फ दिखाई पड़ेगा, पुण्य हो रहा है; पीछे पाप ही होगा। और सब पुण्य करने के लिए पहले पाप करना जरूरी होता है। मंदिर भी बनाना हो, तो भी मंदिर बनाने के लायक तो धन इकट्ठा करना ही होता है।

सब पुण्यों के लिए पाप करना जरूरी होता है, क्योंकि कोई पुण्य बिना लाभ के नहीं हो सकते। दान के पहले भी चोरी करनी पड़ती है। असल में जितना बड़ा चोर, उतना बड़ा दानी हो सकता है। असल में बड़ा दानी सिर्फ अतीत का चोर है। आज का चोर कल का दानी हो सकता है। क्योंकि चोरी करके भी करिएगा क्या? एक सीमा आ जाती है सेच्युरेशन की, जहां चोरी से फिर कोई लाभ नहीं मिलता। फिर उसके बाद दान करने से लाभ मिलना शुरू होता है।

कृष्ण का वक्तव्य बहुत अदभुत है। वे यह कहते हैं कि तू लाभ और हानि का जब तक भेद कर पा रहा है, तब तक तू कितने ही पुण्य की बातें कर, लेकिन तू जो भी करेगा वह पाप है। और अगर तू यह समझ ले कि लाभ-हानि में कोई फर्क नहीं, जय-पराजय में कोई फर्क नहीं, जीवन-मृत्यु में कोई फर्क नहीं, तो फिर तू जो भी करे, वह पुण्य है।

यह पुण्य और पाप का बहुत ही नया आयाम है। कृत्य से नहीं, व्यक्ति के अंतस्तल में हुई क्रांति से संबंधित है।

प्रश्नः कुछ मनोवैज्ञानिक कहते है कि जैसे भूख, निद्रा, काम आदि स्वाभाविक वृत्तियां हैं, वैसे ही क्रोध करना भी मानव की स्वाभाविक वृत्ति है। यदि ऐसा है, तो जगत में युद्ध भी स्वाभाविक ही है। जब तक जगत, तब तक युद्ध। क्या युद्ध कभी अटक भी सकती है?

स्वाभाविक किसी बात को कह देना, उसके होने की अनिवार्यता को सिद्ध कर देना नहीं है। जो भी हमें स्वाभाविक मालूम पड़ता है, वह सभी एक तल पर स्वाभाविक है, लेकिन तल के परिवर्तन के साथ बदल जाता है। जैसा मनुष्य है, वैसे मनुष्य के लिए क्रोध बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन मनुष्य बुद्ध जैसा मनुष्य भी हो जाता है, और तब क्रोध बिलकुल अस्वाभाविक हो जाता है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक व्यक्ति की चेतना के प्रत्येक तल पर बदलते जाते हैं।

एक आदमी शराब पीकर रास्ते पर चल रहा है, तो नाली में गिर जाना बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन एक आदमी बिना शराब पीए सड़क पर चल रहा है, उसका नाली मे गिर जाना बिलकुल अस्वाभाविक है। लेकिन शराब पीए आदमी में और गैर शराब पीए आदमी में आदमियत का कोई भी फर्क नहीं है। फर्क है चेतना का। आदमियत का कोई भी फर्क नहीं है। शराब पीया आदमी भी वैसा ही आदमी है, जैसा नहीं शराब पीया हुआ आदमी आदमी है।

अंतर कहां है? अंतर चेतना का है। शराब पीए हुए आदमी के पास उतनी चेतना नही है, जो नाली मे गिरने से बचा सके। गैर शराब पीए आदमी के पास उतनी चेतना है, जो नाली में गिरने से बचाती है। अगर हम क्रोध में गिर जाते है, तो वह भी हमारी मूर्च्छा के कारण। और बुद्ध अगर क्रोध में नहीं गिरते, तो वह भी उनकी अमूर्च्छा के कारण। वह भी फर्क चेतना का ही है। उस फर्क में भी वही फर्क काम कर रहा है, जो शराबी के साथ कर रहा है। हां, फर्क भीतरी है, इसलिए एकदम से दिखाई नहीं पड़ता।

जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपके एड्रिनल ग्लैंड्स आपके भीतर शराब छोड़ देते हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तो आपके शरीर में...बहुत से

मादक रस इकट्ठे है आपके शरीर मे। अगर वे ग्लैड्स काट दी जाएं, फिर आप क्रोध करके बताएं तो समझा जाए।

पावलव ने बहुत प्रयोग किए है रूस मे कुत्तो की उन ग्लैड्स को काटकर, जिनकी वजह से कुत्ते भौकते है और भौकते ही रहते है और लड़ते ही रहते है। बड़ा जानदार कुत्ता है, तीर है बिलकुल, जरा-सी बात और जूझ जाएगा। उसकी भी ग्लैड काट देने के बाद, उसको कितना ही उकसाओ, वह कुछ भी नही करता। फिर वह बैठा रह जाएगा।

खतरा भी है इस प्रयोग मे। क्योकि आज नही कल, कोई हुकूमत आदमियो के ग्लैड्स भी काटेगी। जिस हुकूमत को भी विद्रोह और क्रांति से बचना है, आज नही कल, बायोलाजिस्ट की सहायता वह लेगी। कोई कठिनाई नहीं है। रूस जैसे मुल्क मे, जहां हर बच्चे को नर्सरी मे पैदा होना है, वहा पैदा होने के साथ ही ग्लैड्स समाप्त की जा सकती है। या उन ग्लैड्स के एटीडोट्स का इजेक्शन दिया जा सकता है।

तब आपको पता चलेगा कि स्वाभाविक बिलकुल नहीं है। स्वाभाविक इसलिए है कि शरीर के साथ अनंत यात्रा मे जरूरी रहा है। और शरीर के साथ बहुत-सी चीजे जो कल जरूरी थीं, अब जरूरी नहीं रह गई है, लेकिन खिंच रही है।

जिस स्थिति मे मनुष्य है, अगर हम उसको परम स्थिति मान ले, तब तो बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन वह परम स्थिति नही है, उसमे बदलाहट हो सकती है। उसमे बदलाहट दो तरह से हो सकती है।

शरीर के द्वारा भी बदलाहट हो सकती है। लेकिन शरीर के द्वारा जो बदलाहट होगी, वह मनुष्य की आत्मा का विकास नहीं, पतन बनेगी। क्योकि जो आदमी क्रोध कर नहीं सकेगा, इसलिए नहीं करता है, वह आदमी इंपोटेट हो जाएगा। उस आदमी का कोई गौरव नहीं होगा। उसके व्यक्तित्व मे चमक नहीं आएगी। उसकी आंखो मे शान नही आएगी। अक्रोध की शांति भी नहीं आएगी, क्योकि क्रोध कर ही नहीं सकता। जो आदमी बुरा हो ही नहीं सकता, उसके भले होने का कोई भी अर्थ नहीं होता। वह सिर्फ असमर्थ होता है, दीन होता है।

लेकिन जो आदमी क्रोध कर सकता है और नहीं करता है, उसकी चेतना रूपांतरित हो जाती है। क्रोध कर सकता है और नहीं करता है, तो वह जो क्रोध की शक्ति है, वह अक्रोध की शक्ति बननी शुरू हो जाती है। तब उसके व्यक्तित्व में रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन के नए द्वार खुलते हैं। तब वह सामान्य मनुष्य से ऊपर उठना शुरू होता है। सुपरमैन उसके भीतर पैदा होना शुरू होता है, वह अतिमानव होना शुरू हो जाता है।

मनुष्य के लिए क्या स्वाभाविक है, यह इस पर निर्भर करता है कि उसकी चेतना का तल क्या है। प्रत्येक तल पर स्वभाव भिन्न-भिन्न होगा। एक बच्चे के लिए जो स्वाभाविक है, जवान के लिए स्वाभान्कि नहीं रह जाता। और एक जवान के लिए जो स्वाभाविक है, बूढ़े के लिए स्वाभाविक नहीं रह जाता। बीमार आदमी के लिए जो स्वाभाविक है, वह स्वस्थ के लिए स्वाभाविक नहीं रह जाता।

तो स्वभाव कोई फिक्स्ड एनटाइटी नहीं है। स्वभाव कोई ऐसी बात नही है कि कोई थिर चीज है। यही खूबी है मनुष्य की। एक पत्थर का स्वभाव थिर है, पत्थर का स्वभाव बिलकुल थिर है। पानी का स्वभाव बिलकुल थिर है। इसलिए हम विज्ञान की किताब में लिख सकते हैं कि पानी का यह स्वभाव है, अग्नि का यह स्वभाव है।

मनुष्य की खूबी ही यही है कि उसका स्वभाव उस पर ही निर्भर है। और वह अपने स्वभाव को हजार आयाम दे सकता है और विकास कर सकता है। हां, एक स्वभाव जन्म के साथ सबको मिलता है। कुछ लोग उसी पर रुक जाते है, उसी को स्वभाव का अंत मान लेते हैं, तब दूसरी बात है।

कभी आपने शायद खयाल न किया हो; अगर एक हीरे को रख दें और पास में कोयले के टुकड़े को रख दें, तो आपको कभी खयाल न आएगा कि हीरा कोयला ही है। हीरे और कोयले में बुनियादी तत्व के आधार पर कोई भी भेद नहीं है। असल में कोयला ही हजारों-लाखों वर्ष जमीन में दबा रहकर हीरा बन जाता है। लेकिन हीरे और कोयले का स्वभाव एक है? जरा भी एक नहीं है। कहां कोयला, कहां हीरा! लेकिन बनता है हीरा कोयले से ही; वह कोयले की ही आखिरी यात्रा है;

तो जहां मनुष्य अपने को पाता है, कोयले जैसा है। और जहां बुद्ध जैसे, महावीर जैसे, कृष्ण जैसे व्यक्ति अपने को पहुंचाते हैं, हीरे जैसे हैं। फर्क स्वभाव का नहीं है, फर्क विकास का है।

प्राथमिक स्वभाव हम सबको एक जैसा मिला है-क्रोध है, काम है, लोभ है। लेकिन यह अंत नहीं है, प्रारंभ है। और इस प्रारंभ को ही अगर हम अंत समझ लें, तो यात्रा बंद हो जाती है। और हुई है बंद।

जैसा कि आपने पूछा है, मनोवैज्ञानिक कहते है, यह तो स्वभाव है। लेकिन यह कहकर वे कुछ इस तरह की बात दुनिया में पैदा करवाते है,कि जैसे यह अंत है। इसलिए पश्चिम में मनोविज्ञान के कुछ परिणाम हुए है। हिंदुस्तान मे मनोविज्ञान ने एक लाभ लिया और मनुष्य को विकास दिया। और पश्चिम के सौ डेढ़ सौ वर्ष के मनोविज्ञान ने मनुष्य को पतन दिया, विकास नहीं दिया। क्योकि मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह तो स्वभाव है। आदमी क्रोध तो करेगा ही, क्रोध तो स्वभाव है। आदमी कामुक तो होगा ही, कामुकता तो स्वभाव है।

इसका परिणाम क्या हुआ? इसका परिणाम यह हुआ कि जो प्रारंभ बिंदु था, वह अंतिम मंजिल बन गया। और तब प्रत्येक आदमी ने कहा, क्रोध तो मै करूंगा ही, यह मेरा स्वभाव है। आदमी क्रोध करेगा ही। निश्चित ही, इसके फल हुए है। वे फल पश्चिम में दिखाई पड़ रहे है। वे फल ये हुए कि आज कोई भी व्यक्ति अपने को किसी भी कृत्य के लिए जिम्मेवार, रिस्पांसिबल नही मानता। क्योंकि वह कहता है, यह स्वभाव है।

एक आदमी गालियां बक रहा है सड़क पर, तो आप उससे यह नही कह सकते कि तुम यह क्या कर रहे हो? वह कहता है, यह स्वभाव है। एक आदमी चोरी कर रहा है, आप उससे यह नहीं कह सकते कि तुम गलत कर रहे हो। वह कहता है, मैं क्या कर सकता हूं, यह स्वभाव है। पश्चिम के मनोविज्ञान ने अगर बड़े से बड़ा खतरा लाया है, तो आदमी को रिस्पांसिबिलिटी से मुक्त कर दिया। दायित्व कुछ उसका है नहीं। वह कहता है, यह स्वभाव है। और जो भी हो रहा है...।

तो पश्चिम में मार्क्स और फ्रायड, इन दो के तालमेल से एक अदभुत स्थिति पैदा हो गई है। मार्क्स ने कह दिया कि जो भी हो रहा है, उसके लिए जिम्मेवार समाज है। और फ्रायड ने कह दिया कि जो भी हो रहा है, उसके लिए जिम्मेवार प्रकृति है। आदमी बाहर हो गया। अगर एक आदमी चोरी कर रहा है, तो जिम्मेवार समाज है। अगर एक आदमी हत्या कर रहा है, तो जिम्मेवार समाज है। ऐसा मार्क्स ने कह दिया, व्यक्ति के ऊपर कोई जिम्मेवारी नहीं है, सोशल रिस्पांसिबिलिटी है। इसलिए अगर व्यक्ति को बदलना है, तो समाज को बदलो। और जब तक समाज नहीं बदलता, तब तक व्यक्ति जैसा है वैसा रहेगा। इसकी हम उसे लाइसेंस देते हैं।

व्यक्ति बड़ा प्रफुल्लित हुआ। हजारों साल की जो चिंता थी, उसके दिमाग से गिर गई। ये कृष्ण ने, महावीर ने, बुद्ध ने आदमी को बड़ी भारी चिंता, बड़ी एंग्जाइटी दे दी थी-दे दी थी कि तुम जिम्मेवार हो। चिंता गिर गई। व्यक्ति बड़ा निश्चिंत हुआ। लेकिन उस निश्चिंतता में व्यक्ति सिर्फ वही रह गया, जो कोयला था। उससे बाहर की यात्रा बंद हो गई। निश्चित ही, कोयले को हीरा बनना हो, तो चिंता से गुजरना पड़ेगा। लाखों साल की लंबी यात्रा है!

फिर फ्रायड ने लोगों को कह दिया कि समाज भी बदल डालो, तो भी कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि रूस में क्रोध कम हो गया? कि रूस में अहंकार कम हो गया? कि रूस का नागरिक किसी भी तरह से आदमियत के तल पर बदल गया है? कुछ भी नहीं बदला। फ्रायड ने कहा, समाज वगैरह के बदलने का सवाल नहीं है। जिम्मेवार स्वभाव है, नेचर है। जब तक नेचर को न बदल डालो, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

पर नेचर को कैसे बदलोगे? स्वभाव को कैसे बदलोगे? इसलिए आदमी जैसा है वैसा रहेगा। निश्चिंत मन से उसे जैसा है वैसा रहना चाहिए! यह बदलाहट, यह क्रांति, यह भीतरी रूपांतरण, यह धर्म, यह योग, यह समाधि, ये सब बकवास हैं। फ्रायड ने कहा, आदमी जैसा है वैसा ही रहेगा। नाहक की चिंता में आदमी को डालकर परेशान किया हुआ है। वह जैसा है, है।

फ्रायड के इस कहने का परिणाम पश्चिम में एक्सप्लोसिव हुआ। आज हिप्पी हैं, बीटनिक हैं, प्रवोस हैं, और दूसरे तरह के सारे लोग हैं, वे यही कह रहे हैं कि यह स्वभाव है। और फ्रायड ने गारंटी दी है कि यह स्वभाव है, और आदमी वही रहेगा जो है। आदमी एक पशु है। थोड़ी-सी बुद्धि है उसके पास, इसलिए बुद्धि से अपने को परेशानी में डाल लेता है। बुद्धि को भी छोड़ दे, तो कोई परेशानी नहीं है।

आदमी को फ्रायड ने-अगर फ्रायड को समझें, तो वह यह कहता है, तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हारी परेशानी है। उसी की वजह से तुम झंझट में पड़ जाते हो। जो है, वह है। यह बुद्धि उस पर सोच-विचार करके कहने लगती है, ऐसा नहीं होना चाहिए, वैसा नहीं होना चाहिए। इससे तुम चिंता पैदा करते हो, पागल हुए जाते हो। छोड़ो यह चिंता! जो हो, उसके लिए राजी हो जाओ।

ठीक है, निश्चिंतता आ जाएगी, लेकिन कोयले की निश्चिंतता होगी। पशु निश्चिंत है। अगर फ्रायड को मानकर पूरा का पूरा चला जाए, तो आदमी पशु की तरफ गिरता जाएगा-गिरा है। फ्रायड जो कहता है, वह सच है, लेकिन अधूरा सच है। और अधूरे सच झूठ से भी खतरनाक होते है।

यह सच है कि आदमी में क्रोध है, और यह स्वभाव है। और यह भी सच है कि आदमी में क्रोध से विकसित होने की संभावना है, वह भी उसका स्वभाव है। यह सच है कि क्रोध है। और यह भी सच है कि क्रोध से मुक्त होने की आकांक्षा है, वह भी स्वभाव है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसमें क्रोध है और क्रोध से मुक्त होने की आकांक्षा नहीं है। तो क्रोध स्वभाव है, और क्रोध से मुक्त होने की आकांक्षा? वह स्वभाव नहीं है? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो अपने को अतिक्रमण नहीं करना चाहता, जो अपने से ऊपर नहीं जाना चाहता। जो है, वह स्वभाव है। जो होना चाहता है, वह भी स्वभाव है।

और निश्चित ही, जो होना चाहता है, उसके लिए, जो है उसको रूपांतरित करना पड़ता है। उसकी विधियां हैं। उस विधि का नाम ही धर्म है। अगर मनुष्य जैसा है, वैसा ही है, तब धर्म की कोई अर्थवत्ता नहीं है, मीनिंगलेस है।

इसलिए अगर पश्चिम में धर्म का सारा मूल्य खो गया, तो उसके खोने का बहुत गहरा कारण यही है कि पश्चिम के मनोविज्ञान ने आदमी को कहा कि यह तो स्वभाव है। ऐसा होगा ही।

एक मित्र मेरे पास आए, यही अभी परसों। उन्होंने कहा कि मैं बहुत परेशान था, नींद मुझे नहीं आती थी। नींद खो गई थी, इससे चिंतित था। मनोवैज्ञानिक के पास गया, तो मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह तो बिलकुल ठीक है। मनोवैज्ञानिक ने पूछा कि सेक्स के बाबत तुम्हारी क्या स्थिति है ? तो मनोवैज्ञानिक ने उनसे कहा कि तुम हस्तमैथुन, मस्टरबेशन शुरू कर दो। उन्होंने कहा कि कैसी बात कहते हैं ? तो उन्होंने कहा, यह तो स्वभाव है। यह तो आदमी को करना ही पड़ता है! जब मनोवैज्ञानिक कहता हो, वे राजी हो गए।

फिर दो साल में उस हालत में पहुंच गए कि उसी मनोवैज्ञानिक ने कहा कि अब तुम्हें इलेक्ट्रिक शॉक की जरूरत है। अब तुम बिजली के शॉक्स लो। अब जब मनोवैज्ञानिक कह रहा है। और हम तो अथारिटी के ऐसे दीवाने हैं, ऐसे पागल हैं। और जो चीज जब अथारिटी बन जाए! कभी मंदिर का पुरोहित अथारिटी था, तो वह जो कह दे, वह सत्य था। अब वह पौरोहित्य जो है मंदिर का, वह मनोवैज्ञानिक के हाथ में आया जा रहा है। अब वह जो कह दे, वह सत्य है। तो बिजली के शॉक ले लिए। सब तरह से व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो गया।

स्वभाव की आड़ में आदमी की पशुता को बचाने की चेष्टा खतरनाक है। शायद मनुष्य के ऊपर इससे बड़े खतरे के बादल कभी भी नहीं आए थे, जितने बड़े खतरे के बादल इस बात से आए हैं कि जो भी है, वह है। यह तो होगा ही, यह तो बिलकुल स्वाभाविक है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मैं भी कहता हूं कि बिलकुल स्वाभाविक है। मनोविज्ञान से मेरी गहरी सहमतियां हैं, लेकिन असहमतियां भी हैं। मैं मानता हूं, मनोविज्ञान जहां तक जाता है, बहुत ठीक है। लेकिन उसके आगे भी यात्रा-पथ है। जहां तक जाता है, बिलकुल ठीक। लेकिन जहां से इनकार करता है, वहां बिलकुल गलत है। फ्रायड जहां तक जाते हैं, बिलकुल ठीक, वहां तक कृष्ण

और बुद्ध भी इनकार नहीं करते। लेकिन कृष्ण और बुद्ध कहते हैं, यह अंत नहीं है, यह बिलकुल प्रारंभ है। और इस प्रारंभ का ऐसा उपयोग करना है कि अंत भी फलित हो सके।

जड़ स्वभाव है, लेकिन फूल तक भी पहुंचना है। अन्यथा जड़ें बड़ी कुरूप होती हैं; गंदी होती हैं; अंधेरे में दबी होती हैं; नीचे अंधेरे रास्तों में, जमीन में फैली होती हैं। स्वाभाविक हैं, बिलकुल जरूरी हैं, लेकिन जड़ें फूल नहीं हैं। और अगर जड़ो पर कोई वृक्ष रुक जाए और कोई फ्रायड वृक्ष को समझा दे कि पागल, यही तेरा स्वभाव है। और वृक्ष रुक जाए और कहे, क्या करेंगे अब आकाश में उठकर, जड़ें ही अपना स्वभाव है, तो फिर फूल नहीं आएंगे।

और मजा यह है कि जड़ें इसीलिए हैं कि फूल आएं। और फूल और जड़ में कितना विरोध है! कहां फूल-आकाश में खिले हुए, सूर्य की रोशनी में नाचते हुए! और कहां जड़ें-अंधेरे में दबी हुई! विरोध है बड़ा, सामंजस्य भी है बड़ा, क्योंकि फूल बिना जड़ों के नहीं हो सकते।

यह भी आखिरी बात मै आपसे कहना चाहता हूं कि फूल बिना जड़ों के नहीं हो सकते; हालांकि जड़ें बिना फूल के हो सकती हैं। यह जीवन का एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि यहां जो निम्न है, वह श्रेष्ठ के बिना हो सकता है; लेकिन यहां जो श्रेष्ठ है, वह निम्न के बिना नहीं होता। एक मंदिर पर स्वर्ण के शिखर रखने हों, तो नींव भरनी ही पड़ती है। नींव के बिना स्वर्ण-शिखर नहीं होते; लेकिन स्वर्ण-शिखर के बिना नींव हो सकती है-नींव भरें और छोड़ दें।

जो निम्न है, वह श्रेष्ठ के बिना भी हो सकता है। लेकिन जो श्रेष्ठ है, वह निम्न के बिना नहीं हो सकता। इसलिए अगर निम्न को हमने स्वभाव समझा, नियति समझी, डेस्टिनी समझी, तो जड़ें ही रह जाती हैं हाथ में।

नहीं, जड़ें हैं ही इसलिए कि फूल तक पहुंचें। मनुष्य का जो स्वभाव आज दिखाई पड़ता है, वह है ही इसलिए कि वह परमात्मा तक पहुंचे। क्रोध है इसलिए कि क्रोध की जड़ किसी दिन अक्रोध का फूल बने। काम है इसलिए, सेक्स है इसलिए कि सेक्स की ऊर्जा और काम की ऊर्जा किसी दिन ब्रह्मचर्य का फूल

बने। और जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को बेचैन होना ही चाहिए; जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को चिंतित होना ही चाहिए; जब तक नहीं बन जाती, तब तक मनुष्य को संताप में, पीड़ा में, संघर्ष में होना ही चाहिए। जल्दी ली गई शांति खतरनाक है, क्योंकि वह प्रारंभ को ही अंत बना सकती है। शांति जरूर मिलती है, लेकिन अंत आ जाए, मंजिल आ जाए, तब तक यात्रा जारी रखनी जरूरी है।

दो तरह की शांतियां है। एक तो हम जहां है, वहीं बैठ जाएं, तो यात्रा का कष्ट बंद हो जाता है। एक और शांति भी है-जिस दिन यात्रा पूरी होती है और मंजिल आती है। हम बैठ जाएं और इसी को मंजिल मान लें, तो भी शांति मिलती है। और मंजिल आ जाए और हम बैठें, तब भी शांति मिलती है।

लेकिन दोनों शांतियों में बड़ा फर्क है। एक पशु की शांति है, एक परमात्मा की शांति है।

•••

बारहवां प्रवचन

निष्काम कर्म और अखंड मन की कीमिया

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। 39।।

हे पार्थ, यह सब तेरे लिए सांख्य (ज्ञानयोग) के विषय में कहा गया और इसी को अब (निष्काम कर्म) योग के विषय में सुन कि जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू, कर्मों के बंधन को अच्छी तरह से नाश करेगा।

अनंत है सत्य तक पहुंचने के मार्ग। अनंत है प्रभु के मंदिर के द्वार। होंगे ही अनंत, क्योंकि अनंत तक पहुंचने के लिए अनंत ही मार्ग हो सकते हैं। जो भी एकांत को पकड़ लेते हैं-जो भी सोचते हैं, एक ही द्वार है, एक ही मार्ग है-वे भी पहुंच जाते हैं। लेकिन जो भी पहुंच जाते हैं, वे कभी नहीं कह पाते कि एक ही मार्ग है, एक ही द्वार है। एक का आग्रह सिर्फ उनका ही है, जो नहीं पहुंचे हैं; जो पहुंच गए हैं, वे अनाग्रही हैं।

कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, अब तक जो मैंने तुझसे कहा, वह सांख्य की दृष्टि थी।

सांख्य की दृष्टि गहरी से गहरी ज्ञान की दृष्टि है। सांख्य का जो मार्ग है, वह परम ज्ञान का मार्ग है। इसे थोड़ा समझ लें, तो फिर आगे दूसरे मार्ग समझना आसान हो जाएगा।

पर कृष्ण ने क्यों सांख्य की ही पहले बात कर ली! सांख्य की इसलिए पहले बात कर ली कि अगर सांख्य काम में आ जाए, तो फिर और कोई आवश्यकता नही है। सांख्य काम में न आ सके, तो ही फिर कोई और आवश्यकता है।

जापान में झेन साधना की एक पद्धति है। आज पश्चिम में झेन का बहुत प्रभाव है। आज का जो भी विचारशील वर्ग है जगत का, पूरे जगत की इंटेलिजेंसिया, वह झेन में उत्सुक है। और झेन सांख्य का ही एक रूप है।

सांख्य का कहना यही है कि जानना ही काफी है, करना कुछ भी नहीं है; नालेज इज़ इनफ, जानना पर्याप्त है। इस जगत की जो पीड़ा है और बंधन है, वह न जानने से ज्यादा नहीं है। अज्ञान के अतिरिक्त और कोई वास्तविक बंधन नहीं है। कोई जंजीर नहीं है, जिसे तोड़नी है। न ही कोई कारागृह है, जिसे मिटाना है। न ही कोई जगह है, जिससे मुक्त होना है। सिर्फ जानना है। जानना है कि मै कौन हूं? जानना है कि जो चारों तरफ फैला है, वह क्या है? सिर्फ अंडरस्टैंडिंग, सिर्फ जानना।

जो लोग कृष्णमूर्ति से परिचित है, उन्हें यह स्मरण में ले लेना उपयोगी होगा कि कृष्णमूर्ति का सारा विचार सांख्य है। लेकिन सांख्य को समझना कठिन है।

जैसे एक आदमी दुख में पड़ा है, हम उससे कहें कि केवल जान लेना है कि दुख क्या है और तू बाहर हो जाएगा। वह आदमी कहेगा, जानता तो मैं भलीभांति हूं कि दुख है। जानने से कुछ नहीं होता; मुझे इलाज चाहिए, औषधि चाहिए। कुछ करो कि मेरा दुख चला जाए।

एक आदमी, जो वस्तुतः चिंतित और परेशान है, विक्षिप्त है, पागल है, उससे हम कहें कि सिर्फ जानना काफी है और तू पागलपन के बाहर आ जाएगा। वह आदमी कहेगा, जानता तो मैं काफी हूं; जानने को अब और क्या बचा है!

लेकिन जानने से पागलपन नहीं मिटता। कुछ और करो! जानने के अलावा भी कुछ और जरूरी है।

कृष्ण ने अर्जुन को सबसे पहले सांख्य की दृष्टि कही, क्योंकि यदि सांख्य काम में आ जाए तो किसी और बात के कहने की कोई जरूरत नहीं है। न काम में आए, तो फिर किसी और बात के कहने की जरूरत पड़ सकती है।

सुकरात का बहुत ही कीमती वचन है, जिसमें उसने कहा है, नालेज इज़ वर्च्यू, ज्ञान ही सदगुण है। वह कहता था, जान लेना ही ठीक हो जाना है। उससे लोग पूछते थे कि हम भलीभांति जानते हैं कि चोरी बुरी है, लेकिन चोरी छूटती नहीं! तो सुकरात कहता, तुम जानते ही नहीं कि चोरी क्या है। अगर तुम जान लो कि चोरी क्या है, तो छोड़ने के लिए कुछ भी न करना होगा।

हम जानते है, क्रोध बुरा है; हम जानते है, भय बुरा है; हम जानते है, काम बुरा है, वासना बुरी है, लोभ बुरा है, मद-मत्सर सब बुरा है; सब जानते है। सांख्य या सुकरात या कृष्णमूर्ति, वे सब कहेंगे : नहीं, जानते नहीं हो। सुना है कि क्रोध बुरा है, जाना नहीं है। किसी और ने कहा है कि क्रोध बुरा है, स्वयं जाना नहीं है। और जानना कभी भी उधार और बारोड नहीं होता। जानना सदा स्वयं का होता है। फर्क है दोनों बातों में।

एक बच्चे ने सुना है कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, और एक बच्चे ने आग में हाथ डालकर देखा है कि हाथ जल जाता है। इन दोनों बातों में जमीन-आसमान का फर्क है। दोनों के वाक्य एक से है। जिसने सिर्फ सुना है, वह भी कहता है, मैं जानता हूं कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है। और जिसने आग में हाथ डालकर जाना है, वह भी कहता है, मैं जानता हूं कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है।

इन दोनों के वचन एक-से हैं, लेकिन इन दोनों की मनःस्थिति एक-सी नहीं है। और जिसने सिर्फ सुना है, वह कभी हाथ डाल सकता है। और जिसने जाना है, वह कभी हाथ नहीं डाल सकता है। और जिसने सिर्फ सुना है, वह कभी हाथ डालकर कहेगा कि जानता तो मैं था कि हाथ डालने से हाथ जल जाता

है, फिर मैंने हाथ क्यों डाला? वह जानने में भूल कर रहा है। दूसरे से मिला हुआ जानना, जानना नहीं हो सकता।

जिस जानने की सांख्य बात करता है, जिस नोइंग की सांख्य बात करता है, वह वह जानना है, जो उधार नहीं है। इस जानने से क्या हो जाएगा? एक छोटी-सी कहानी से बात समझाने की कोशिश करूं।

दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी युद्ध-स्थल पर आहत हो गया। जब होश में आया बेहोशी से, तो पता चला कि उसे सब स्मरण भूल गया है; वह अपना सब अतीत भूल चुका है। उसे यह भी पता नहीं है कि उसका नाम क्या है! कठिनाई न आती, क्योंकि सेना गे नाम की कोई जरूरत नहीं होती। लेकिन उसका नंबर भी खो गया युद्ध के स्थल पर।

सेना मे तो आदमी नंबर से जाना जाता है, सेना मे नाम से नहीं जाना जाता। सुविधा है नंबर से जानने में। और जब पता चलता है कि ग्यारह नंबर आज मर गया, तो कोई तकलीफ नही होती। क्योंकि नंबर के न बाप होते, न मां होती, न बेटा होता। नंबर का कोई भी नहीं होता। नंबर मर जाता है, मर जाता है। तख्ती पर सूचना लग जाती है कि इतने नंबर गिर गए। किसी को कही कोई पीड़ा नही होती। नंबर रिप्लेस हो जाते है। दूसरा नंबर ग्यारह नंबर उसकी जगह आ जाता है। किसी आदमी को रिप्लेस करना मुश्किल है, लेकिन नंबर को रख देना नंबर की जगह कोई कठिन नहीं है। यह मिलिटरी तो नंबर से चलती है। दफ्तर में नाम होते है, रजिस्टर में।

लेकिन उसका नंबर भी खो गया है। उसे नाम याद नहीं रहा। अब वह कौन है? अब क्या करें? उसे कहां भेजें? उसका घर कहां है? उसके मां-बाप कहां है? बहुत कोशिश की, खोज-बीन की, कुछ पता नहीं चल सका। फिर आखिर किसी ने सुझाव दिया कि एक ही रास्ता है कि उसे इंग्लैंड के गांव-गांव में घुमाया जाए। शायद कहीं उसे देखकर याद आ जाए कि यह मेरा घर है, यह मेरा गांव है। शायद वह जान ले।

फिर उसे ले गए। स्टेशनों पर उसे उतारकर खड़ा कर देते, वह देखता रह जाता; कुछ याद न आता। फिर तो जो ले गए थे घुमाने, वे भी थक गए। एक

छोटे स्टेशन पर, जिस पर उतरकर देखने का इरादा भी नहीं है, गाड़ी खड़ी है, चलने को है। उस आदमी ने खिड़की से झांककर देखा और उसने कहा, मेरा गांव! उतरा, बताना ही भूल गया, कि जो साथ थे उनको बता दे। भागा, सड़क पर आ गया। चिल्लाया, मेरा घर! दौड़ा, गली में पहुंचा। दरवाजे के सामने खड़े होकर कहा, मेरी मां! लौटकर पीछे देखा, साथी पीछे भागकर आए है। उनसे बोला, यह रहा मेरा नाम। याद आ गया।

सांख्य कहता है, आत्मज्ञान सिर्फ रिमेंबरेस है, सिर्फ स्मरण है। कुछ खोया नहीं है, कुछ मिटा नहीं है, कुछ गया नहीं है, कुछ नया बना नहीं है, सिर्फ स्मृति खो गई है। और जिसे हम जानने जा रहे है, अगर वह नया जानना है, तब तो फिर कुछ और करना पड़ेगा। लेकिन अगर वह भूला हुआ ही है, जिसे पुन. जानना है, तब कुछ करने की जरूरत नहीं है, जान लेना ही काफी है।

तो कृष्ण ने कहा कि अभी जो मैने तुझसे कहा अर्जुन, वह सांख्य की दृष्टि थी। इस पूरे वक्त कृष्ण ने सिर्फ स्मरण दिलाने की कोशिश की, कि आत्मा अमर है; न उसका जन्म है, न उसकी मृत्यु है। स्मरण दिलाया कि अव्यक्त था, अव्यक्त होगा, बीच में व्यक्त का थोड़ा-सा खेल है। स्मरण दिलाया कि जो तुझे दिखाई पड़ते हैं, वे पहले भी थे, आगे भी होंगे। स्मरण दिलाया कि जिन्हे तू मारने के भय से भयभीत हो रहा है, उन्हें मारा नहीं जा सकता है।

इस पूरे समय कृष्ण क्या कर रहे हैं? कृष्ण अर्जुन को, जैसे उस सिपाही को घुमाया जा रहा है इंग्लैंड में, ऐसे उसे किसी विचार के लोक में घुमा रहे है कि शायद कोई विचार-कण, कोई स्मृति चोट कर जाए और वह कहे कि ठीक, यही है। ऐसा ही है। लेकिन ऐसा वह नहीं कह पाता।

वह शिथिल गात, अपने गांडीव को रखे, उदास मन, वैसा ही हताश, विषाद से घिरा बैठा है। वह कृष्ण की बातें सुनता है। वह उसे पूरे इंग्लैंड में घुमा दिए-हर स्टेशन, हर जगह। कहीं भी उसे स्मरण नहीं आता कि वह दौड़कर कहे, कि यह रहा मैं; ठीक है, बात अब बंद करो, पहचान आ गई; रिकग्नीशन हुआ, प्रत्यभिज्ञा हुई, स्मरण आ गया है। ऐसा वह कहता नहीं। वह बैठा है। वह रीढ़ भी नहीं उठाता; वह सीधा भी नहीं बैठता। उसे कुछ भी स्मरण नहीं आ रहा है।

इसलिए कृष्ण उससे कहते हैं कि अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं। सांख्योग श्रेष्ठतम योग है। अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात करता हूं। वे जो जानने से ही नहीं जान सकते, जिन्हें कुछ करना ही पड़ेगा, जो बिना कुछ किए स्मरण ला ही नहीं सकते- अब मैं तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं।

प्रश्न : झेन बुद्धिज्म में, जैसे कि अद्वैत वेदांत में ब्रह्म आता है, तो झेन बुद्धिज्म में तो कुछ ऐसा है नहीं, तो आप साम्यता जो बता रहे है, उसकी स्पष्टता करें। और दूसरी बात यह है कि वेस्टर्न फिलासफर्स सांख्य का कभी पुरस्कार करते है, तो इसलिए कि सांख्य निरीश्वरवादी है। लेकिन कोई-कोई विद्वान ऐसा कहते हैं कि सांख्य निरीश्वरवादी नहीं है। तो यह भी है। तो वेस्टर्न फिलासफर्स निरीश्वरवादी है, इसलिए सांख्य का स्वीकार करते है? और झेन और सांख्य दोनों मे ब्रह्म तत्व का स्थान क्या हो सकता है?

झेन और सांख्य के बीच जो साम्य मैने कहा, उस साम्य का कारण है। ब्रह्म की चर्चा नहीं, उस साम्य का कारण है ज्ञान की प्रधानता। झेन कहता है, करने को कुछ भी नहीं है; और जो करेगा, वह व्यर्थ ही भटकेगा। झेन तो यहां तक कहता है कि तुमने खोजा कि तुम भटके। खोजो ही मत, खड़े हो जाओ और जान लो। क्योंकि तुम वही हो, जिसे तुम खोज रहे हो। झेन कहता है, जिसने प्रयास किया, वह मुश्किल में पड़ेगा। क्योंकि जिसे हमें पाना है, वह प्रयास से पाने की बात नहीं है। केवल अप्रयास में, एफर्टलेसनेस में जानने की बात है।

झेन कहता है, पा सकते हैं श्रम से उसे, जो हमारा नहीं है। पा सकते है श्रम से उसे, जो हमें मिला हुआ नहीं है। धन पाना हो तो बिना श्रम के नहीं मिलेगा; धन पाने के लिए श्रम करना होगा। धन हमारा कोई स्वभाव नहीं है। एक आदमी को दूसरे के घर जाना हो, तो रास्ता चलना पड़ेगा, क्योंकि दूसरे का घर अपना घर नहीं है। लेकिन एक आदमी अपने घर में बैठा हो और पूछता हो कि मुझे मेरे घर जाना है, मैं किस रास्ते से जाऊं? तो झेन कहता है, जाना ही मत, अन्यथा घर से दूर निकल जाओगे।

एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है, जो झेन फकीर कहते हैं। वे कहते हैं, एक आदमी ने शराब पी ली। शराब पीकर आधी रात अपने घर पहुंचा। हाथ-पैर डोलते हैं, आंखों को ठीक दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे भी अंधेरा है, भीतर नशा है, बाहर अंधेरा है। टटोल-टटालकर किसी तरह अपने दरवाजे तक पहुंच गया है। और फिर थक गया है। बहुत देर से भटक रहा है। फिर जोर-जोर से चिल्लाने लगा कि कोई मुझे मेरे घर पहुंचा दो। मेरी मां राह देखती होगी।

पास-पड़ोस के लोग उठ आए। और उन्होंने कहा, पागल तो नहीं हो गए हो! तुम अपने ही घर के सामने खड़े हो, अपने ही घर की सीढ़ियों पर। यही तुम्हारा घर है। लेकिन वह आदमी इतना परेशानी में चिल्ला रहा है कि मुझे मेरे घर पहुंचा दो, मुझे मेरे घर जाना है, मेरी बूढ़ी मां राह देखती होगी, कि सुने कौन! सुनने के लिए भी तो चुप होना जरूरी है। वह आदमी चिल्ला रहा है। पास-पड़ोस के लोग उससे कह रहे है, यही तुम्हारा घर है।

लेकिन यही तुम्हारा घर है-यह भीतर कैसे प्रवेश करे? वह आदमी तो भीतर चिल्ला रहा है, मेरा घर कहां है? शोरगुल सुनकर उसकी बूढ़ी मां भी उठ आई, जिसकी तलाश मे वह है। उसने दरवाजा खोला, उसने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा, बेटा तुझे क्या हो गया है। उसने उसके ही पैर पकड़ लिए और उसने कहा कि मेरी बूढ़ी मां राह देखती होगी; मुझे रास्ता बताओ कि मेरा घर कहां है?

तो पास-पड़ोस में कोई मजाक करने वाले लोग एक बैलगाड़ी लेकर आ गए और उन्होने कहा कि बैठो, हम तुम्हें तुम्हारे घर पहुचा देते है। वह आदमी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि यह भला आदमी है। ये सारे लोग मुझे घर पहुंचाने का कोई उपाय ही नहीं करते! कोई उपाय नहीं करता, न कोई बैलगाड़ी लाता, न कोई घोड़ा लाता, न मेरा कोई हाथ पकड़ता। तुम एक भले आदमी हो। उसने उसके पैर पड़े। वह आदमी हंसता रहा। उसे बैलगाड़ी में बिठाया, दस-बारह चक्कर लगाए घर के, फिर उसे द्वार के सामने उतारा। फिर वह कहने लगा, धन्यवाद! बड़ी कृपा की, मुझे मेरे घर पहुंचा दिया।

अब कृष्ण अर्जुन से कोशिश कर चुके पहली वाली कि यही तेरा घर है।

अब नहीं मानता, तो बैलगाड़ी जोतते हैं। वे कहते हैं, कर्मयोग में चल। अब तू चक्कर लगा। अब तू दस-पांच चक्कर लगा ले, फिर ही तुझे खयाल में आ सकता है कि पहुंचा। बिना चले तू स्वयं तक भी नहीं पहुंच सकता है।

झेन कहता है कि जिसे हम खोज रहे है, वह वहीं है जहां हम हैं; इंचभर का फासला नहीं है। इसलिए जाओगे कहां? खोजोगे कैसे? श्रम क्या करोगे? असल मे श्रम करके हम पराए को पा सकते है, स्वयं को नहीं। स्वयं तो सब श्रम के पहले उपलब्ध है।

तो झेन और सांख्य का जो साम्य मैंने कहा, वह इसलिए कहा कि सांख्य भी कर्म को व्यर्थ मानता है, कोई अर्थ नहीं है कर्म का। झेन भी कर्म को व्यर्थ मानता है, कोई अर्थ नहीं कर्म का। क्योंकि जिसे जानना है, वह सब कर्मो के पहले ही मिला हुआ है, आलरेडी एचीव्ड।

तो जो अड़चन है, जो कठिनाई है, जो समझ में हमे नही आती, वह इस तरह की है कि कोई चीज जो हमे मिली हुई नहीं है, उसे पाना है, यह एक बात है। और कोई चीज जो हमें मिली ही है, उसे सिर्फ जानना है, यह बिलकुल दूसरी बात है। यदि आत्मा भीतर है ही, तो कहां खोजना है? और अगर मै ब्रह्म हूं ही, तो क्या करना है? करने से क्या संबंध है? करने से क्या होगा?

नही; न-करने मे उतरना होगा, नान-एक्शन में उतरना होगा, अकर्म में उतरना होगा। छोड़ देना होगा करना-वरना और थोड़ी देर रुककर उसे देखना होगा, जो करने के पीछे खड़ा है, जो सब करने का आधार है, फिर भी करने के बाहर है।

एक और झेन कहानी मुझे याद आती है कि झेन में कोई पांच सौ वर्ष पहले, एक बहुत अदभुत फकीर हुआ, बांकेई। जापान का सम्राट उसके दर्शन को गया। बड़ी चर्चा सुनी, बड़ी प्रशंसा सुनी, तो गया। सुना उसने कि दूर-दूर पहाड़ पर फैली हुई मोनेस्ट्री है, आश्रम है। कोई पांच सौ भिक्षु वहां साधना में रत है। तो गया। बांकेई से उसने कहा, एक-एक जगह मुझे दिखाओ तुम्हारे आश्रम की, मै काफी समय लेकर आया हूं। मुझे बताओ कि तुम कहां-कहां क्या-क्या करते हो? मै सब जानना चाहता हूं।

आश्रम के दूर-दूर तक फैले हुए मकान है। कहीं भिक्षु रहते हैं, कहीं भोजन करते है, कहीं सोते है, कहीं स्नान करते है, कहीं अध्ययन करते है-कहीं कुछ, कहीं कुछ। बीच में, आश्रम के सारे विस्तार के बीच एक बड़ा भवन है, स्वर्ण-शिखरों से मंडित एक मंदिर है।

बांकेई ने कहा, भिक्षु जहां-जहां जो-जो करते हैं, वह मै आपको दिखाता हूं। फिर वह ले चला। सम्राट को ले गया भोजनालय में और कहा, यहां भोजन करते है। ले गया स्नानगृहों में कि यहां स्नान करते हैं भिक्षु। ले गया जगह-जगह। सम्राट थकने लगा। उसने कहा कि छोड़ो भी, ये सब छोटी-छोटी जगह तो ठीक है, वह जो बीच में स्वर्ण-शिखरों से मंडित मंदिर है, वहां क्या करते हो? वहां ले चलो। मै वह देखने को बड़ा आतुर हूं।

लेकिन न मालूम क्या हो कि जैसे ही सम्राट उस बीच मे उठे शिखर वाले मंदिर की बात करे, बांकेई एकदम बहरा हो जाए, वह सुने ही न। एक दफा सम्राट ने सोचा कि शायद चूक गया, खयाल मे नहीं आया। फिर दुबारा जोर से कहा कि और सब बातें तो तुम ठीक से सुन लेते हो! यह स्नानगृह देखने मै नहीं आया, यह भोजनालय देखने मै नहीं आया, उस मंदिर में क्या करते हो? लेकिन बांकेई एकदम चुप हो गया, वह सुनता ही नहीं। फिर घुमाने लगा-यहां यह होता है, यहां यह होता है।

आखिर वापस द्वार पर लौट आए, उस बीच के मंदिर में बांकेई नहीं ले गया। सम्राट घोड़े पर बैठने लगा और उसने कहा, या तो मै पागल हूं या तुम पागल हो। जिस जगह को मैं देखने आया था, तुमने दिखाई ही नहीं। तुम आदमी कैसे हो? और मै बार-बार कहता हूं कि उस मंदिर में ले चलो, वहां क्या करते है? तुम एकदम बहरे हो जाते हो। सब बात सुनते हो, इसी बात में बहरे हो जाते हो!

बांकेई ने कहा, आप नहीं मानते तो मुझे उत्तर देना पड़ेगा। आपने कहा, वहां-वहां ले चलो, जहां-जहां भिक्षु कुछ करते हैं, तो मैं वहां-वहां ले गया। वह जो बीच में मंदिर है, वहां भिक्षु कुछ भी नहीं करते। वहां सिर्फ भिक्षु भिक्षु होते है। वह हमारा ध्यान मंदिर है, मेडिटेशन सेंटर है। वहां हम कुछ करते नहीं, सिर्फ होते हैं। वहां

डूइंग नहीं है, वहां बीइंग है। वहां करने का मामला नहीं है। वहां जब करने से हम थक जाते हैं और सिर्फ होने का आनंद लेना चाहते है, तो हम वहां भीतर जाते है। अब मेरी मजबूरी थी, आपने कहा था, क्या करते हैं, वहां ले चलो।

अगर मै उस भवन में ले जाता, आप पूछते कि भिक्षु यहां क्या करते है, तो मैं क्या कहता? और नहीं करने की बात आप समझ सकते, इसकी मुझे आशा नहीं है। अगर मैं कहता, ध्यान करते हैं, तो भी गलती होती, क्योकि ध्यान कोई करना नहीं है, ध्यान कोई एक्शन नही है। अगर मै कहता, प्रार्थना करते है, तो भी गलती होती; क्योंकि प्रार्थना कभी कोई कर नहीं सकता, वह कोई एक्ट नहीं है, भाव है। तो मै मुश्किल मे पड़ गया, इसलिए मुझे मजबूरी में बहरा हो जाना पड़ा। फिर मैने सोचा, बजाय गलत बोलने के यही उचित है कि आप मुझे पागल या बहरा समझकर चले जाएं।

झेन कहता है, ध्यान अर्थात न-करना। इस न-करने में ही वह जाना जाता है, जो है। सांख्य और झेन का इस वजह से साम्य है। झेन बात नहीं करता ब्रह्म की। क्योंकि झेन का कहना यह है कि जब तक ध्यान नहीं, जब तक ज्ञान नहीं, तब तक ब्रह्म की बात व्यर्थ है। और जब ज्ञान हुआ, ध्यान हुआ, तब भी ब्रह्म की बात व्यर्थ है। क्योंकि जिसे हमने नहीं जाना, उसकी बात क्या करें! और जिसे हमने जान लिया, उसकी बात की क्या जरूरत है! इसलिए झेन चुप है, वह मौन है; वह ब्रह्म की बात नहीं करता।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि ब्रह्म नहीं जानता। यह तो निर्भर करेगा व्यक्तियों पर। सांख्य बात करता है, इसी आशा में कि शायद उसकी चर्चा-उसकी चर्चा से उसे जाना नहीं जा सकता, लेकिन उसकी चर्चा शायद किसी के मन में छिपी हुई प्यास पर चोट बन जाए। शायद उसकी चर्चा किसी के मन में चल रही आकांक्षा को मार्ग दे दे। शायद उसकी चर्चा ऊंट के लिए आखिरी तिनका सिद्ध हो जाए। कोई बिलकुल बैठने को ही था ऊंट, एक तिनका और-एक तिनके से कहीं ऊंट बैठा है! लेकिन शायद किसी बैठते ऊंट को तिनका सिद्ध हो जाए, वह बैठ जाए।

इसलिए सांख्य बात करता है। लेकिन कैसे मिलेगा वह? कुछ करने से? नहीं; जानने से। जानना और करना, डूइंग और नोइंग का जो फर्क है, उस मामले में झेन और सांख्य बिलकुल समान हैं। और जगत में जितने भी परम ज्ञानी हुए हैं, उन सब परम ज्ञानियों की बातों में सांख्य तो होगा ही। सांख्य से बचा नहीं जा सकता। सांख्य तो होगा ही। यह हो सकता है कि किसी की चर्चा में शुद्ध सांख्य हो। तब ऐसा आदमी बहुत कम लोगों के काम का रह जाएगा।

जैसे बुद्ध। बुद्ध की चर्चा शुद्ध सांख्य है। इसलिए हिंदुस्तान से बुद्ध के पैर उखड़ गए। क्योंकि सिर्फ जानना, सिर्फ जानना, सिर्फ जानना! करना कुछ भी नहीं! वह जो इतना बड़ा जगत है, जहां सब करने वाले इकट्ठे है, वे कहते है कि कुछ तो करने को बताओ, कुछ पाने को बताओ! बुद्ध कहते हैं, न कुछ पाने को है, न कुछ करने को। झेन जो है, वह बुद्धिज्म की शाखा है। वह शुद्धतम बुद्ध का विचार है। लेकिन हिंदुस्तान के बाहर बुद्ध के पैर जम गए-चीन में, बर्मा में, थाईलैंड में, तिब्बत में। क्योंकि जो अशुद्धि करने के लिए बुद्ध का विचार हिंदुस्तान में राजी नहीं हुआ, तो यहां उसके पैर उखड़ गए, तो वही समझौता उसे करना पड़ा, जो यहां करने को राजी नहीं हुआ।

तिब्बत में वह करना बन गया, रिचुअल बन गया। चीन में जाकर उसने करने के लिए स्वीकृति दे दी कि ऐसा-ऐसा करो। थाईलैंड में वह करना बन गया, लंका में करना बन गया। वह कर्मयोग बना। जब तक वह सांख्य रहा शुद्ध, तब तक उसकी जड़ें फैलनी मुश्किल हो गईं।

थोड़े से लोगों की ही पकड़ में आ सकती है शुद्ध सांख्य की बात। इसलिए श्रेष्ठतम विचार सांख्य ने दिया, लेकिन सांख्य को मानने वाला आदमी हिंदुस्तान में खोजे से नहीं मिलेगा। सब तरह के, हजार तरह के मानने वाले आदमी मिल जाएंगे, सांख्य को मानने वाला आदमी नहीं मिलेगा। सांख्य के लिए समर्पित एक मंदिर नहीं है। सांख्य के जन्मदाता के लिए समर्पित एक मूर्ति नहीं है।

असल में जो एब्सोल्यूट ट्रुथ की बात करेंगे, उनको राजी होना चाहिए कि आम जनता तक उनकी खबर मुश्किल से पहुंचेगी। जो पूर्ण सत्य की बात करेंगे,

उनको राजी रहना चाहिए कि उनकी बात बहुत आकाश में घूमती रहेगी। जमीन तक उतारना बहुत मुश्किल है। क्योंकि यहां जमीन पर सिर्फ अशुद्ध सत्य उतरते है। यहां जमीन पर जिस सत्य को भी पैर जमाने हों, उसे जमीन के साथ समझौता करना पड़ता है।

कृष्ण ने पहले नानकंप्रोमाइजिंग सांख्य की बात की। कहा कि मै तुझे सांख्य की बुद्धि बताता हूं। लेकिन देखा कि अर्जुन के भीतर उसकी जड़े नहीं पहुंच सकतीं। इसलिए दूसरे, सेकेंडरी वे कहते है, अब मै तुझसे कर्मयोग की बात कहता हूं।

और एक बात और पूछी है कि पश्चिम में क्या सांख्य की चर्चा जिन दार्शनिकों ने की है, उनका कारण यही तो नही है कि सांख्य निरीश्वरवादी है?

असल मे जो भी ब्रह्मवादी है, वह ईश्वरवादी हो नहीं सकता। जो भी ब्रह्मवादी है, वह ईश्वरवादी हो नही सकता। अगर वह ईश्वर को जगह भी देगा, तो वह माया के भीतर ही होगी जगह, बाहर नहीं हो सकती। वह इलूजन के भीतर ही होगी। या तो वह कह देगा, कोई ईश्वर नही है, ब्रह्म पर्याप्त है, अव्यक्त पर्याप्त है। या अगर समझौता किया उसने आपसे, तो वह कहेगा, ईश्वर है; वह भी अव्यक्त का एक रूप है, लेकिन माया के घेरे के भीतर। वह सिर्फ आपसे समझौता कर रहा है।

सांख्य के जो मौलिक सूत्र है, वे शुद्धतम है। उनमे ईश्वर की कोई जगह नहीं है। ईश्वर का मतलब समझ लेना आप, ब्रह्म का फर्क समझ लेना।

ईश्वर का मतलब है, दि क्रिएटर, सृजन करने वाला। ब्रह्म का अर्थ है, शुद्धतम जीवन की ऊर्जा। ईश्वर के पहले भी ब्रह्म है। ईश्वर भी बनते और मिटते है, ईश्वर भी आते और जाते है। ईश्वर हमारी धारणाएं है।

इसे ऐसा समझें कि मैं एक अंधेरी रात में चल रहा हूं। दूर, दो-चार मील दूर कुछ दिखाई पड़ता है। लगता है कि कोई पुलिस वाला खड़ा है। और मीलभर चलकर आता हूं पास, तो दिखाई पड़ता है, पुलिस वाला नही है, कोई झाड़ का ठूंठ है। और मीलभर चलकर आता हूं, तो पाता हूं, झाड़ का ठूंठ भी नही है,

स्वतंत्रता का स्मारक है। जो है, वह वही है। और पता नहीं मीलभर बाद चलकर पता क्या चले! जो है, वह तो वही है। मैं आगे आता जा रहा हूं।

जो लोग ब्रह्म की यात्रा पर निकलते हैं, यात्रा के अंत पर जिसे पाते हैं, वह ब्रह्म है। और यात्रा पास आती जाती है, पास आती जाती है, उस पास आते जाते में जिसे पाते हैं, वह ईश्वर है। ईश्वर ब्रह्म को दूर से देखा गया कंसेप्शन है, धारणा है। हम सोच ही नहीं सकते ब्रह्म को। जब हम सोचते हैं, तब हम ईश्वर बना लेते हैं। निर्गुण को हम सोच ही नहीं सकते, जब सोचते हैं तो सगुण बना लेते हैं। निराकार को हम सोच नहीं सकते, जब सोचते हैं तो उसे भी आकार दे देते हैं।

ब्रह्म मनुष्य के मन से जब देखा जाता है, तब ईश्वर निर्मित होता है। यह ईश्वर मनुष्य का निर्माण है। जैसे-जैसे आगे जाएगा, विचार छोड़ेगा, छोड़ेगा और निर्विचार होगा, उस दिन पाएगा, ईश्वर भी खो गया। अब जो शेष रह जाता है निराकार, निर्गुण, वही ब्रह्म है।

तो शुद्धतम सूत्र में तो सांख्य राजी नहीं है। क्योंकि सांख्य कहता है, बीच के मुकाम बनाने नहीं हैं। लेकिन सांख्य की भी बाद में एक दूसरी धारा फूटी। निरीश्वर सांख्य तो था ही, लेकिन वह भी हवा में खोने लगा, तो सेश्वर सांख्य भी निर्मित हुआ। कुछ लोगों ने समझौते किए और सांख्य में भी ईश्वर को जोड़ा। और कहा कि काम नहीं चलेगा, क्योंकि आदमी ब्रह्म को पकड़ नहीं पाता, उसके लिए बीच की मंजिलें बनानी पड़ेंगी। और न ही पकड़ पाए, इससे तो अच्छा है कि चार कदम चले और ईश्वर को पकड़े। फिर ईश्वर को छुड़ा लेंगे। चलने को ही जो राजी न हो, उसे चार कदम चलाओ। चार कदम चलने के बाद कहेंगे कि यह जो तुम्हें दिखाई पड़ता था, गलत दिखाई पड़ता था, इसे छोड़ो। और चार कदम चलो। हो सकता है, बीच में कई ईश्वर के मंदिर खड़े करने पड़ें-इससे पहले कि ब्रह्म का अव्यक्त, ब्रह्म का निराकार मंदिर प्रकट हो।

पश्चिम में जो सांख्य का प्रभाव है, वह निरीश्वरवादी होने की वजह से नहीं है। पश्चिम में भी जो बुद्धिमान, विचारशील आदमी पैदा हुआ है, वह भी जानता है कि बात तो सिर्फ ज्ञान की ही है, सिर्फ जान लेने की ही है। अगर हमें

समझ में न आए, तो वह हमारी मजबूरी है, लेकिन बात केवल जान लेने की है। अगर इकहार्ट से पूछें, या प्लेटिनस से पूछें, या बोहेम से पूछें, तो पश्चिम में भी जो आदमी जानता है, वह कहेगा, बात तो यही है कि सिर्फ जान लेना है, और कुछ भी नहीं करना है। जरा हिले करने के लिए-कि चूक हुई। क्योंकि करना बिना हिले न होगा। करेंगे तो हिलना ही पड़ेगा। और वह जो अकंप है, वह हम जरा भी हिले कि खोया।

उसी की तरह अकंप हो जाना पड़ेगा। जैसे दीए की लौ किसी बंद घर में-जहां हवा के झोंके न आते हों-अकंप जलती है। ऐसे ही अकर्म में व्यक्ति की चेतना अकंप हो जाती है; अकर्म में, नान-एक्शन में अकंप हो जाती है। और जैसे ही व्यक्ति की चेतना अकंप होती है, विराट की चेतना से एक हो जाती है।

पश्चिम में भी प्रभाव सांख्य का है। और मैं मानता हूं कि जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि और विकसित होगी, सांख्य और भी प्रभावी होता चला जाएगा। भारत में उतना प्रभाव सांख्य का नहीं है। भारत में प्रभाव योग का है, जो कि बिलकुल ही दूसरी, उलटी बात है। योग कहता है, कुछ करना पड़ेगा। योग मनुष्य की निम्नतम बुद्धि से चलता है। सांख्य मनुष्य की श्रेष्ठतम बुद्धि से चलता है।

स्वभावतः, जो श्रेष्ठतम से शुरू करेगा, वह आखिर तक नहीं आ पाएगा। और अक्सर ऐसा होता है कि जो आखिरी से शुरू करेगा, वह चाहे तो श्रेष्ठतम तक पहुंच जाए।

सांख्य शुद्धतम ज्ञान है, योग शुद्धतम क्रिया है। और अगर हम सारी दुनिया के चिंतन को दो हिस्सों में बांटना चाहें, तो सांख्य और योग दो शब्द काफी हैं। जिनका भी करने पर भरोसा है, उनको योग में; और जिनको न-करने पर भरोसा है, सिर्फ जानने पर भरोसा है, उनको सांख्य में। असल में जगत में सांख्य और योग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। बाकी सब इन दो केटेगरी में कहीं न कहीं खड़े होंगे। चाहे दुनिया के किसी कोने में कोई चिंतन पैदा हुआ हो जीवन के प्रति, बस दो ही विभाजन में बांटा जा सकता है।

असल में पूरब और पश्चिम की फिलासफी बांटनी बंद करनी चाहिए;

जैन, हिंदू, मुसलमान की फिलासफी बांटनी बंद करनी चाहिए; सिर्फ दो विभाजन किए जाने चाहिए, योग और सांख्य। योग पर वे आस्थाएं, जो कहती है, कुछ करने से होगा। सांख्य पर वे आस्थाएं, जो कहती है, कुछ न करने से ही होता है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। 40।।

इस निष्काम कर्मयोग मे आरंभ का अर्थात बीज का नाश नही है, और उलटा फलस्वरूप दोष भी नहीं होता है, इसलिए इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्म का थोड़ा भी साधन, जन्म-मृत्युरूप महान भय से उद्धार कर देता है।

कृष्ण कह रहे है कि निष्काम कर्म का कोई भी कदम व्यर्थ नही जाता है। इसे समझना जरूरी है। निष्काम कर्म का छोटा-सा प्रयास भी व्यर्थ नही जाता है। लेकिन इससे उलटी बात भी समझ लेनी चाहिए। सकाम कर्म का बड़े से बड़ा प्रयास भी व्यर्थ ही जाता है।

एक घर मे मै अभी ठहरा था। चितित थे, जिनके घर रुका था। रात नीद नहीं आती थी, तो मैने पूछा, बात क्या है ? उन्होने कहा, क्या बताएं, बड़ी मुसीबत टूट पड़ी है, पांच लाख का नुकसान हो गया। स्वभावत., पांच लाख का नुकसान लगा हो, तो बड़ी मुसीबत टूट ही गई है। मैने उनकी पत्नी को पूछा, क्या हो गया ? कैसे नुकसान लग गया पांच लाख का ? उनकी पत्नी ने कहा, आप इनकी बातो मे मत पड़ जाना। पांच लाख का नुकसान नही लगा है, पांच लाख का लाभ हुआ है!

मै तो बहुत मुश्किल मे पड़ गया। मैने कहा कि क्या कहती हो! उसने कहा, बिलकुल ठीक कहती हूं। उनको दस लाख के लाभ की आशा थी, पांच लाख का ही लाभ हुआ है, इसलिए उनको पांच लाख का नुकसान हो गया है। नींद हराम है, दवाएं चल रही है, ब्लड-प्रेशर बढ़ा हुआ है। कोई उपाय नहीं है उनको समझाने का कि पांच लाख का लाभ हुआ है!

मैंने उनसे पूछा। तो उन्होंने कहा कि वह पांच लाख क्या, दस लाख होने ही वाले थे। पंद्रह भी हो सकते थे। पांच का कोई सवाल ही नहीं है। पांच का तो सुनिश्चित नुकसान हुआ है।

अब यह सकाम बुद्धि है, यह सदा असफल होती है; सदा असफल होती है। लाभ हो, तो भी हानि होती है सकाम बुद्धि में। क्योंकि अपेक्षा का कोई अंत नहीं है। जो भी मिलता है, सदा छोटा पड़ता है। जो भी सफलता मिलती है, वह भी किसी बड़ी असफलता के सामने फीकी लगती है। कुछ भी मिल जाए, तो भी तृप्ति नहीं है। कुछ भी मिल जाए, तो भी संतोष की कहीं कोई झलक नहीं आती। सकाम कर्म असफल होने को बाध्य है। असफलता में नहीं है उसका राज, उसका राज सकाम होने में है।

अब कृष्ण कहते है, निष्काम कर्म का छोटा-सा भी कृत्य सफल ही होता है। होगा ही, क्योंकि असफलता का कोई उपाय नहीं है। जब निष्काम है, तो अपेक्षारहित है। इसलिए जो भी मिल जाए, वह भी बहुत है। क्योंकि कोई अपेक्षा नही थी, जिससे उसको छोटा बताया जा सके।

कहानी सुनी है हम सबने कि अकबर ने एक लकीर खींच दी थी दरबार में अपने, और कहा था अपने दरबारियों को कि बिना छुए इसे छोटा कर दो। वे सब हार गए थे और फिर बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके पास खींच दी। उसे छुआ नहीं, काटा नहीं, पोंछा नहीं, सिर्फ एक बड़ी लकीर पास खींच दी। और वह लकीर एकदम छोटी हो गई।

अपेक्षा की बड़ी लकीर जिनके मन में खिंची है, सफलता की सभी लकीरें छोटी पड़ती हैं। अपेक्षा एंडलेस है-वह जितनी बड़ी खींची थी बीरबल ने, वह कुछ बड़ी नहीं थी-अपेक्षा की जो लकीर है, उसका कोई अंत ही नहीं है। वह दोनों छोरों पर अनंत है। जो लोग ब्रह्म को जानते हैं, वे ब्रह्म को अनंत कहते हैं। लेकिन जिन्होंने ब्रह्म को नहीं जाना, वे भी एक अनंत चीज को जानते हैं। वह अपेक्षा है, एक्सपेक्टेशन है। उस अनंत अपेक्षा के पास खींची गई कोई भी सफलता सदा छोटी पड़ती है।

लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि अपेक्षा की लकीर मिटा दो। निष्काम कर्म का अर्थ यही है-अपेक्षारहित, फल की आकांक्षारहित, कामनारहित। स्वभावतः, बड़ी होशियारी की बात उन्होने कही है। वे कह रहे है कि अगर अपेक्षा की लकीर मिटा दो, तो फिर छोटा-सा भी कर्म तृप्ति ही लाता है। क्योंकि कितना ही छोटा हो, तो भी बड़ा ही होता है, क्योकि तौलने के लिए कोई नीचे लकीर नहीं होती। इसलिए निष्कामकर्मी कभी भी विषाद को उपलब्ध नहीं होता है। सिर्फ सकामकर्मी विषाद को उपलब्ध होता है। फ्रस्ट्रेशन जो है, वह सकाम कर्म की छाया है। निष्काम कर्म की कोई छाया नहीं बनती, कोई विषाद नहीं बनता।

इसलिए एक बहुत मजे की बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है, गरीब आदमी ज्यादा विषाद को उपलब्ध नहीं होता, अमीर आदमी ज्यादा विषाद को उपलब्ध होता है। होना नहीं चाहिए ऐसा। बिलकुल नियम को तोड़कर चलती हुई बात मालूम पड़ती है। गरीब समाज ज्यादा परेशान नहीं होते, अमीर समाज बहुत परेशान हो जाते है। क्या कारण होगा?

असल में गरीब आदमी अनंत अपेक्षा की हिम्मत नहीं जुटा पाता। वह जानता है अपनी सीमा को। वह जानता है कि क्या हो सकता है, क्या नही हो सकता है। अपने वश के बाहर है बात, वह अनंत अपेक्षा की रेखा नही बनाता। इसलिए फ्रस्ट्रेशन को उपलब्ध नहीं होता। इसलिए विषाद को उपलब्ध नही होता। अमीर आदमी, जिसके पास सुविधा है, संपन्नता है, अपेक्षा की रेखा को अनंत गुना बड़ा करने की हिम्मत जुटा लेता है। बस, उसी के साथ विषाद उत्पन्न हो जाता है।

पाल गुडमेन ने अमेरिका के संबंध में एक किताब लिखी है, ग्रोइंग अप एब्सर्ड। उसमें उसने एक बहुत मजे की बात कही है। उसने कहा है कि मनुष्य जाति ने जिन-जिन सुविधाओं की आकांक्षा की थी, वे सब पूरी हो गई हैं अमेरिका में। मनुष्य जाति ने जो-जो सपने देखे थे, उनसे भी आगे अमेरिका में सफलता मिल गई। लेकिन अमेरिका में जो आदमी है, आज उससे दुखी आदमी बस्तर के जंगल मे भी नहीं है। क्या, हो क्या गया? यह एब्सर्डिटी कहां से आई? यह

अजीब बात है कि जो-जो आदमी करोड़ों साल से अपेक्षा कर रहा था, वह सब फलित हो गई है। सब सपने पूरे हो गए हैं। यह क्या हो गया लेकिन ? हुआ क्या ?

हुआ यह कि सब शक्ति हाथ में होने पर अपेक्षाएं एकदम अनंत हो गईं। इसलिए जो भी पास में है, एकदम छोटा पड़ गया। बस्तर के आदिवासी की बहुत बड़ी अपेक्षा की सामर्थ्य नहीं है, जो भी हाथ में है, काफी बड़ा है।

इसलिए दुनिया में गरीब आदमी कभी बगावत नहीं करते। गरीब आदमी अपेक्षा ही नहीं करते कि बगावत कर सकें। दुनिया में बगावत शुरू होती है, जब गरीब आदमी के पास अपेक्षाएं दिखाई पड़ने लगती है निकट; तब उपद्रव शुरू होता है। दुनिया में अशिक्षित आदमी बगावत नहीं करते, क्योंकि अपेक्षा बांध नहीं पाते। शिक्षित आदमी उपद्रव शुरू करते हैं। क्योंकि जैसे ही शिक्षा हुई, अपेक्षाएं एकदम विस्तार लेने लगती हैं। शिक्षित आदमी को शांत करना मुश्किल है। मै नहीं कहता कि शिक्षित नहीं करना चाहिए; यह मैं नहीं कह रहा हूं। शिक्षित आदमी को शांत करना मुश्किल है। अभी तक तो कोई उपाय नहीं खोजा जा सका।

एक बहुत बड़े विचारक ने तो एक किताब लिखी है, कंपल्सरी मिसएजुकेशन। जिसको हम अनिवार्य शिक्षा कहते है, वह उसको अनिवार्य कुशिक्षा...। क्योंकि अगर अंततः आदमी सिर्फ दुखी और अशांत ही होता हो, तो अ, ब, स, द सीख लेने से भी क्या हो जाने वाला है! अगर समृद्धि सिर्फ विषाद ही लाती हो, तो ऐसी समृद्धि से दरिद्रता बेहतर मालूम पड़ सकती है।

लेकिन राज क्या है ? सीक्रेट सिर्फ इतना-सा है, समृद्धि से कोई लेना-देना नहीं है, अगर अपेक्षा की धारा बहुत ज्यादा न हो, तो समृद्ध आदमी भी शांत हो सकता है। और अगर अपेक्षा की धारा बहुत बड़ी हो, तो दरिद्र भी अशांत हो जाएगा। अगर अपेक्षा शून्य हो, तो शिक्षित भी शांत हो सकता है। अगर अपेक्षा विराट हो, तो अशिक्षित भी अशांत हो जाता है। प्रश्न शिक्षित-अशिक्षित, धन और दरिद्रता का नहीं है। प्रश्न सदा ही गहरे में अपेक्षा का है, एक्सपेक्टेशन का है।

तो वह कृष्ण कह रहे हैं कि निष्काम कर्म की तुझसे मैं बात कहता हूं और इसलिए कहता हूं, क्योंकि निष्काम कर्म को करने वाला व्यक्ति कभी भी

असफलता को उपलब्ध नहीं होता है। यह पहली बात। और दूसरी बात वे यह कह रहे हैं कि निष्काम कर्म में छोटा-सा भी विघ्न, छोटी-सी भी बाधा नहीं आती। क्यों नहीं आती? निष्काम कर्म में ऐसी क्या कीमिया है, क्या केमिस्ट्री है कि बाधा नहीं आती, कोई प्रत्यवाय पैदा नहीं होता!

है। बाधा भी तो अपेक्षा के कारण ही दिखाई पड़ती है। जिसकी अपेक्षा नहीं है, उसे बाधा भी कैसे दिखाई पड़ेगी? गंगा बहती है सागर की तरफ, अगर वह पहले से एक नक्शा बना ले और पक्का कर ले कि इस-इस रास्ते से जाना है, तो हजार बाधाएं आएंगी रास्ते में। क्योकि कहीं किसी ने मकान बना लिया होगा गंगा से बिना पूछे, कहीं कोई पहाड़ खड़ा हो गया होगा गंगा से बिना पूछे, कहीं चढ़ाई होगी गंगा से बिना पूछे। और नक्शा वह पहले बना ले, तो फिर बाधाएं हजार आएंगी। और यह भी हो सकता है कि बाधाओ से लड़-लड़कर गंगा इतनी मुश्किल में पड़ जाए कि सागर तक कभी पहुंच ही न पाए।

लेकिन गंगा बिना ही नक्शे के, बिना प्लानिंग के चल पड़ती है। रास्ता पहले से अपेक्षा मे न होने से, जो भी मार्ग मिल जाता है, वही रास्ता है। बाधा का कोई प्रश्न ही नहीं है। अगर पहाड़ रास्ते में पड़ता है, तो किनारे से गंगा बह जाती है। पहाड़ से रास्ता बनाना किसको था, जिससे पहाड़ बाधा बने!

जो लोग भी भविष्य क़ी अपेक्षा को सुनिश्चित करके चलते है, अपने हाथ से बाधाएं खड़ी करते हैं। क्योंकि भविष्य आपका अकेला नहीं है। किस पहाड़ ने बीच में खड़े होने की पहले से योजना कर रखी होगी, आपको कुछ पता नहीं है।

जो भविष्य को निश्चित करके नही चलता, जो अभी कर्म करता है और कल कर्म का क्या फल होगा, इसकी कोई फिक्स्ड, इसकी कोई सुनिश्चित धारणा नहीं बनाता, उसके मार्ग में बाधा आएगी कैसे? असल में उसके लिए तो जो भी मार्ग होगा, वही मार्ग है। और जो भी मार्ग मिलेगा, उसी के लिए परमात्मा को धन्यवाद है। उसको बाधा मिल ही नहीं सकती।

इसलिए कृष्ण कहते है, अर्जुन, निष्काम कर्म की यात्रा पर जरा-सा भी प्रत्यवाय नहीं है, जरा-सी भी बाधा नहीं है, जरा-सा भी हिंडरेंस है ही नहीं। पर

बड़ी होशियारी की, बड़ी कलात्मक बात है, बहुत आर्टिस्टिक बात है। एकदम से खयाल में नहीं आएगी। एकदम से खयाल में नहीं आएगी कि बाधा क्यों नहीं है? क्या निष्काम कर्म करने वाले आदमी को बाधा नहीं बची?

बाधाएं सब अपनी जगह हैं, लेकिन निष्काम कर्म करने वाले आदमी ने बाधाओं को स्वीकार करना बद कर दिया। स्वीकृति होती थी अपेक्षाओं से, उनके प्रतिकूल होने से। अब कुछ भी प्रतिकूल नहीं है। निष्काम कर्म की धारणा में बहने वाले आदमी को सभी कुछ अनुकूल है। इसका यह मतलब नहीं है कि सभी कुछ अनुकूल है। असल में जो भी है, वह अनुकूल ही है, क्योंकि प्रतिकूल को तय करने का उसके पास कोई भी तराजू नहीं है। न बाधा है, न विफलता है। सब बाधाएं, सब विफलताएं सकाम मन की निर्मितियां हैं।

प्रश्न : श्लोक के उत्तरार्द्ध में- स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्- इस धर्म का अति अल्प आचरण भी बड़े भय से बचाता है, इसे भी समझाएं।

निष्काम कर्म का अल्प आचरण भी बड़े-बड़े भयों से बचाता है। बड़े-बड़े भय क्या हैं? बड़े-बड़े भय यहीं हैं-असफलता तो नहीं मिलेगी! विषाद तो हाथ नहीं आएगा! दुख तो पल्ले नहीं पड़ेगा! कोई बाधा तो न आ जाएगी! निराशा तो नहीं मिलेगी! बड़े-बड़े भय यही है। कृष्ण कह रहे हैं, सूत्र के अंतिम हिस्से में, कि निष्काम कर्म का थोड़ा-सा भी आचरण, अंशमात्र आचरण भी, रत्तीभर आचरण भी, पहाड़ जैसे भयों से मनुष्य को मुक्ति दिला देता है।

असल में जब तक विपरीत दशा को न समझ लें, खयाल में नहीं आएगा। जरा-सी अपेक्षा पहाड़ों जैसे भय को निर्मित कर देती है। जरा-सी कामना, पहाड़ों जैसे दुखों का निर्माण कर देती है। जरा-सी इच्छा पर जोर, जरा-सा आग्रह कि ऐसा ही हो, सारे जीवन को अस्तव्यस्त कर जाता है। जिसने भी कहा, ऐसा ही हो, वह दुख पाएगा ही। ऐसा होता ही नहीं। जिसने भी कहा, ऐसा ही होगा, तो ही मैं सुखी हो सकता हूं, उसने अपने नर्क का इंतजाम स्वयं ही कर लिया। वह आर्किटेक्ट है अपने नर्क का खुद ही; उसने सब व्यवस्था अपने लिए कर ली है।

हम जितने दुख झेल रहे हैं, कभी आपने सोचा कि कितनी छोटी अपेक्षाओं पर खड़े हैं! कितनी छोटी अपेक्षाओं पर! नहीं देखा कभी। हम जो दुख झेल रहे हैं, कितनी छोटी अपेक्षाओं पर खड़े हैं!

एक आदमी रास्ते से निकल रहा है। आपने सदा उसको नमस्कार किया था, आज आप नमस्कार नहीं करते हैं, ये दो हाथ ऊपर नहीं उठे आज। उसकी नींद हराम है, वह परेशान है, उसे बुखार चढ़ आया है! अब वह सोचने लगा कि क्या हो गया, कोई बदनामी हो गई, इज्जत हाथ से चली गई, प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। जिस आदमी ने सदा नमस्कार की, उसने नमस्कार नहीं किया! क्या होगा? क्या नहीं होगा? अब उसको कैसे बदला चुकाना, और क्या नहीं करना-वह हजार-हजार चक्करों में पड़ गया है। इस आदमी के ये दो हाथों का न उठना, हो सकता है उसकी जिंदगी के सारे भवन को उदासी से भर जाए।

पति घर आया है और उसने कहा, पानी लाओ। और पत्नी नहीं लाई दो क्षण। सब दुख हो गया! पति घर से बाहर निकला; राह चलती किसी स्त्री को उसने आंख उठाकर देख लिया; पत्नी के प्राण अंत हो गए! पत्नी मरने जैसी हालत में हो गई; जीने का कोई अर्थ नहीं रहा, जीना बिलकुल बेकार है!

हम अगर अपने दुखों के पहाड़ को देखें, तो बड़ी क्षुद्र अपेक्षाएं उनके पीछे खड़ी मिलती हैं। यहीं से समझना उचित होगा। क्योंकि निष्काम कर्म का तो अंश भी हमें पता नहीं, लेकिन सकाम कर्म के काफी अंश हमें पता हैं। यहीं से समझना उचित होगा। उसके विपरीत निष्काम कर्म की स्थिति है। कितनी क्षुद्र अपेक्षाएं कितने विराट दुख को पैदा करती चली जाती हैं!

यह जो इतना बड़ा महाभारत हुआ, जानते हैं कितनी क्षुद्र-सी घटना से शुरू हुआ? इतना बड़ा यह युद्ध, यह इतनी-सी क्षुद्र घटना से शुरू हुआ! बहुत ही क्षुद्र घटना से, मजाक से, एक जोक। दुनिया के सभी युद्ध मजाक से शुरू होते हैं।

दुर्योधन आया है। और पांडवों ने एक मकान बनाया है। और अंधे के बेटे की वे मजाक कर रहे हैं। उसमें उन्होंने आईने लगाए हुए हैं। और इस तरह से लगाए हुए हैं कि दुर्योधन को, जहां दरवाजा नहीं है, वहां दरवाजा दिखाई पड़ जाता है; जहां पानी है, वहां पानी दिखाई नहीं पड़ता। उसका दीवार से सिर टकरा

जाता है, पानी में गिर पड़ता है। द्रौपदी हंसती है। वह हंसी सारे महाभारत के युद्ध का मूल है। उस हंसी का बदला फिर द्रौपदी को नंगा करके चुकाया जाता है। फिर यह बदला चलता है। बड़ी ही क्षुद्र-सी घटना, जस्ट ए जोक, एक मजाक, लेकिन बहुत महंगा पड़ा है। मजाक बढ़ता ही चला गया। फिर उसके कोई आर-पार न रहे और उसने इस पूरे मुल्क को मथ डाला।

एक स्त्री का हंसना! एक घर में चचेरे भाइयों की आपसी मजाक! कभी सोचा भी न होगा कि हंसी इतनी महंगी पड़ सकती है। लेकिन उन्हें पता नहीं कि दुर्योधन की भी अपेक्षाएं हैं। चोट अपेक्षाओं को लग गई। चोट अपेक्षाओं को लग गई। दुर्योधन ने सोचा भी नहीं था कि उस पर हंसा जाएगा-निमंत्रण देकर। उसने सोचा भी नहीं था कि उसका इस तरह मखौल और मजाक उड़ाया जाएगा। वह आया होगा सम्मान लेने; मिला मजाक। उपद्रव शुरू हो गया।

फिर उस उपद्रव के भयंकर परिणाम हुए। जिन परिणामों से मैं नहीं सोचता हूं कि आज तक भी भारत पूरी तरह मुक्त हो पाया है। वह महाभारत में जो घटित हुआ था, उसके परिणाम की प्रतिध्वनि आज भी भारत के प्राणों में चलती है।

जगत में बड़े छोटे-से, छोटे-से कारण सब कुछ करते हैं।

सकाम का हमें पता है, निष्काम का हमें कुछ पता नहीं है। निष्काम कृत्य को भी ठीक ऐसे ही समझें, इसकी उलटी दिशा में। जरा-सा निष्काम भाव, और बड़े-बड़े भय जीवन के दूर हो जाते हैं।

प्रश्न : क्या निष्काम भावना से हमारी प्रगति नहीं रुक जाती है?

पूछ रहे हैं कि निष्काम भावना से हमारी प्रगति नहीं रुक जाती है?

प्रगति का क्या मतलब होता है? अगर प्रगति से मतलब हो कि बहुत धन हो, बड़ा मकान हो, जायदाद हो, जमीन हो, तो शायद-तो शायद-थोड़ी रुकावट पड़ सकती है। लेकिन अगर प्रगति से अर्थ है, शांति हो, आनंद हो, प्रेम हो, जीवन में प्रकाश हो, ज्ञान हो, तो रुकावट नहीं पड़ती, बड़ी गति मिलती है। इसलिए आपकी प्रगति का क्या मतलब है, इस पर निर्भर करेगा।

प्रगति से आपका क्या मतलब है? अगर प्रगति से यही मतलब है जो बाहर इकट्ठा होता है, तब तो शायद थोड़ी बाधा पड़ सकती है। लेकिन बाहर सब कुछ भी मिल जाए-सारा जगत, सारी संपदा-और भीतर एक भी किरण शांति की न फूटे, तो मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हें शांति की एक किरण देने को राजी हो जाए और कहे कि छोड़ दो यह सब राज्य और यह सब धन और यह सब दौलत, तो तुम छोड़ पाओगे। छोड़ सकोगे। एक छोटी-सी शांति की लहर भी इस जगत के पूरे साम्राज्य के समतुल नहीं है।

लेकिन हम प्रगति से एक ही मतलब लेते हैं। लेकिन इसका यह भी मतलब नहीं है कि मैं ऐसा कह रहा हूं कि जो निष्काम कर्म में गति करेगा, अनिवार्य रूप से दीन और दरिद्र हो जाएगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। क्योंकि मन शांत हो, तो दरिद्र होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि शांत मन जिस दिशा में भी काम करेगा, ज्यादा कुशल होगा। धन भी कमाएगा, तो भी ज्यादा कुशल होगा। हां, एक फर्क पड़ेगा कि धन कमाने का अर्थ चोरी नहीं हो सकेगा। शांत मन के लिए धन कमाने का अर्थ धन कमाना ही होगा, चोरी नहीं। धन निर्मित करना होगा।

शांत मन हो, तो आदमी जो भी करेगा, कुशल हो जाता है। उसके मित्र ज्यादा होंगे, उसकी कुशलता ज्यादा होगी, उसके पास शक्ति ज्यादा होगी, समझ ज्यादा होगी। इसलिए ऐसा नहीं कह रहा हूं कि वैसा आदमी अनिवार्य रूप से दरिद्र होगा। भीतरी तो समृद्धि होगी ही, लेकिन भीतरी समृद्धि बाहरी समृद्धि को लाने का भी आधार बनती है, लेकिन गौण होगी। भीतरी समृद्धि के बचते, भीतरी समृद्धि के रहते हुए मिलती होगी-नाट एट दि कास्ट, कीमत न चुकानी पड़ती होगी भीतरी समृद्धि की-तो बाहरी समृद्धि भी आएगी। हां, सिर्फ उसी जगह बाधा पड़ेगी, जहां बाहरी समृद्धि कहेगी कि भीतरी शांति और आनंद खोओ, तो मैं मिल सकती हूं। तो वैसा निष्कामकर्मी कहेगा कि मत मिलो, यही तुम्हारी कृपा है। जाओ।

प्रगति का क्या अर्थ है, इस पर सब निर्भर करता है। अगर सिर्फ दौड़ना ही प्रगति है-कहीं भी दौड़ना, बिना कहीं पहुंचे-तब बात अलग है। लेकिन कहीं अगर पहुंचना प्रगति है, तो फिर बात बिलकुल अलग होगी। अगर आप यह कहते हों कि एक आदमी पागल है और हम उससे कहें कि तुम्हारे दिमाग का

इलाज किए देते हैं। और वह कहे, दिमाग का इलाज तो आप कर देंगे, लेकिन इससे मेरी प्रगति में बाधा तो नहीं पड़ेगी? क्योंकि अभी मैं जितनी तेजी से दौड़ता हूं, कोई दूसरा नहीं दौड़ पाता। हम कहेंगे, बाधा पड़ेगी। अभी तुम्हारी जैसी तेजी से कोई भी नहीं दौड़ पाता, लेकिन तुम इतनी तेजी से दौड़कर भी कहीं नहीं पहुंचते और धीमे चलने वाले लोग भी पहुंच जाते हैं। बस, इतना ही खयाल हो, तो बात समझ में आ सकती है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।। 41।।

हे अर्जुन, इस कल्याणमार्ग में निश्चयात्मक-बुद्धि एक ही है और अज्ञानी (सकामी) पुरुषों की बुद्धियां बहुत भेदों वाली अनंत होती हैं।

मनुष्य का मन एक हो सकता है, अनेक हो सकता है। मनुष्य का चित्त अखंड हो सकता है, खंड-खंड हो सकता है। मनुष्य की बुद्धि स्वविरोधी खंडों में बंटी हुई हो सकती है, विभाजित हो सकती है, अविभाजित भी हो सकती है। साधारणतः विषयी चित्त, इच्छाओं से भरे चित्त की अवस्था एक मन की नहीं होती है, अनेक मन की होती है; पोलीसाइकिक, बहुचित्त होते है। और ऐसा ही नहीं कि बहुचित्त होते हैं, एक चित्त के विपरीत दूसरा चित्त भी होता है।

मै कुछ दिन पहले दिल्ली में था। एक मित्र, बड़े शिक्षाशास्त्री हैं, किसी विश्वविद्यालय के पहले कुलपति थे, फिर अब और भी बड़े पद पर है। वे मुझसे पूछने आए कि हम शिक्षित तो कर रहे है लोगों को, लेकिन बेईमानी, झूठ, दगा, फरेब, सब बढ़ता चला जाता है! हम अपने बच्चों को बेईमानी, दगा, फरेब, झूठ से कैसे रोकें? तो मैने उनसे पूछा कि दूसरों के बच्चों की पहले छोड़ दें। क्योंकि दूसरों के बच्चों को दगा, फरेब से रोकने को कोई भी तैयार हो जाता है। मै आपके बच्चों की बात करना चाहता हूं। दूसरों के बच्चों को दगा, फरेब से रोकने में कौन सी कठिनाई है! दूसरे का बेटा संन्यासी हो जाए, तो सब मुहल्ले के लोग उसको स्वागत-धन्यवाद देने आते है। उनका बेटा हो, तब पता चलता है!

मैंने उनसे पूछा, दूसरों के बच्चों की बात छोड़ दें। आपके भी लड़के हैं! उन्होंने कहा, हैं। लेकिन वे कुछ डरे हुए मालूम पड़े, जैसे ही मैंने कहा कि आपके बच्चों की सीधी बात की जाए। मैंने उनसे पूछा कि मैं आपसे यह पूछता हूं, आप अपने बच्चों को दगा, फरेब, झूठ, खुशामद, बेईमानी-ये जो हजार बीमारियां इस समय मुल्क मे हैं-इन सब से छुटकारा दिलाना चाहते है? उन्होंने बड़े डरते से मन से कहा कि हां, दिलाना चाहता हूं। लेकिन मैने कहा, आप इतने कमजोर मन से कह रहे है हां, कि मै फिर से पूछता हूं, थोड़ी हिम्मत जुटाकर कहिए। उन्होने कहा कि नहीं-नहीं, मैं तो दिलाना ही चाहता हूं।

मैने कहा, लेकिन आप हिम्मत नहीं जुटाते। आप जितनी ताकत से पहले मुझसे बोले कि सब बर्बाद हुआ जा रहा है, हम मुल्कभर के बच्चो को कैसे ईमानदारी सिखाएं! उतने जोर से आप अब नहीं कहते। उन्होंने कहा कि आपने मेरा कमजोर हिस्सा छू दिया है। आपने मेरी नस पकड़ ली है। मैने कहा कि नस पकड़कर ही बात हो सकती है, अन्यथा तो कोई बात होती नहीं। इस मुल्क मे हर आदमी बिना नस पकड़े बात करता रहता है, तो कोई मतलब ही नहीं होता है। तो मैं नस ही पकड़ना चाहता हूं।

तो उन्होंने कहा कि नहीं, इतनी हिम्मत से तो नहीं कह सकता। मैने कहा, क्यों नहीं कह सकते? तो उन्होने कहा कि मै जानता हूं। इतना तो मै चाहता हूं कि जितने ऊंचे पद तक मैं उठा, कम से कम मेरा लड़का भी उठे। और यह भी मै जानता हूं कि अगर वह पूरा ईमानदार हो, नैतिक हो, तो नही उठ सकता। तो फिर मैंने कहा, दो मन है आपके। दो में से एक साफ तय करिए-या तो कहिए कि लड़का सड़क पर भीख मांगे, इसके लिए मै राजी हूं, लेकिन बेईमानी नहीं। और या फिर कहिए कि लड़का बेईमान हो, मुझे कोई मतलब नहीं; लड़का शिक्षा मंत्रालय में होना चाहिए। एजुकेशन मिनिस्ट्री में पहुंचे बिना हमें कोई चैन नहीं है। बेईमानी से हमें कोई मतलब नहीं। साफ बात कहिए। और नहीं तो आप अपने लड़के में भी डबल माइंड पैदा कर देंगे।

वह लड़का भी समझ जाएगा कि बाप चाहता है कि शिक्षामंत्री होने तक पहुंचो। और देखता है कि शिक्षामंत्री होने तक की यात्रा, सीढ़ी दर सीढ़ी बेईमानी

और चोरी की यात्रा है। दूसरी तरफ बाप कहता है कि ईमानदार बनो। और ईमानदार की इस जगत में हालत ठीक वैसी है, जैसी कि नाइबर ने एक किताब लिखी है, मारल मैन इन इम्मारल सोसाइटी-नैतिक आदमी अनैतिक समाज में। सड़क पर भीख मांगने की तैयारी होनी ही चाहिए। यद्यपि नैतिक होकर सड़क पर भीख मांगने में जितना आनंद है, उतना अनैतिक होकर सम्राट हो जाने में भी नही है। लेकिन वह दूसरी बात है।

ये दोनों बातें लड़के के दिमाग में होंगी, तो लड़के के दो मन हो जाएंगे। तब तो वह यही कर सकता है ज्यादा से ज्यादा, कि उसको कोई इंतजाम भीतरी करना पड़ेगा। कोई कोएलिशन गवर्नमेंट तो भीतर बनानी पड़ेगी न! इन सब उपद्रवी विरोधी तत्वों के बीच कोई तो समझौता करके, कोई संविद सरकार निर्मित करनी पड़ेगी! तो फिर यही होगा कि जब बाहर दिखाना हो तो ईमानदारी दिखाओ और जब भीतर करना हो तो बेईमानी करो। क्योंकि मंत्री के पद तक पहुंचना ही है और ईमानदारी बड़ी अच्छी चीज है, उसको भी दिखाना ही है।

चित्त हमारा बंट जाता है अनेक खंडो में, और विपरीत आकांक्षाएं एक साथ पकड़ लेती हैं। और अनंत इच्छाएं एक साथ जब मन को पकड़ती है, तो अनंत खंड हो जाते है। और एक ही साथ हम सब इच्छाओं को करते चले जाते है। एक आदमी कहता है, मुझे शांति चाहिए, और साथ ही कहता है, मुझे प्रतिष्ठा चाहिए। उसे कभी खयाल में नहीं आता कि वह क्या कह रहा है!

एक मित्र मेरे पास आए। आते ही से मुझसे बोले कि मैं अरविद आश्रम हो आया, रमण आश्रम हो आया, शिवानंद के आश्रम हो आया, सब आश्रम छान डाले, कहीं शांति नहीं मिलती है। अभी मैं पांडिचेरी से सीधा चला आ रहा हूं। किसी ने आपका नाम ले दिया, तो मैंने कहा आपके पास भी जाकर शांति-तो मुझे शांति दें।

तो मैंने कहा कि इसके पहले कि तुम मुझसे भी निराश होओ, एकदम उलटे लौटो और वापस हो जाओ। मैं तुम्हें शांति नहीं दूंगा। और तुम कुछ इस तरह कह रहे हो कि जैसे अरविंद आश्रम ने तुम्हें शांति देने का कोई ठेका ले रखा है। सब जगह हो आया, कहीं नहीं मिली! जैसे कि मिलना कोई आपका अधिकार था। बाहर हो जाओ दरवाजे के!

उन्होंने कहा, आप कैसे आदमी हैं! मैं शांति खोजने आया हूं। मैंने कहा, अशांति खोजने कहां गए थे? अशांति खोजने किस आश्रम में गए थे, यह मुझे पहले बता दो। कहा, कहीं नहीं गया था। तो मैने कहा, जब तुम अशांति तक पैदा करने में कुशल हो, तो शांति भी पैदा कर सकते हो। मेरी क्या जरूरत है? जिस रास्ते से अशांत हुए हो, उसी रास्ते से वापस लौट पड़ो तो शांत हो जाओगे। मै कहां आता हूं बीच मे? अशांति के वक्त मुझसे तुमने कोई सलाह न ली थी, शांति के वक्त तुम मुझसे सलाह लेने चले आए हो! मैने पूछा कि शांति की बात बंद। अगर मेरे पास रुकना है, तो अशांति की चर्चा करो कि अशांत कैसे हुए हो? क्या है अशांति, उसकी मुझसे बात करो। अशांति तुम्हारी स्पष्ट हो जाए, तो शांति पाना जरा भी कठिन नहीं है।

वे दो दिन मेरे पास थे। उनकी अशांति फिर धीरे-धीरे उन्होंने खोलनी शुरू की। वही थी, जो हम सब की है। एक ही लड़का है उनका। बहुत पैसा कमाया। ठेकेदारी थी। एक ही लड़का है। उस लड़के ने एक लड़की से शादी कर ली, जिससे वे नहीं चाहते थे कि शादी करे। तलवार लेकर खड़े हो गए दरवाजे पर- लाश बिछा दूंगा; बाहर निकल जाओ! लड़का बाहर निकल गया। अब मुसीबत है। अब मौत करीब आ रही है। अब किस मुंह से लड़के को वापस बुलाएं, तलवार दिखाकर निकाला था। और मौत पास आ रही है। और जिदगीभर जिस पैसे को हजार तरह की चोरी और बेईमानी से कमाया, उसका कोई मालिक भी नहीं रह जाता और हाथ से सब छूटा जा रहा है!

तो मैंने उनसे पूछा, वह लड़की खराब थी, जिसने तुम्हारे लड़के से शादी की है? उन्होंने कहा, नहीं, लड़की तो बिलकुल अच्छी है, लेकिन मेरी इच्छा के खिलाफ...।

तुम्हारी इच्छा से तुम शादी करो, तुम्हारा लड़का क्यो करने लगा? अशांत होने के रास्ते खड़े कर रहे हो। फिर जब उसने शादी अपनी इच्छा से की और तुमने उसे घर से बाहर निकाल दिया, तो अब परेशान क्यों हो रहे हो? बात समाप्त हो गई। उसने तो आकर नहीं कहा कि घर में वापस लो।

कहने लगे, यही तो अशांति है। वह एक दफा आकर माफी मांग ले, अंदर आ जाए।

नहीं मानी, ठीक है। जब उसने आपकी बात नहीं मानी, तो ठीक है। बात खतम हो गई। अब आप क्यों परेशान है ?

तो इस धन का क्या होगा ?

मैंने कहा, धन का सबके मर जाने के बाद क्या होता है ? और तुम्हे क्या फिक्र है ? तुम मर जाओगे, धन का जो होगा, वह होगा।

कहा कि नहीं, मेरे ही लड़के के पास मेरा धन होना चाहिए। तो मैने कहा, फिर मेरे लड़के के पास मेरी ही पसंद की औरत होनी चाहिए, यह खयाल छोड़ो। तुम्हारा लड़का धन छोड़ने को राजी है अपने प्रेम के लिए, तुम भी कुछ छोड़ने को राजी होओ।

दो दिन मेरे पास थे, सारी बात हुई। देखा कि सब हजार तरह की उलटी-सीधी इच्छाएं मन को पकड़े हुए है, तो चित्त अशात हो गया है। हम सब का मन ऐसा ही अशांत है।

कृष्ण कह रहे है कि विषय-आसक्त चित्त-चूंकि विषय बहुत विपरीत है-एक ही साथ विपरीत विषयो की आकांक्षा करके विक्षिप्त होता रहता है और खंड-खंड मे टूट जाता है। जो व्यक्ति निष्काम कर्म की तरफ यात्रा करता है, अनिवार्यरूपेण-क्योकि कामना गिरती है, तो कामना से बने हुए खंड गिरते है। जो व्यक्ति अपेक्षारहित जीवन मे प्रवेश करता है, चूंकि अपेक्षा गिरती है, इसलिए अपेक्षाओ से निर्मित खंड गिरते है। उसके भीतर एकचित्तता, यूनिसाइकिकनेस, उसके भीतर एक मन पैदा होना शुरू होता है।

और जहां एक मन है, वहां जीवन का सब कुछ है-शांति भी, सुख भी, आनंद भी। जहां एक मन है, वहां सब कुछ है-शक्ति भी, संगीत भी, सौदर्य भी। जहां एक मन है, उस एक मन के पीछे जीवन मे जो भी है, वह सब चला आता है। और जहां अनेक मन है, तो पास मे भी जो है, वह भी सब बिखर जाता है और खो जाता है। लेकिन हम सब पारे की तरह है-खंड-खंड, टूटे हुए, बिखरे हुए। खुद ही इतने खंडो मे टूटे है, कि कैसे शांति हो सकती है!

जोसुआ लिएबमेन ने अपने संस्मरण लिखे है। संस्मरण की किताब को

जो नाम दि'ा है, वह बहुत अच्छा है। और किताब के पहले ही हिस्से में उसने जो उल्लेख किया है, वह कीमती है। कहा कि जवान था, विश्वविद्यालय से पढ़कर लौटा था, तो मेरे मन में हुआ कि अब जीवन का एक नक्शा बना लूं कि जीवन में क्या-क्या पाना है! स्वभावतः, जीवन का एक नक्शा हो, तो जीवन को सुव्यवस्थित चलाया जा सके।

तो उसने एक फेहरिस्त बनाई। उस फेहरिस्त में लिखा कि धन चाहिए, सुंदर पत्नी चाहिए, यश चाहिए, सम्मान चाहिए, सदाचार चाहिए...। कोई बीस-बाइस बातों की फेहरिस्त तैयार की। उसमें सब आ गया, जो आदमी चाह सकता है। जो भी चाह चाह सकती है, वह सब आ गया। जो भी विषय की मांग हो सकती है, वह सब आ गया। जो भी कामना निर्मित कर सकती है, वे सब सपने आ गए। पर न मालूम, पूरी फेहरिस्त को बार-बार पढ़ता है, कि इसमें और कुछ तो नहीं जोड़ा जाना है; क्योंकि वह जीवनभर का नक्शा बनाना है।

सब खोज लेता है, कुछ जोड़ने को बचता नहीं। सब आ गया, फिर भी, समथिंग इज़ मिसिंग। कुछ ऐसा लगता है कि कोई कड़ी खो रही है। क्यो लगता है ऐसा? क्योंकि रात सोते वक्त उसने सोचा कि मै देखूं कि सब मुझे समझ लो कि मिल गया, जो-जो मैने फेहरिस्त पर लिखा है, सब मिल गया-हो जाएगा सब ठीक? तो मन खाली-खाली लगता है। मन में ऐसा उत्तर नहीं आता आश्वासन से भरा, निश्चय से भरा, कि हां, यह सब मिल जाए, जो फेहरिस्त पर लिखा है, तो बस, सब मिल जाएगा। नहीं, ऐसा निश्चय नहीं आता; ऐसी निश्चयात्मक लहर नहीं आती भीतर।

तो गांव में एक बूढ़े फकीर के पास वह गया। उसने कहा कि इस गांव में सबसे ज्यादा बूढ़े तुम हो, सबसे ज्यादा जिंदगी तुमने देखी है। और तुमने जिंदगी गृहस्थ की ही नहीं देखी, संन्यासी की भी देखी है। तुमसे बड़ा अनुभवी कोई भी नहीं है। तो मैं यह फेहरिस्त लाया हूं, जरा इसमें कुछ जोड़ना हो तो बता दो।

उस बूढ़े ने पूरी फेहरिस्त पढ़ी, फिर वह हंसा और उसने कलम उठाकर वह पूरी फेहरिस्त काट दी। और पूरी फेहरिस्त के ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में तीन शब्द लिख दिए, पीस आफ माइंड, मन की शांति। उसने कहा, बाकी ये सब तुम

फिक्र छोड़ो; तुम यह एक चीज पा लो, तो यह बाकी सब मिल सकता है। और यदि तुमने बाकी सब भी पा लिया, तो भी ये जो तीन शब्द मैंने लिखे, ये तुम्हें कभी मिलने वाले नहीं हैं। और आखिर में निर्णय यही होगा कि यह पीस आफ माइंड, यह मन की शांति मिली या नहीं!

तो लिएबमेन ने अपनी आत्मकथा लिखी है, उसको नाम दिया है, पीस आफ माइंड। किताब को नाम दिया, मन की शांति। और लिखा कि उस दिन तो मुझे लगा कि यह बूढ़े ने सब फेहरिस्त खराब कर दी। कितनी मेहनत से बनाकर लाया हूं और इस आदमी ने सब काट-पीट कर दिया। जंची नहीं बात कुछ उसकी। लेकिन जिंदगी के अंत में लिएबमेन कहता है कि आज मै जानता हूं कि उस बूढ़े ने फेहरिस्त काटी थी, तो ठीक ही किया था। उसने फाड़कर क्यों न फेंक दी! बेकार। आज जीवन के अंत में वे ही तीन शब्द पास घूम रहे हैं। काश, उस दिन मैं समझ जाता कि मन की शांति ही सब कुछ है, तो शायद आज तक पाया भी जा सकता था। लेकिन जिंदगी उसी फेहरिस्त को पूरा करने में बीत जाती है सबकी।

कृष्ण कह रहे हैं, यह जो विषयों की दौड़ है चित्त की, यह सिर्फ अशांति को...। अशांति का अर्थ ही सिर्फ एक है, बहुत-बहुत दिशाओं में दौड़ता हुआ मन, अर्थात अशांति। न दौड़ता हुआ मन, अर्थात शांति। कृष्ण कहते हैं, निष्काम कर्म की जो भाव-दशा है, वह एक मन और शांति को पैदा करती है। और जहां एक मन है, वहीं निश्चयात्मक बुद्धि है, दि डेफिनीटिव इंटलेक्ट, दि डेफिनीटिव इंटेलिजेंस।

इसको आखिरी बात समझ लें। तो जहां एक मन है, वहां अनिश्चय नहीं है। अनिश्चय होगा कहां? अनिश्चय के लिए कम से कम दो मन चाहिए। जहां एक मन है, वहां निश्चय है।

इसलिए आमतौर से आदमी लेकिन क्या करता है? वह कहता है कि निश्चयात्मक बुद्धि चाहिए, तो वह कहता है, जोड़-तोड़ करके निश्चय कर लो। दबा दो मन को और छाती पर बैठ जाओ, और निश्चय कर लो कि बस, निश्चय कर लिया। लेकिन जब वह निश्चय कर रहा है जोर से, तभी उसको पता है कि भीतर विपरीत स्वर कह रहे हैं कि यह तुम क्या कर रहे हो? यह ठीक नहीं है। वह आदमी कसम ले रहा है कि ब्रह्मचर्य साधूंगा, निश्चब करता हूं। लेकिन निश्चय किसके खिलाफ कर रहे हो? जिसके खिलाफ निश्चय कर रहे हो, वह भीतर बैठा है।

मैं एक बूढ़े आदमी से मिला। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि मैंने अपनी जिंदगी में तीन बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है। तो मैंने पूछा कि चौथी बार क्यों नहीं लिया? बूढ़ा आदमी ईमानदार था। बूढ़े आदमी कम ही ईमानदार होते हैं, क्योंकि जिंदगी इतनी बेईमानी सिखा देती है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। बच्चे साधारणतः ईमानदार होते हैं। बेईमान बच्चा खोजना मुश्किल है। बूढ़े साधारणतः बेईमान होते हैं। ईमानदार बूढ़ा खोजना मुश्किल है।

पर वह बूढ़ा ईमानदार आदमी था। उसने कहा कि आप ठीक कहते हैं। आप ठीक कहते हैं, मैंने चौथी बार इसीलिए नहीं लिया कि तीन बार की असफलता ने हिम्मत ही तुड़वा दी। फिर हिम्मत भी नहीं रही कि चौथी बार ले सकूं। पर मैंने कहा, तुमने व्रत किसके खिलाफ लिया था? अपने ही खिलाफ कहीं व्रत पूरे होते हैं? जब तुमने व्रत लिया था, तब तुम्हारा पूरा मन राजी था? उसने कहा, पूरा ही मन राजी होता तो फिर क्या था! मेजारिटी माइंड से लिया था, बहुमत से लिया था।

मन कोई पार्लियामेंट नहीं है कि जिसमें आप बहुमत से पक्ष ले। मन कोई पार्लियामेंट नहीं है, कोई संसद नहीं है। और अगर संसद भी है, तो वैसी ही संसद है, जैसी दिल्ली में है। उसमें कुछ पक्का नहीं है कि जो अभी आपके पक्ष में गवाही दे रहा था, वह दो दिन बाद विपक्ष में गवाही देगा; उसका कुछ पक्का नहीं है। आप रातभर सोकर सुबह उठोगे और पाओगे कि माइनारिटी में हो; मेजारिटी हाथ से खिसक गई है।

कृष्ण कुछ और बात कह रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम निश्चय करो। वे यह कह रहे है, जो निष्काम कर्म की यात्रा पर निकलता है, उसे निश्चयात्मक बुद्धि उपलब्ध हो जाती है; क्योंकि उसके पास एक ही मन रह जाता है। विषयों में जो भटकता नहीं, जो अपेक्षा नहीं करता, जो कामना की व्यर्थता को समझ लेता है, जो भविष्य के लिए आतुरता से फल की मांग नहीं करता, जो क्षण में और वर्तमान में जीता है-वैसे व्यक्ति को एक मन उपलब्ध होता है। एक मन निश्चयात्मक हो जाता है, उसे करना नहीं पड़ता।

शेष कल सुबह बात करेंगे।

•••

तेरहवां प्रवचन

काम, द्वंद्व और शास्त्र से-निष्काम, निर्द्वंद्व और स्वानुभव की ओर

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।। 42।।
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।। 43।।

हे अर्जुन, जो सकामी पुरुष केवल फल श्रुति में प्रीति रखने वाले, स्वर्ग को ही परम श्रेष्ठ मानने वाले, इससे बढ़कर कुछ नहीं है-ऐसे कहने वाले हैं, वे अविवेकीजन जन्मरूप कर्मफल को देने वाली और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत-सी क्रियाओं के विस्तार वाली इस प्रकार की जिस दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहते हैं।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। 44।।

उस वाणी द्वारा हरे हुए चित्त वाले, तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति वाले, उन पुरुषों के अंतःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि नही होती है।

कर्मयोग की बात करते हुए कृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि वे सारे लोग, जो सुख, कामना, विषय और वासना से उत्प्रेरित है, जो स्वर्ग से ऊपर जगत मे कुछ भी नहीं देख पाते है, जिनका धार्मिक चिंतन, मनन और अध्ययन भी विषय-प्रेरित ही होता है, जो संसार में तो सुख की मांग करते ही है, जो परलोक में भी सुख की ही मांग किए चले जाते हैं, जिनके परलोक की दृष्टि भी वासना का ही विस्तार है, ऐसे व्यक्ति निष्काम-कर्म की गहराई को समझने में असमर्थ है।

कर्मयोग को अगर एक संक्षिप्त से गणित के सूत्र में कहे, तो कहना होगा, कर्म - कामना = कर्मयोग। जहां कर्म से कामना ऋण कर दी जाती है, तब जो शेष रह जाता है, वही कर्मयोग है। लेकिन कामना को शेष करने का अर्थ केवल सांसारिक कामना को शेष कर देना नहीं है, कामना मात्र को शेष कर देना है। इस बात को थोड़ा गहरे में समझ लेना जरूरी है।

संसार की कामना को शेष कर देना बहुत कठिन नही है, कामना मात्र को शेष करना असली तपश्चर्या है। संसार की कामना तो शेष की जा सकती है। अगर परलोक की कामना का प्रलोभन दिया जाए, तो संसार की कामना छोड़ने में कोई भी कठिनाई नहीं है। अगर किसी से कहा जाए, इस पृथ्वी पर धन छोड़ो, क्योकि परलोक मे, यहां जो थोड़ा छोड़ता है, बहुत पाता है। तो उस थोड़े को छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। वह बार्गेन है, वह सौदा है। हम सभी छोड़ते है, पाने के लिए हम सभी छोड़ते हैं। पाने के लिए कुछ भी छोड़ा जा सकता है।

लेकिन पाने के लिए जो छोड़ना है, वह निष्काम नहीं है। वह पाना चाहे परलोक में हो, वह पाना चाहे भविष्य में हो, वह पाना चाहे धर्म के सिक्कों में हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है। पाने की आकांक्षा को आधार बनाकर जो छोड़ना है, वही कामना है, वही कामग्रस्त चित्त है। वैसा चित्त कर्मयोग को उपलब्ध नहीं होता।

यहां कहा जाए पृथ्वी पर स्त्रियों को छोड़ दो, क्योंकि स्वर्ग में अप्सराएं उपलब्ध हैं, यहां कहा जाए पृथ्वी पर शराब छोड़ दो, क्योंकि बहिश्त में शराब के चश्मे बह रहे हैं, तो इस छोड़ने में कोई भी छोड़ना नहीं है। यह केवल कामना को नए रूप में, नए लोक में, नए आयाम में पुनः पकड़ लेना है। यह प्रलोभन ही है।

इसलिए जो व्यक्ति भी, कहीं भी, किसी भी रूप में पाने की आकांक्षा से कुछ करता है, वह कर्मयोग को उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्मयोग का मौलिक आधार, कामनारहित, फल की कामनारहित कर्म है। कठिन है बहुत। क्योंकि साधारणतः हम सोचेंगे कि फिर कर्म होगा ही कैसे? हम तो कर्म करते ही इसलिए है कि कुछ पाने को है, कोई लक्ष्य, कोई फल। हम तो चलते ही इसलिए हैं कि कहीं पहुंचने को है। हम तो श्वास भी इसीलिए लेते हैं कि पीछे कुछ होने को है। अगर पता चले कि नहीं, आगे की कोई कामना नहीं, तब तो फिर हम हिलेंगे भी नही, करेंगे भी नहीं। कर्म होगा कैसे?

गीता के संबंध में और कृष्ण के संदेश के संबंध में जिन लोगों ने भी चिंतन किया है, उनके लिए जो बड़े से बड़ा मनोवैज्ञानिक सवाल है, उलझाव है, वह यही है कि कृष्ण कहते है, कर्म वासनारहित, कामनारहित! तो कर्म होगा कैसे? क्योंकि कर्म का मोटिवेशन, कर्म की प्रेरणा कहां से उत्पन्न होती है? कर्म की प्रेरणा तो कामना से ही उत्पन्न होती है। कुछ हम चाहते हैं, इसलिए कुछ हम करते हैं। चाह पहले, करना पीछे। विषय पहले, कर्म पीछे। आकांक्षा पहले, फिर छाया की तरह हमारा कर्म आता है। अगर हम छोड़ दें चाहना, डिजायर, इच्छा, विषय, तो कर्म आएगा कैसे? मोटिवेशन नहीं होगा।

अगर हम पश्चिम के मनोविज्ञान से भी पूछें-जो कि मोटिवेशन पर बहुत काम कर रहा है-कर्म की प्रेरणा क्या है? तो पश्चिम के पूरे मनोवैज्ञानिक एक स्वर से कहते हैं कि बिना कामना के कर्म नहीं हो सकता है।

कृष्ण का मनोविज्ञान आधुनिक मनोविज्ञान से बिलकुल उलटी बात कह रहा है। वे यह कह रहे हैं कि कर्म जब तक कामना से बंधा है, तब तक सिवाय दुख और अंधकार के कहीं भी नहीं ले जाता है। जिस दिन कर्म कामना से मुक्त

होता है-परलोक की कामना से भी, स्वर्ग की कामना से भी-जिस दिन कर्म शुद्ध होता है, प्योर एक्ट हो जाता है, जिसमें कोई चाह की जरा भी अशुद्धि नहीं होती, उस दिन ही कर्म निष्काम है और योग बन जाता है।

और वैसा कर्म स्वयं में मुक्ति है। वैसे कर्म के लिए किसी मोक्ष की आगे कोई जरूरत नहीं है। वैसे कर्म का कोई मोक्ष भविष्य में नहीं है। वैसा कर्म अभी और यहीं, हियर एंड नाउ मुक्ति है। वैसा कर्म मुक्ति है। वैसे कर्म का मुक्ति फल नहीं है, वैसे कर्म की निजता ही मुक्ति है।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि आगे बार-बार, उसके इर्द-गिर्द बात घूमेगी। और कृष्ण के संदेश की बुनियाद में वह बात छिपी है। क्या कर्म हो सकता है बिना कामना के? क्या बिना चाह के हम कुछ कर सकते हैं? तो फिर प्रेरणा कहां से उपलब्ध होगी? वह स्रोत कहां से आएगा, वह शक्ति कहां से आएगी, जो हमें खींचे और कर्म में संयुक्त करे?

जिस जगत में हम जीते हैं और जिस कर्मो के जाल से हम अब तक परिचित रहे है, उसमें शायद ही एकाध ऐसा कर्म हो जो अनमोटिवेटेड हो-शायद ही। अगर कभी ऐसा कोई कर्म भी दिखाई पड़ता हो, जो अनमोटिवेटेड मालूम होता है, जिसमें आगे कोई मोटिव, जिसमें आगे कोई पाने की आकांक्षा नहीं होती, उसमें भी थोड़ा भीतर खोजेंगे, तो मिल जाएगी।

रास्ते पर आप चल रहे हैं। आपके आगे कोई है, उसका छाता गिर गया। आप उठाकर दे देते है-अनमोटिवेटेड। उठाते वक्त आप यह भी नहीं सोचते कि क्या फल, क्या उपलब्धि, क्या मिलेगा? नहीं, यह सोच नहीं होता। छाता गिरा, आपने उठाया, दे दिया। दिखाई पड़ता है, अनमोटिवेटेड है। क्योंकि न घर से सोचकर चले थे कि किसी का छाता गिरेगा, तो उठाएंगे। छाता गिरा, उसके एक क्षण पहले तक छाता उठाने की कोई भी योजना मन में न थी। छाता गिरने और छाता उठाने के बीच भी कोई चाह दिखाई नहीं पड़ती है।

लेकिन फिर भी, मनोविज्ञान कहेगा, अनकांशस मोटिवेशन है। अगर छाता देने के बाद वह आदमी धन्यवाद न दे, तो दुख होगा। छाता दबा ले और

चल पड़े, तो आप चौकन्ने से खड़े रह जाएंगे कि कैसा आदमी है, धन्यवाद भी नहीं! अगर पीछे इतना भी स्मरण आता है कि कैसा आदमी है, धन्यवाद भी नहीं! तो मोटिवेशन हो गया। सचेतन नहीं था, आपने सोचा नहीं था, लेकिन मन के किसी गहरे तल पर छिपा था। अब पीछे से हम कह सकते हैं कि धन्यवाद पाने के लिए छाता उठाया? आप कहेंगे, नहीं, धन्यवाद का तो कोई विचार ही न था; यह तो पीछे पता चला।

लेकिन जो नहीं था, वह पीछे भी पता नहीं चल सकता है। जो बीज में न छिपा हो, वह प्रकट भी नहीं हो सकता है। जो अव्यक्त न रहा हो, वह व्यक्त भी नहीं हो सकता है। कहीं छिपा था, किसी अनकांशस, किसी अचेतन के तल पर दबा था, राह देखता था। नहीं, सचेतन कोई कामना नहीं थी, लेकिन अचेतन कामना थी।

जीवन में ऐसे कुछ क्षण हमें मालूम पड़ते हैं, जहां लगता है, अनमोटिवेटेड, निष्काम कोई कृत्य घटित हो गया है। लेकिन उसे भी पीछे से लौटकर देखें, तो लगता है, कामना कहीं छिपी थी। इसलिए पश्चिम का मनोविज्ञान कहेगा कि चाहे दिखाई पड़े और चाहे न दिखाई पड़े, जहां भी कर्म है, वहां कामना है; इतना ही फर्क हो सकता है कि वह चेतन है या अचेतन है।

लेकिन कृष्ण कहते है, ऐसा कर्म हो सकता है, जहां कामना नहीं हो। यह वक्तव्य बहुत महत्वपूर्ण है। इसे समझने के लिए दो-चार ओर से हम यात्रा करेंगे। एक छोटी-सी कहानी से आपको कहना चाहूंगा। क्योंकि जो हमारी जिंदगी में परिचित नहीं है, उसे हमें किसी और की जिंदगी में झांकना पड़े। और हमारी जिंदगो ही इति नहीं है। हमें किसी और जिंदगी मे झांकना पड़े, देखना पड़े कि क्या यह संभव है? इज़ इट पासिबल? पहले तो यही देख लें कि क्या यह संभव है? अगर संभावना दिखाई पड़े, तो शायद कल सत्य भी हो सकती है।

अकबर एक दिन तानसेन को कहा है, तुम्हारे संगीत को सुनता हूं, तो मन में ऐसा खयाल उठता है कि तुम जैसा बजाने वाला शायद ही पृथ्वी पर हो! आगे भी कभी होगा, यह भी भरोसा नहीं आता। क्योंकि इससे ऊंचाई और क्या हो सकेगी, इसकी धारणा भी नहीं बनती है। तुम शिखर हो। लेकिन कल रात जब

तुम्हें विदा किया था, सोने गया था, तो मुझे खयाल आया, हो सकता है, तुमने भी किसी से सीखा हो, कोई तुम्हारा गुरु हो। तो मैं आज तुमसे पूछता हूं कि तुम्हारा कोई गुरु है? तुमने किसी से सीखा है?

तो तानसेन ने कहा, मै कुछ भी नहीं हूं गुरु के सामने; जिससे सीखा है, उसके चरणों की धूल भी नहीं हूं। इसलिए वह खयाल मन से छोड़ दें। शिखर! भूमि पर भीं नहीं हूं। लेकिन आपने मुझे ही जाना है, इसलिए आपको शिखर मालूम पड़ता हूं। ऊंट जब पहाड़ के करीब आता है, तब उसे पता चलता है, अन्यथा वह पहाड़ होता ही है। पर, तानसेन ने कहा कि मै गुरु के चरणों में बैठा हूं; मै कुछ भी नहीं हूं। कभी उनके चरणों मे बैठने की योग्यता भी हो जाए, तो समझूंगा बहुत कुछ पा लिया।

तो अकबर ने कहा, तुम्हारे गुरु जीवित हो तो तत्क्षण, अभी और आज उन्हे ले आओ, मै सुनना चाहूंगा। पर तानसेन ने कहा, यही कठिनाई है। जीवित वे है, लेकिन उन्हें लाया नही जा सकता।

अकबर ने कहा, जो भी भेंट करनी हो, तैयारी है। जो भी! जो भी इच्छा हो, देगे। तुम जो कहो, वही देगे। तानसेन ने कहा, वही कठिनाई है, क्योंकि उन्हे कुछ लेने को राजी नहीं किया जा सकता। क्योकि वह कुछ लेने का प्रश्न ही नही है। अकबर ने कहा, कुछ लेने का प्रश्न नही है! तो क्या उपाय किया जाए? तानसेन ने कहा, कोई उपाय नहीं, आपको ही चलना पड़े। तो उन्होंने कहा, मै अभी चलने को तैयार हूं। तानसेन ने कहा, अभी चलने से तो कोई सार नहीं है। क्योंकि कहने से वे बजाएंगे, ऐसा नहीं है। जब वे बजाते है, तब कोई सुन ले, बात और है। तो मै पता लगाता हूं कि वे कब बजाते है। तब हम चलेगे।

पता चला-हरिदास फकीर उसके गुरु थे, यमुना के किनारे रहते थे-पता चला, रात तीन बजे उठकर वे बजाते है, नाचते हैं। तो शायद ही दुनिया के किसी अकबर की हैसियत के सम्राट ने तीन बजे रात चोरी से किसी संगीतज्ञ को सुना हो। अकबर और तानसेन चोरी से झोपड़ी के बाहर ठंडी रात में छिपकर बैठे रहे। पूरे समय अकबर की आंखों से आंसू बहते रहे। एक शब्द बोला नहीं।

संगीत बंद हुआ। वापस होने लगे। सुबह फूटने लगी। राह में भी तानसेन से अकबर बोला नहीं। महल के द्वार पर तानसेन से इतना ही कहा, अब तक सोचता था कि तुम जैसा कोई भी नहीं बजा सकता। अब सोचता हूं कि तुम हो कहां! लेकिन क्या बात है? तुम अपने गुरु जैसा क्यों नहीं बजा सकते हो?

तानसेन ने कहा, बात तो बहुत साफ है। मैं कुछ पाने के लिए बजाता हूं, और मेरे गुरु ने कुछ पा लिया है, इसलिए बजाते हैं। मेरे बजाने के आगे कुछ लक्ष्य है, जो मुझे मिले, उसमें मेरे प्राण हैं। इसलिए बजाने में मेरे प्राण पूरे कभी नहीं हो सकते। बजाने में मैं सदा अधूरा हूं, अंश हूं। अगर बिना बजाए भी मुझे वह मिल जाए जो बजाने से मिलता है, तो बजाने को फेंककर उसे पा लूंगा। बजाना मेरे लिए साधन है, साध्य नहीं है। साध्य कहीं और है-भविष्य में, धन में, यश में, प्रतिष्ठा में-साध्य कहीं और है, संगीत सिर्फ साधन है। साधन कभी आत्मा नहीं बन पाती; साध्य में ही आत्मा अटकी होती है। अगर साध्य बिना साधन के मिल जाए, तो साधन को छोड़ दूं अभी। लेकिन नहीं मिलता साधन के बिना, इसलिए साधन को खींचता हूं। लेकिन दृष्टि और प्राण और आकांक्षा और सब घूमता है साध्य के निकट। लेकिन जिनको आप सुनकर आ रहे हैं, संगीत उनके लिए कुछ पाने का साधन नहीं है। आगे कुछ भी नहीं है, जिसे पाने को वे बजा रहे हैं। बल्कि पीछे कुछ है, जिससे उनका संगीत फूट रहा है और बज रहा है। कुछ पा लिया है, कुछ भर गया है, वह बह रहा है। कोई अनुभूति, कोई सत्य, कोई परमात्मा प्राणों में भर गया है। अब वह बह रहा है, ओवर फ्लोइंग है।

अकबर बार-बार पूछने लगा, किसलिए? किसलिए?

स्वभावतः, हम भी पूछते हैं, किसलिए? पर तानसेन ने कहा, नदियां किसलिए बह रही हैं? फूल किसलिए खिल रहे हैं? सूर्य किसलिए निकल रहा है?

किसलिए, मनुष्य की बुद्धि ने पैदा किया है। सारा जगत ओवर फ्लोइंग है, आदमी को छोड़कर। सारा जगत आगे के लिए नहीं जी रहा है, सारा जगत भीतर से जी रहा है। फूल खिल रहा है, खिलने में ही आनंद है। सूर्य निकल रहा है, निकलने में ही आनंद है। हवाएं बह रही हैं, बहने में ही आनंद है। आकाश है, होने में ही आनंद है। आनंद आगे नहीं, अभी है, यहीं है।

और जो हो रहा है, वह भीतर की ऊर्जा से अकारण बहाव है-अनमोटिवेटेड एक्ट। जिस पर कि कृष्ण का सारा कर्मयोग खड़ा होगा। वह जीवन को भविष्य की तरफ से पकड़ना नहीं, वह जीवन को आकांक्षा की तरफ से खींचना नहीं, वरन व्यक्ति के भीतर छिपा जो अव्यक्त है, उसकी ओवर फ्लोइंग, उसका ऊपर से बह जाना है। कृत्य, जिस दिन आपके जीवन-ऊर्जा की ओवर फ्लोइंग है, ऊपर से बह जाना है, उस दिन निष्काम है। और जब तक भविष्य के लिए किसी कारण से बहना है, तब तक सकाम है। सकाम कर्म योग नहीं है, निष्काम कर्म योग है।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि वह कामना भविष्य की, स्वर्ग की, मोक्ष की, परमात्मा की-इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर एक व्यक्ति मंदिर में भजन गा रहा है, और इस भजन में भी इतनी कामना है कि ईश्वर को पा लूं, तो यह भजन व्यर्थ हो गया, यह भजन योग न रहा। ईश्वर को पाने की कामना भी कामना ही है। और कामना से कभी ईश्वर पाया नहीं जाता। ईश्वर तो निष्कामना में उपलब्ध है। अगर भजन में इतनी भी कामना है कि ईश्वर को पा लूं, तो भजन व्यर्थ हुआ। अगर प्रार्थना में इतनी भी मांग है कि तेरे दर्शन हो जाएं, तो प्रार्थना व्यर्थ हो गई।

लेकिन प्रार्थना अनमोटिवेटेड है; नहीं किसी को पाने के लिए, वरन भीतर के भाव से जन्मी है और अपने में पूरी है, अपने में पूरी है-आगे कुछ द्वार नहीं खोज रही है-तो प्रार्थना है। और उसी क्षण में प्रार्थना सफल है, जिस क्षण प्रार्थना निष्काम है। प्रत्येक कर्म प्रार्थना बन जाता है, अगर निष्काम बन जाए। और प्रत्येक प्रार्थना बंधन बन जाती है, अगर सकाम बन जाए।

लेकिन हम जैसे दुकान चलाते हैं, वैसे ही पूजा भी करते है। दुकान भी मोटिवेटेड होती है, पूजा भी। दुकान में भी कुछ पाने को होता है, पूजा में भी। पाप भी करते है, तो भी कुछ पाने को करते हैं। पुण्य भी करते है, तो कुछ पाने को करते हैं। और कृष्ण कह रहे हैं कि पाने के लिए करना ही अधर्म है। पाने की आकांक्षा के बिना जो कृत्य का फूल खिलता है-दि फ्लावरिंग आफ दि प्योर एक्ट-शुद्ध कर्म जब खिलता है बिना किसी कारण के.. ।

इस संबंध में इमेनुअल कांट का नाम लेना जरूरी है। जर्मनी में कांट ने करीब-करीब कृष्ण से मिलती-जुलती बात कही है। उसने कहा कि अगर कर्तव्य में जरा-सी भी आकांक्षा है, तो कर्तव्य पाप हो गया। जरा-सी भी! कर्तव्य तभी कर्तव्य है, जब बिलकुल शुद्ध है, उसमें कोई आकांक्षा नहीं है।

यह हमें कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमारी जिंदगी में ऐसा कोई कर्म नहीं है, जिससे हमारी पहचान हो, जिससे हम समझ पाएं। लेकिन ऐसे कर्म के लिए द्वार खोले जा सकते हैं।

मैंने कहा, रास्ते पर एक आदमी है, उसका छाता गिर गया है। आप छाता उठाएं, दे दें, और छाता उठाकर देते समय भीतर देखते रहें कि कोई मांग तो नहीं उठती है! सिर्फ देखते रहें। छाता उठाकर दें और अपने रास्ते पर चल पड़ें और भीतर देखते रहें कि कोई मांग तो नहीं उठती धन्यवाद की भी! उठेगी; लेकिन देखते रहें, दो-चार कृत्यों में देखते रहें और अचानक पाएंगे, क्या पागलपन है! गिर जाएगी।

दिन में जो आदमी एक कृत्य भी अनमोटिवेटेड कर ले, वह कृष्ण की गीता को समझ पा सकता है। एक कृत्य भी चौबीस घंटे मे अनमोटिवेटेड कर ले, जिसमें कि कुछ न हो, चेतन-अचेतन कोई मांग न हो-बस किया और हट गए और चले गए-तो कृष्ण की गीता को, और कृष्ण के कर्मयोग को समझने का मार्ग खुल जाएगा। रोज गीता न पढ़ें, चलेगा। लेकिन एक कृत्य चौबीस घंटे मे ऐसा खिल जाए, जिसमें हमारी कोई भी कामना नहीं है; बस, जिसमें करना ही पर्याप्त है और हम बाहर हो गए और चल पड़े।

कठिन नहीं है। अगर थोड़ी खोज-बीन करें, तो बहुत कठिन नहीं है। छोटी-छोटी, छोटी-छोटी घटनाओं में उसकी झलक मिल सकती है।

और यह जो कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं, वह पूरा का पूरा प्रयोगात्मक है। होगा ही। यह कोई गुरुकुल में बैठकर, किसी वृक्ष के तले, किसी आश्रम में हुई चर्चा नहीं है। यह युद्ध के स्थल पर, जहां सघन कर्म प्रतीक्षा कर रहा है, वहां हुई चर्चा है। यह चर्चा किसी शांत वट-वृक्ष के नीचे बैठकर कोई तत्व-चर्चा नहीं है,

यह कोरी तत्व-चर्चा नहीं है। यह सघन कर्म के बीच, ठीक युद्ध के क्षण में-युद्ध से ज्यादा सघन कृत्य और क्या होगा-वहां हुई यह चर्चा है। और अर्जुन से कृष्ण कह रहे हैं कि अगर स्वर्ग तक की भी कामना मन में है-किसी भी विषय की-तो सब व्यर्थ हो जाता है।

कर्मयोग का सार, कर्म ऋण कामना है। काम से कामना गई...।

हमने तो काम शब्द ही रखा हुआ है कर्म के लिए। क्योंकि काम कामना से ही बनता है। हम तो कहते हैं, काम वही है, जो कामना से चलता है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, काम से अगर कामना घट जाए तो कर्मयोग। तो फिर साधारण कर्म नहीं रह जाता है वह, योग बन जाता है। और योग बन जाए, तो न पाप है, न पुण्य है; न बंधन है, न मुक्ति है-दोनों के बाहर है व्यक्ति।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। 45।।

हे अर्जुन, सब वेद तीनों गुणों के कार्य रूप संसार को विषय करने वाले, अर्थात प्रकाश करने वाले हैं,

इसलिए तू असंसारी, अर्थात निष्कामी और सुख-दुःखादि द्वंद्वों से रहित, नित्य वस्तु में स्थित तथा योगक्षेम को

न चाहने वाला और आत्मवान हो।

राग और द्वेष से मुक्त, द्वंद्व से रहित और शून्य। राग और द्वेष से मुक्त, दो में से एक पर होना सदा आसान है। राग में होना आसान है, विराग में भी होना आसान है। विराग द्वेष है। धन को पकड़ना आसान है, धन को त्यागना आसान है। पकड़ना राग है, त्यागना द्वेष है। राग और द्वेष दोनों से मुक्त हो जाओ, शून्य हो जाओ, रिक्त हो जाओ, तो जिसे महावीर ने वीतरागता कहा है, उसे उपलब्ध होता है व्यक्ति।

द्वंद्व में चुनाव आसान है, चुनावरहित होना कठिन है। च्वाइस आसान है, च्वाइसलेसनेस कठिन है। कहें मन को कि इसे चुनते हैं, तो मन कहता है-ठीक।

कहें मन को, इसके विपरीत चुनते हैं, तो भी मन कहता है-ठीक। चुनो जरूर! क्योंकि जहां तक चुनाव है, वहां तक मन जी सकता है। चुनाव कोई भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता-घर चुनो, जंगल चुनो; मित्रता चुनो, शत्रुता चुनो; धन चुनो, धन-विरोध चुनो; कुछ भी चुनो, प्रेम चुनो, घृणा चुनो; क्रोध चुनो, क्षमा चुनो; कुछ भी चुनो-च्वाइस हो, तो मन जीता है। लेकिन कुछ भी मत चुनो, तो मन तत्काल-तत्काल-गिर जाता है। मन के आधार गिर जाते हैं। च्वाइस मन का आधार है, चुनाव मन का प्राण है।

इसलिए जब तक चुनाव चलता है जीवन में, तब तक आप कितना ही चुनाव बदलते रहें, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता है। संसार छोड़ें, मोक्ष चुनें; पदार्थ छोड़ें, परमात्मा चुनें; पाप छोड़ें, पुण्य चुनें-कुछ भी चुनें। यह सवाल नहीं है कि आप क्या चुनते हैं, सवाल गहरे में यह है कि क्या आप चुनते हैं? अगर चुनते हैं, अगर च्वाइस है, तो द्वंद्व रहेगा। क्योंकि किसी को छोड़ते हैं और किसी को चुनते हैं।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसे छोड़ते हैं, उसे पूरा कभी नहीं छोड़ पा सकते हैं। क्योंकि जिसे छोड़ना पड़ता है, उसकी मन में गहरी पकड़ होती है। नहीं तो छोड़ना क्यों पड़ेगा? अगर एक आदमी के मन में धन की कोई पकड़ न हो, तो वह धन का त्याग कैसे करेगा? त्याग के लिए पकड़ अनिवार्य है। अगर एक आदमी की कामवासना में, सेक्स में रुचि न हो, लगाव न हो, आकर्षण न हो, तो वह ब्रह्मचर्य कैसे चुनेगा? और जिसमें आकर्षण है, लगाव है, उसके खिलाफ हम चुन रहे हैं, तो ज्यादा से ज्यादा हम दमन कर सकते हैं, सप्रेशन कर सकते हैं। और कुछ होने वाला नहीं है; दब जाएगा। जिसे हमने इनकार किया, वह हमारे अचेतन में उतर जाएगा। और जिसे हमने स्वीकार किया, वह हमारा चेतन बन जाएगा।

हमारा मन, जिसे अस्वीकार करता है, उसे अंधेरे में ढकेल देता है। हमारे सबके मन के गोडाउन हैं। घर में जो चीज बेकार हो जाती है, उसे हम कबाड़खाने में डाल देते हैं। ऐसे ही चेतन मन जिसे इनकार कर देता है, उसे अचेतन में डाल देता है। जिसे स्वीकार कर लेता है, उसे चेतन में ले आता है। चेतन मन हमारा बैठकखाना है।

लेकिन किसी भी आदमी का घर बैठकखाने में नहीं होता। बैठकखानों में सिर्फ मेहमानों का स्वागत किया जाता है, उसमें कोई रहता नहीं। असली घर बैठकखाने के बाद शुरू होता है। बैठकखाना घर का हिस्सा नहीं है, तो भी चलेगा। कह सकते हैं कि बैठकखाना घर का हिस्सा नहीं है। क्योंकि घर वाले बैठकखाने में नहीं रहते, बैठकखाने में सिर्फ अतिथियों का स्वागत होता है। बैठकखाना सिर्फ फेस है, बैठकखाना सिर्फ एक चेहरा है, दिखावा है घर का, असली घर नहीं है। बैठकखाना एक डिसेप्शन है, एक धोखा है, जिसमें बाहर से आए लोगों को धोखा दिया जाता है कि यह है हमारा घर। हालांकि उसमें कोई रहता नहीं, न उसमें कोई सोता, न उसमें कोई खाता, न उसमें कोई पीता। उसमें कोई नहीं रहता, वह घर है ही नहीं। वह सिर्फ घर का धोखा है। बैठकखाने के बाद घर शुरू होता है।

चेतन मन हमारा, जगत के दिखावे के लिए बैठकखाना है। उससे हम दूसरों से मिलते-जुलते है। लेकिन उंसके गहरे में हमारा असली जीवन शुरू होता है। जब भी हम चुनाव करते है, तो चुनाव से कोई चीज मिटती नहीं। चुनाव से सिर्फ बैठकखाने की चीजें घर के भीतर चली जाती हैं। चुनाव से, सिर्फ जिसे हम चुनते है, उसे बैठकखाने में लगा देते है। वह हमारा डेकोरेशन है।

इसलिए दिनभर जो आदमी धन को इनकार करता है, कहता है कि नहीं, मैं त्याग को चुना हूं, रात सपने में धन को इकट्ठा करता है। जो दिनभर कामवासना से लड़ता हैं, रात सपने में कामवासना से घिर जाता है। जो दिनभर उपवास करता है, रात राजमहलों में निमंत्रित हो जाता है भोजन के लिए।

सपने में एसर्ट करता है वह जो भीतर छिपा है। वह कहता है, बहुत हो गया दिनभर अब चुनाव, अब हम प्रतीक्षा कर रहे हैं दिनभर से भीतर, अब हमसे भी मिलो। वह जाता नहीं है, वह सिर्फ दबा रहता है।

और एक मजे की बात है कि जो भीतर दबा है, वह शक्ति-संपन्न होता जाता है। और जो बैठकखाने में है, वह धीरे-धीरे निर्बल होता जाता है। और जल्दी ही वह वक्त आ जाता है कि जिसे हमने दबाया है, वह अपनी उदघोषणा करता है; विस्फोट होता है। वह निकल पड़ता है बाहर।

अच्छे से अच्छे आदमी को, जिसकी जिंदगी बिलकुल बढ़िया, सुंदर, स्मूथ, समतल भूमि पर चलती है, उसे भी शराब पिला दें, तो पता चलेगा, उसके भीतर क्या-क्या छिपा है! सब निकलने लगेगा। शराब किसी आदमी में कुछ पैदा नहीं करती। शराब सिर्फ बैठकखाने और घर का फासला तोड़ देती है, दरवाजा खोल देती है।

अभी पश्चिम में एक फकीर था गुरजिएफ। उसके पास जो भी साधक आता, तो पंद्रह दिन तो उसको शराब में डुबाता। कैसा पागल आदमी होगा? नहीं, समझदार था। क्योंकि वह यह कहता है कि जब तक मैं उसे न देख लूं, जिसे तुमने दबाया है, तब तक मैं तुम्हारे साथ कुछ भी काम नहीं कर सकता। क्योंकि तुम क्या कह रहे हो, वह भरोसे का नहीं है। तुम्हारे भीतर क्या पड़ा है, वही जान लेना जरूरी है।

तो एकदम शराब पिलाता पंद्रह दिन; इतना डुबा देता शराब में। फिर उस आदमी का असली चेहरा खोजता कि भीतर कौन-कौन छिपा है, किस-किस को दबाया है! तुम्हारी च्वाइस ने क्या-क्या किया है, इसे जानना जरूरी है, तभी रूपांतरण हो सकता है।

कई लोग तो भाग जाते कि हम यह बरदाश्त नहीं कर सकते। लेकिन गुरजिएफ कहता कि पंद्रह दिन तो जब तक मैं तुम्हें शराब में न डुबा लूं, जब तक मैं तुम्हारे भीतरी घर में न झांक लूं कि तुमने क्या-क्या दबा रखा है, तब तक मैं तुमसे बात भी नहीं करूंगा। क्योंकि तुम जो कहते हो, उसको सुनकर अगर मैं तुम्हारे साथ मेहनत करूं, तो मेहनत व्यर्थ चली जाएगी। क्योंकि तुम जो कहते हो, पक्का नहीं है कि तुम वही हो, भीतर तुम कुछ और हो सकते हो। और अंतिम निष्कर्ष पर, तुम्हारे जो भीतर पड़ा है, वही निर्णायक है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, चुनना मत। क्योंकि चुनाव किया कि भीतर गया वह; जिसे तुमने छोड़ा, दबाया, वह अंदर गया। और जिसे तुमने उभारा और स्वीकारा, वह ऊपर आया। बस, इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। द्वंद्व बना ही रहेगा। और द्वंद्व क्या है? कांफ्लिक्ट क्या है?

द्वंद्व एक ही है, चेतन और अचेतन का द्वंद्व है। आपने कसम ली है, क्रोध नहीं करेंगे। कसम आपकी चेतन मन में, कांशस माइंड में रहेगी। और क्रोध की ताकतें अचेतन मन में रहेंगी। कल कोई गाली देगा, अचेतन मन कहेगा, करो क्रोध! और चेतन मन कहेगा, कसम खाई है कि क्रोध नहीं करना है। और द्वंद्व खड़ा होगा। लड़ोगे भीतर।

और ध्यान रहे, जब भी लड़ाई होगी, तो अचेतन जीतेगा। इमरजेंसी में हमेशा अचेतन जीतेगा। बेकाम समय में चेतन जीतता हुआ दिखाई पड़ेगा, काम के समय में अचेतन जीतेगा। क्यों? क्योंकि मनोविज्ञान की अधिकतम खोजें इस नतीजे पर पहुंची है कि चेतन मन हमारे मन का एक हिस्सा है। अगर हम मन के दस हिस्से करें, तो एक हिस्सा चेतन और नौ हिस्सा अचेतन है। नौगुनी ताकत है उसकी।

तो वह जो नौगुनी ताकत वाला मन है, वह प्रतीक्षा करता है कि कोई हर्जा नहीं। सुबह जब गीता का पाठ करते हो तब कोई फिक्र नहीं, कसम खाओ कि क्रोध नहीं करेंगे। मंदिर जब जाते हो, तब कोई फिक्र नहीं, मंदिर कोई जिंदगी है! कहो कि क्रोध नहीं करेंगे। देख लेंगे दुकान पर! देख लेंगे घर मे! जब मौका आएगा असली, तब एकदम चेतन हट जाता है और अचेतन हमला बोल देता है।

इसीलिए तो हम कहते हैं, क्रोध करने के बाद आदमी कहता है कि पता नहीं कैसे मैंने क्रोध कर लिया! मेरे बावजूद-इंस्पाइट आफ मी-मेरे बावजूद क्रोध हो गया। लेकिन आपके बावजूद क्रोध कैसे हो सकता है? निश्चित ही, आपने अपने ही किसी गहरे हिस्से को इतना दबाया है कि उसको आप दूसरा समझने लगे हैं, कि वह और है। वह हमला बोल देता है। जब वक्त आता है, वह हमला बोल देता है।

यह जो द्वंद्व है, यह जो कांफ्लिक्ट है, यही मनुष्य का नरक है। द्वंद्व नरक है। कांफ्लिक्ट के अतिरिक्त और कोई नरक नहीं है। और हम इसको बढ़ाए चले जाते हैं। जितना हम चुनते जाते हैं, बढ़ाए चले जाते हैं।

तो कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं, राग और द्वेष से-द्वंद्व से, कांफ्लिक्ट से-जो बाहर हो जाता है, जो चुनाव के बाहर हो जाता है, वही जीवन के परम सत्य को

जान पाता है। और जो द्वंद्व के भीतर घिरा रहता है, वह सिर्फ जीवन के नरक को ही जान पाता है।

इस द्वंद्व-अतीत वीतरागता में ही निष्काम कर्म का फूल खिल सकता है। या निष्काम कर्म की भूमिका हो, तो यह द्वंद्वरहित, राग-द्वेषरहित, यह शून्य-चेतना फलित हो सकती है।

चेतना जब शून्य होती है, तभी शुद्ध होती है। यह शून्य का कृष्ण का कहना! चेतना जब शून्य होती है, तभी शुद्ध होती है; जब शुद्ध होती है, तब शून्य ही होती है।

करीब-करीब ऐसा समझे कि एक दर्पण है। दर्पण कब शुद्धतम होता है? जब दर्पण में कुछ भी नहीं प्रतिफलित होता, जब दर्पण में कोई तस्वीर नहीं बनती। जब तक दर्पण में तस्वीर बनती है, तब तक कुछ फारेन, कुछ विजातीय दर्पण पर छाया रहता है। जब तक दर्पण पर कोई तस्वीर बनती है, तब तक दर्पण सिर्फ दर्पण नही होता, कुछ और भी होता है। एक तस्वीर निकलती है, दूसरी बन जाती है। दूसरी निकलती है, तीसरी बन जाती है। दर्पण पर कुछ बहता रहता है। लेकिन जब कोई तस्वीर नहीं बनती, जब दर्पण सिर्फ़ दर्पण ही होता है, तब शून्य होता है।

चेतना सिर्फ दर्पण है। जब तक उस पर कोई तस्वीर बनती रहती है-कभी राग की, कभी विराग की; कभी मित्रता की, कभी शत्रुता की; कभी बाएं की, कभी दाएं की-कोई न कोई तस्वीर बनती रहती है, तो चेतना अशुद्ध होती है। लेकिन अगर कोई तस्वीर नहीं बनती, चेतना द्वंद्व के बाहर, चुनाव के बाहर होती है, तो शून्य हो जाती है। शून्य चेतना में क्या बनता है? जब दर्पण शून्य होता है, तब दर्पण ही रह जाता है। जब चेतना शून्य होती है, तो सिर्फ चैतन्य ही रह जाती है।

वह जो चैतन्य की शून्य प्रतीति है, वही ब्रह्म का अनुभव है। वह जो शुद्ध चैतन्य की अनुभूति है, वही मुक्ति का अनुभव है। शून्य और ब्रह्म, एक ही अनुभव के दो छोर हैं। इधर शून्य हुए, उधर ब्रह्म हुए। इधर दर्पण पर तस्वीरें बननी बंद हुईं कि उधर भीतर से ब्रह्म का उदय हुआ। ब्रह्म के दर्पण पर तस्वीरों का जमाव ही संसार है।

हम असल में दर्पण की तरह व्यवहार ही नहीं करते। हम तो कैमरे की फिल्म की तरह व्यवहार करते हैं। कैमरे की फिल्म प्रतिबिंब को ऐसा पकड़ लेती है कि छोड़ती ही नहीं। फिल्म मिट जाती है, तस्वीर ही हो जाती है।

अगर हम कोई ऐसा कैमरा बऩा सकें, बना सकते हैं, जिसमें कि एक तस्वीर के ऊपर दूसरी और दूसरी के ऊपर तीसरी ली जा सके; एक फिल्म पर अगर हजार तस्वीरें, लाख तस्वीरें ली जा सकें, तो जो स्थिति उस फिल्म की होगी, वैसी स्थिति हमारे चित्त की है। तस्वीरों पर तस्वीरें, तस्वीरों पर तस्वीरें इकट्ठी हो जाती है। कनफ्यूजन के सिवाय कुछ नहीं शेष रहता। कोई शकल पहचान में भी नहीं आती है कि किसकी तस्वीर है। कुछ पता भी नहीं चलता कि क्या है। एक नाइटमेयरिश, एक दुख-स्वप्न जैसा चित्त हो जाता है।

दर्पण तो फिर भी बेहतर है। एक तस्वीर बनती है, मिट जाती है, तब दूसरी बनती है। हमारा चित्त ऐसा दर्पण है, जो तस्वीरों को पकड़ता ही चला जाता है; इकट्ठा करता चला जाता है; तस्वीरें ही तस्वीरें रह जाती है।

उर्दू के किसी कवि की एक पंक्ति है, जिसमें उसने कहा है कि मरने के बाद घर से बस कुछ तस्वीरें ही निकली है। मरने के बाद हमारे घर से भी कुछ तस्वीरों के सिवाय निकलने को कुछ और नहीं है। जिंदगीभर तस्वीरों के संग्रह के अतिरिक्त हमारा कोई और कृत्य नहीं है।

कृष्ण कहते हैं, शून्य, निर्द्वंद्व चित्त...। छोड़ो तस्वीरों को, जानो दर्पण को। मत करो चुनाव, क्योंकि चुनाव किया कि पकड़ा। पकड़ो ही मत, नो क्लिंगिंग। रह जाओ वही, जो हो। उस शून्य क्षण में जो जाना जाता है, वही जीवन का परम सत्य है, परम ज्ञान है।

प्रश्न : भगवान श्री, इस लोक में यह वार्त्तिक मिला, बहुत यथार्थ है। मगर एक मुश्किल पड़ जाती है कि त्रैगुण्यविषया वेदा। इसमें गीता सर्व वेद पर आक्षेप करती है कि वे त्रैगुण्य विषय से युक्त हैं! और दूसरा, उत्तरार्ध में निर्योगक्षेम आत्मवान, तो आत्मवान होना न होना एक आंतरिक भाव है, तो श्रीकृष्ण उसको

योगक्षेम प्रवृत्ति की बाह्य घटना से क्यों जोड़ते हुए दिखते हैं? मात्र आत्मवान होने से योगक्षेम की समस्या हल हो सकेगी?

कृष्ण कहते हैं, समस्त वेद सगुण से, तीन गुणों से भरे हैं, निर्गुण नहीं है। शब्द निर्गुण नहीं हो सकता; वेद ही नहीं, कृष्ण का शब्द भी निर्गुण नहीं हो सकता। और जब वे कहते हैं समस्त वेद, तो उसका मतलब है समस्त शास्त्र, उसका मतलब है समस्त वचन, उसका मतलब है समस्त ज्ञान, जो कहा गया, वह कभी भी तीन गुणों के बाहर नहीं हो सकता।

इसे ऐसा समझें कि जो भी अभिव्यक्त है, वह गुण के बाहर नहीं हो सकता। सिर्फ अव्यक्त, अनभिव्यक्त, अनमैनिफेस्टेड निर्गुण हो सकता है, व्यक्त तो सदा ही सगुण होगा। असल में व्यक्त होने के लिए गुण का सहारा लेना पड़ता है। व्यक्त होने के लिए गुण की रूपरेखा लेनी पड़ती है। व्यक्त होने के लिए गुण का माध्यम चुनना पड़ता है। जैसे ही कुछ व्यक्त होगा कि गुण की सीमा में प्रवेश कर जाएगा।

वेद का अर्थ है, व्यक्त ज्ञान; वेद का अर्थ है, शब्द में सत्य। जब सत्य को शब्द में रखेंगे, तब सत्य की असीमता शेष न रह जाएगी, वह सीमित हो जाएगा। कितना ही बड़ा शब्द हो, तो भी सत्य को पूरा न घेर पाएगा, क्योंकि सत्य को पूरा घेरा नहीं जा सकता। कितनी ही बड़ी प्रतिमा हो, तो भी परमात्मा को पूरा न घेर पाएगी, क्योंकि परमात्मा को पूरा घेरा नहीं जा सकता।

सब शब्द, सब व्यक्त सीमा बनाते हैं। गुणों की सीमा बनाते है। गुण से ही व्यक्त होगा। एक बीज में वृक्ष निर्गुण हो सकता है, निराकार हो सकता है। है, अभी कोई आकार नहीं है। लेकिन जब बीज फूटेगा और प्रकट होगा, तो वृक्ष आकार ले लेगा।

तो जहां वे कह रहे हैं वेद के संबंध में, वह समस्त वक्तव्य के संबंध में कही गई बात है। उसमें गीता भी समाहित हो गई है। तो ऐसा नहीं है कि गीता वेद की कोई उपेक्षा कर रही है। वेद में भी ऐसे वचन हैं, जो कहेंगे, शब्द से उसे नहीं कहा जा सकता।

समस्त शास्त्रों की गहरी से गहरी कठिनाई यही है कि शास्त्र उसी को कहने की चेष्टा में संलग्न हैं, जो नहीं कहा जा सकता है। शास्त्र उसी को बताने में संलग्न हैं, जिसे बताने के लिए कोई उपाय नहीं है। शास्त्र उसी दिशा में इंगित कर रहे हैं, जो अदिशा है, जो दिशा नहीं है, नो-डायमेंशन है।

अगर मुझे वृक्ष बताना हो, तो मैं इशारा कर दूं कि वह रहा। अगर मुझे तारा बताना हो, तो बता दूं कि वह रहा। लेकिन अगर मुझे परमात्मा बताना हो, तो अंगुली से नहीं बताया जा सकता, मुट्ठी बांधकर बताना पड़ेगा और कहना पड़ेगा, यह रहा। क्योंकि अंगुली तो समव्हेयर, कहीं बताएगी; और जो एवरीव्हेयर है, उसे अंगुली से नहीं बताया जा सकता। अंगुली से बताने में भूल हो जाने वाली है, क्योंकि अंगुली तो कहीं इशारा करती है उसको, बाकी जगह भी तो वही है।

नानक गए मक्का। सो गए रात। पुजारी बहुत नाराज हुए। नानक को पकड़ा और कहा कि बड़े मूढ़ मालूम पड़ते हो! पवित्र मंदिर की तरफ, परमात्मा की तरफ पैर करके सोते हो? तो नानक ने कहा कि मै बड़ी मुसीबत में था; मै भी बहुत सोचा, कोई उपाय नहीं मिला। तुम्हीं को मै स्वतंत्रता देता हूं, तुम मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो।

वे पुजारी मुश्किल में पड़े होंगे। पुजारी हमेशा नानक जैसे आदमी से मिल जाए, तो मुश्किल में पड़ता है। क्योंकि पुजारी को धर्म का कोई पता नहीं होता। पुजारी को धर्म का कोई पता ही नहीं होता। उसे मंदिर का पता होता है। मंदिर की सीमा है।

मुश्किल में डाल दिया। वही सवाल है नानक का। नानक कहते हैं, मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो, मै राजी।

कहां करें पैर? कहीं भी करेंगे, परमात्मा तो होगा। मंदिर नहीं होगा, काबा नहीं होगा, परमात्मा तो होगा। तो फिर काबा में जो परमात्मा है, वह उसी परमात्मा से समतुल नहीं हो सकता, जो सब जगह है।

तो काबा का परमात्मा सगुण हो जाएगा। मंदिर का परमात्मा सगुण हो जाएगा। शब्द का परमात्मा सगुण हो जाएगा। शास्त्र का परमात्मा सगुण हो

जाएगा। बोला, कहा, प्रकट हुआ कि सगुण हुआ। कृष्ण जो बोल रहे हैं, वह भी सगुण हो जाता है; बोलते ही सगुण हो जाता है।

वेद की निंदा नहीं है वह, वेद की सीमा का निर्देश है। शब्द की निंदा नहीं है वह, शब्द की सीमा का निर्देश है। वचन की निंदा नही है वह, वचन की सीमा का निर्देश है। और वह निर्देश करना जरूरी है। लेकिन कितना ही निर्देश करो, आदमी बहरा है। अगर कृष्ण की बात सुन ले कि वेद में जो है, वह सब त्रिगुण के भीतर है, तो वह कहेगा, छोड़ो वेद को, गीता को पकड़ो। क्योकि वेद मे तो निर्गुण निराकार नहीं है, छोडो! छोटा हो गया वेद, गीता को पकड़ो।

लेकिन समझ ही नहीं पाया वह। अगर कृष्ण कहीं देखते होंगे, तो वे हंसते होगे कि तुमने फिर दूसरा वेद बना लिया। यह सवाल वेद का नही है, यह सवाल व्यक्त की सीमा का है।

और दूसरी बात पूछी है कि अगर आत्मस्थिति को सीधा ही स्वीकार कर लिया जाए, तो उसे योगक्षेम से क्यो जोड़ते है ?

जोड़ते नही है, जुडी है। सिर्फ कहते है। जोड़ते नही है, जुड़ी है। जैसे एक दीया जले, तो दीया तो अपने में ही जलता है। अगर आस-पास कोई चीज न हो दिखाई पड़ने को, तो भी जलता है। दीए का जलना, दीए का प्रकाश से भरना, किन्हीं प्रकाशित चीजो पर निर्भर नहीं होता। लेकिन दीया जलता है, तो चीजें प्रकाशित होती हैं। जो भी आस-पास होगा, वह प्रकाशित होगा।

और बड़े मजे की बात है कि आपने कभी भी प्रकाश नही देखा है अब तक, सिर्फ प्रकाशित चीजें देखी है। प्रकाश नही देखा है किसी ने भी आज तक, सिर्फ प्रकाशित चीजें देखी है। प्रकाशित्र चीजो की वजह से आप अनुमान करते हैं कि प्रकाश है। आप सोचेंगे कि मैं क्या बात कह रहा हूं! हम सब ने प्रकाश देखा है। फिर से सोचना, प्रकाश कभी किसी ने देखा ही नहीं।

यह वृक्ष दिखता है सूरज की रोशनी में चमकता हुआ, इसलिए आप कहते हैं, सूरज की रोशनी है। फिर अंधेरा आ जाता है और वृक्ष नहीं दिखता है; आप कहते हैं, रोशनी गई। लेकिन आपने रोशनी नहीं देखी है। देखें आकाश की

तरफ, चीजें दिखाई पड़ेंगी, रोशनी कहीं दिखाई नहीं पड़ेगी। जहां भी है, जो भी दिखाई पड़ रहा है, वह प्रकाशित है, प्रकाश नहीं।

कृष्ण के कहने का कारण है। वे कहते हैं, जब कोई शून्य आत्मस्थिति को उपलब्ध होता है, तो योगक्षेम फलित होते हैं। आपको योगक्षेम ही दिखाई पड़ेंगे। आपको आत्मस्थिति दिखाई नहीं पड़ेगी। उस आत्मस्थिति के पास जो घटना घटती है योगक्षेम की, वही दिखाई पड़ेगी। जब कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, तो आपको उसके भीतर की स्थिति दिखाई नहीं पड़ेगी; उसके चारों तरफ सब आनंद से भर जाएगा, वही दिखाई पड़ेगा। जब कोई भीतर ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो आपको उसके ज्ञान की स्थिति दिखाई नहीं पड़ेगी, लेकिन उसके चारों तरफ ज्ञान की घटनाएं घटने लगेंगी, वही आपको दिखाई पड़ेगा। भीतर तो शुद्ध अस्तित्व ही रह जाएगा आत्मा का, लेकिन योगक्षेम उसके कांसिक्वेंसेस होंगे।

जैसे दीया जलेगा, और चीजें चमकने लगेंगी। चीजें न हों तो भी दीया जल सकता है, लेकिन तब आपको दिखाई नहीं पड़ सकता है। अर्जुन आत्मवान होगा, यह उसकी भीतरी घटना है। अर्जुन का आत्मवान होना, चारों तरफ योगक्षेम के फूल खिला देगा; यह उसकी बाहरी घटना है। इसलिए वे दोनों का स्मरण करते हैं। और हम कैसे पहचानेंगे जो बाहर खड़े हैं? वे आत्मवान को नहीं पहचानेंगे, योगक्षेम को पहचानेंगे।

मोहम्मद के बाबत कहा जाता है कि मोहम्मद जहां भी चलते, तो उनके ऊपर आकाश में एक बदली चलती साथ, छाया करती हुई। कठिन मालूम पड़ती है बात। मोहम्मद जहां भी जाएं, तो उनके ऊपर एक बदली चले और छाया करे! लेकिन आदमी के पास शब्द कमजोर हैं, इसलिए जो चीज गद्य में नहीं कही जा सकती, उसे हम पद्य में कहते हैं। पद्य हमारे गद्य की असमर्थता है। जब प्रोज़ में नहीं कह पाते, तो पोएट्री निर्मित करते हैं। और जीवन में जो-जो गहरा है, वह गद्य में नहीं कहा जा सकता, इसलिए जीवन का सब गहरा पद्य में, पोएट्री में कहा जाता है।

यह पोएटिक एक्सप्रेशन है किसी अनुभूति का, मोहम्मद जहां भी जाते, वहां छाया पहुंच जाती। मोहम्मद जहां भी जाते, वहां आस-पास के लोगों को ऐसा लगता जैसे रेगिस्तान, मरुस्थल के आदमी को लगेगा कि जैसे ऊपर कोई बादल आ गया हो और सब छाया हो गई हो। मोहम्मद जहां होते, वहां योगक्षेम फलित होता।

महावीर के बाबत कहा गया है कि महावीर अगर रास्ते से चलते, तो कांटे अगर सीधे पड़े होते, तो उलटे हो जाते। कोई कांटा फिक्र नहीं करेगा; संभावना कम दिखाई पड़ती है।

लेकिन जिन्होंने यह लिखा है, उन्होंने कुछ अनुभव किया है। महावीर के आस-पास सीधे कांटे भी उलटे हो·जाएं-कांटे नही, पर कांटापन। जिंदगी में बहुत कांटे है, बहुत तरह के कांटे है। रास्तो पर बहुत कांटे है। और महावीर के पास जो लोग आए हों, उन्हें अचानक लगा हो कि अब तक जो कांटे सीधे चुभ रहे थे, वे एकदम उलटे हो गए, नहीं चुभ रहे हैं; योगक्षेम फलित हुआ हो, तो कविता कैसे कहे? आदमी कैसे कहे? आदमी कहता है कि ऐसा हो जाता है। लेकिन भूल होती है हमें। हमें तो यही दिखाई पड़ता है। हम महावीर को पहचानेंगे भी कैसे कि वे महावीर है? हम कैसे पहचानेंगे कि बुद्ध बुद्ध है?

तो बुद्ध के लिए हमने कहानियां गढ़ी है कि बुद्ध जिस गांव से निकलते है, वहां केशर की वर्षा हो जाती है। हो नहीं सकती, उस केशर की नहीं, जो बाजार मे बिकती है। लेकिन जिन लोगों के गांव से बुद्ध गुजरे है, उनको जरूर केशर की सुगंध जैसा, केशर जैसा-उनके पास जो कीमती से कीमती शब्द रहा होगा-उसकी प्रतीति हुई, उसका एहसास हुआ है। कुछ बरसा है उस गांव में जरूर। और आदमी की भाषा में कोई और शब्द नहीं होगा, तो कहा है, केशर बरस गई है।

जब भीतर जीवन प्रकाशित होता है, तो बाहर भी प्रकाश की किरणें लोगों को छूती है। वे जब लोगों को छूती हैं, तो योगक्षेम फलित होता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं और ठीक कहते हैं। कहना चाहिए। कहना जरूरी

है। क्योंकि एक व्यक्ति के जीवन में भी जब आत्मा की घटना घटती है, तो उसके प्रकाश का वर्तुल दूर-दूर लोक-लोकांतर तक फैल जाता है। और एक व्यक्ति के भीतर भी जो स्वर बजता है आत्मा का, तो उसकी स्वरलहरी दूसरो के प्राणो को भी झंकार से भर जाती है। और एक व्यक्ति के जीवन में जब आनंद फलित होता है, तो दूसरों के जीवन मे भी आनंद के फूल थोड़े-से जरूर बरस जाते है।

इसलिए अर्जुन को तो कहते है, तू आत्मवान हो जाएगा, शक्ति-संपन्न हो जाएगा। लेकिन जब शक्ति-संपन्न होगा कोई, भीतर आत्मवान होगा कोई, तो इसे एक और दूसरी तरफ से देखने की कोशिश करे।

जब कोई व्यक्ति आत्महीन होता है, जब कोई व्यक्ति अपनी आत्मा को खो देता है, तो कभी आपने खयाल किया है कि उसके आस-पास दुख, पीड़ा का जन्म होना शुरू हो जाता है! जब कोई एक व्यक्ति अपनी आत्मा को खोता है, तो अपने आस-पास दुख का एक वर्तुल पैदा कर लेता है! निर्भर करेगा कि कितनी उसने आत्मा खोई है।

अगर एक हिटलर जैसा आदमी पृथ्वी पर पैदा हो, तो विराट दुख का वर्तुल चारों ओर फलित होता है। योगक्षेम का पता ही नहीं चलता, सब खो जाता है। उससे उलटा घटित होने लगता है। अकल्याण और अमंगल चारो ओर फैल जाता है। फैलेगा। चंगेज खां जैसा आदमी पैदा होता है, तो जहां से गुजर जाता है, वहां केशर नहीं बरसती, सिर्फ खून! सिर्फ खून ही बहता है।

बुरे आदमियों को हम भलीभांति पहचानते है। उनके आस-पास जो घटनाएं घटती है, उन्हें भी पहचानते हैं। स्वभावतः, बुरे आदमी के आस-पास जो घटना घटती है, वह बहुत मैटीरियल होती है, बहुत भौतिक होती है, दिखाई पड़ती है।

चंगेज खां निकले आपके गांव से, तो मुश्किल है कि आप न देख पाएं। क्योंकि घटनाएं बहुत भौतिक, मैटीरियल घटेंगी। चंगेज खां जिस गांव से निकलता, उस गांव के सारे बच्चों को कटवा डालता। भालों पर बच्चों के सिर लगवा देता। और जब चंगेज खां से किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? दस-दस हजार बच्चे भालों पर लटके हैं! तो चंगेज खां ने हंसकर कहा कि लोगों को पता होना चाहिए कि चंगेज खां निकल रहा है।

बुद्ध भी निकलते हैं किसी गांव से, कृष्ण भी निकलते हैं किसी गांव से, जीसस भी निकलते हैं किसी गांव से-घटनाएं इम्मैटीरियल घटती हैं, घटनाएं मैटीरियल नहीं होतीं। इसलिए जिनके पास थोड़ी संवेदनशील चेतना है, वे ही पकड़ पाते हैं। जिनके पास थोड़ा संवेदन से भरा हुआ मन है, जो रिस्पांसिव हैं, वे ही पकड़ पाते है।

उसमें जो पकड़ में आता है, उसको कृष्ण कह रहे है योगक्षेम। वे जो पकड़ पाते हैं, उनको पता लगता है, सब बदल गया। हवा और हो गई, आकाश और हो गया, सब और हो गया। यह जो सब और हो जाने का अनुभव है, इस अनुभव को कृष्ण कह रहे है योगक्षेम। उसे स्मरण दिलाना उचित है।

एक बात और खयाल में ले लेनी जरूरी है कि वे कह रहे है, तू शक्ति-संपन्न हो जाएगा।

असल में मनुष्य तब तक शक्ति-संपन्न होता ही नही, जब तक स्वयं होता है, तब तक वह शक्ति-विपन्न ही होता है। असल में स्वयं होना, अहंकार-केंद्रित होना, दीन होने की रामबाण व्यवस्था है। जितना मै अहंकार से भरा हूं, जितना मै हूं, उतना ही मै दीन हूं। जितना मेरा अहंकार छूटता और मै आत्मवान होता हूं, जितना ही मै मिटता, उतना ही मैं सर्व से एक होता हूं। तब शक्ति मेरी नहीं, ब्रह्म की हो जाती है। तब मेरे हाथ मुझसे नहीं चलते, ब्रह्म से चलते है। तब मेरी वाणी मुझसे नहीं बोलती, ब्रह्म से बोलती है। तब मेरा उठना-बैठना मेरा नहीं, उसका ही हो जाता है।

स्वभावतः, उससे बड़ी और शक्ति-संपन्नता क्या होगी? जिस दिन व्यक्ति अपने को समर्पित कर देता सर्व के लिए, उस दिन सर्व की सारी शक्ति उसकी अपनी हो जाती है। उस दिन होता है वह शक्ति-संपन्न।

शक्ति यहां पावर का प्रतीक नहीं है। शक्ति उन अर्थो में नहीं, जैसे किसी पद पर पहुंचकर कोई आदमी शक्तिशाली हो जाता है; कि कोई आदमी कल तक सड़क पर था, फिर मिनिस्टर हो गया, तो शक्तिशाली हो गया। यह शक्ति व्यक्ति में नहीं होती, यह शक्ति पद में होती है। इसको कुर्सी से नीचे

उतारो, यह फिर विपन्न हो जाता है। यह शक्ति इसमें होती ही नहीं, यह इसके कुर्सी पर बैठने से होती है।

कभी सर्कस में, कार्निवाल में आपने इलेक्ट्रिक चेयर देखी हो, कुर्सी जो इलेक्ट्रिफाइड होती है। उस पर एक लड़की या लड़के को बिठा रखते हैं। वह लड़का भी इलेक्ट्रिफाइड हो जाता है। फिर उस लड़के को छुएं, तो शॉक लगता है। वह लड़के का शॉक नहीं है, कुर्सी का शॉक है। लड़के को कुर्सी से बाहर उतारें। मोरारजी भाई कुर्सी पर और मोरारजी भाई कुर्सी के बाहर। इलेक्ट्रिफाइड चेयर! सर्कस है! मगर वह जो कुर्सी पर बैठा हुआ लड़का या लड़की है, जब आपको शॉक लगता है, तो उसकी शान देखें। वह समझता है कि शायद मै शॉक मार रहा हूं। कुर्सी के शॉक है। लेकिन आइडेंटिफाइड हो जाता है आदमी।

पावर नहीं मतलब है कृष्ण की शक्ति का। कृष्ण की शक्ति का मतलब है, एनर्जी, ऊर्जा; जो पद से नहीं आती। असल में जो पद-मात्र छोड़ने से आती है।

अहंकार पद को खोजता है। जो अहंकार को ही छोड़ देता है, उसके सब पद खो जाते है। उसके पास कोई पद नहीं रह जाता। वह शून्य हो जाता है। उस शून्य में विराट गूंजने लगता है। उस शून्य मे विराट उतर आता है। उस शून्य मे विराट के लिए द्वार मिल जाता है। तब वह एनर्जी है, पावर नहीं। तब वह ऊर्जा है, शक्ति है, उधार नहीं है। तब वह व्यक्ति मिटा और अव्यक्ति हो गया। तब व्यक्ति नहीं है, परमात्मा है। और ऐसी स्थिति से वापस लौटना नही होता।

ध्यान रखें, पावर से वापस लौटना होता है। पद से वापस लौटना होता है, धन से वापस लौटना होता है। जो शक्ति भी किसी कारण से मिलती है और अहंकार की खोज से मिलती है, उससे लौटना होता है। लेकिन जो शक्ति अहंकार को खोकर मिलती है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है, उससे वापस लौटना नही होता है।

इसलिए एक बार व्यक्ति परमात्मा की शक्ति को जान लेता है, एक हो जाता है, वह सदा के लिए शक्ति-संपन्न हो जाता है। शायद यह कहना ठीक नहीं है कि शक्ति-संपन्न हो जाता है, उचित यही होगा कहना कि वह शक्ति-संपन्नता हो जाता है।

शक्ति-संपन्न हो जाता है, तो ऐसा खयाल बनता है कि वह भी बचता है। नहीं, यह कहना ठीक नहीं है कि वह शक्ति-संपन्न हो जाता है, यही कहना ठीक है कि वह शक्ति हो जाता है। और ऐसी शक्ति अगर पद की है, धन की है, तो योगक्षेम फलित नहीं होगे। ऐसी शक्ति अगर परमात्मा की है, तो योगक्षेम फलित होंगे।

इसलिए भी योगक्षेम की बात कर लेनी उचित है। क्योकि ऐसी शक्तियां भी है, जिनसे योगक्षेम से उलटा फलित होता है।

पावर-पालिटिक्स है सारी दुनिया मे। जब भी कोई आदमी पोलिटिकली पावरफुल होने की यात्रा करता है, तो योगक्षेम फलित नही होता है। उससे उलटा ही फलित होता है। अमंगल ही फलित होता है। दुख ही फलित होता है।

तो शक्ति का यह स्मरण रहे, भेद खयाल मे रहे, शक्ति का अर्थ पावर नही, एनर्जी। शक्ति का अर्थ अहंकार की खोज नही, अहंकार का विसर्जन। तो निश्चित ही योगक्षेम फलित होता है।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। 46।।

क्योकि मनुष्य का, सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर, छोटे जलाशय मे जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का भी सब वेदो में उतना ही प्रयोजन रहता है।

कृष्ण कह रहे है कि जैसे छोटे-छोटे नदी-तालाब है, कुएं-पोखर है, झरने है, इन झरनो मे नहाने से जो आनंद होता है, जो शुचिता मिलती है, ऐसी शुचिता तो सागर में नहाने से मिल ही जाती है अनेक गुना होकर। शब्दो के पोखर मे, शास्त्रो के पोखर में जो मिलता है, उससे अनेक गुना ज्ञान के सागर में मिल ही जाता है। वेद में जो मिलेगा-संहिता में, शास्त्र में, शब्द में-वह ज्ञानी को ज्ञान मे तो अनंत गुना होकर मिल ही जाता है।

इसमे दो बातें ध्यान रखने जैसी है। एक तो यह कि जो सीमा में मिलता है, वह असीम में मिल ही जाता है। इसलिए असीम के लिए सीमित को छोड़ने में भय की

कोई भी आवश्यकता नहीं है। अगर ज्ञान के लिए वेद को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है। सत्य के लिए शब्द को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है। अनुभव के लिए शास्त्र को छोड़ना हो, तो कोई चिंता की बात नहीं है-पहली बात। क्योंकि जो मिलता है यहां, उससे अनंत गुना वहां मिल ही जाता है।

दूसरी बात, सागर में जो मिलता है, ज्ञान में जो मिलता है, असीम मे जो मिलता है, उस असीम में मिलने वाले को सीमित के लिए छोड़ना बहुत खतरनाक है। अपने घर के कुएं के लिए सागर को छोड़ना बहुत खतरनाक है। माना कि घर का कुआं है, अपना है, बचपन से जाना, परिचित है, फिर भी कुआं है। घरों में कुएं से ज्यादा सागर हो भी नहीं सकते। सागरों तक जाना हो तो घरों को छोड़ना पड़ता है। घरों में कुएं ही हो सकते है।

हम सबके अपने-अपने घर है, अपने-अपने वेद हैं, अपने- अपने शास्त्र है, अपने-अपने धर्म है, अपने-अपने संप्रदाय है, अपने-अपने मोहग्रस्त शब्द हैं। हम सबके अपने-अपने-कोई मुसलमान है, कोई हिंदू है, कोई ईसाई है-सबके अपने वेद हैं। कोई इस मूर्ति का पूजक, कोई उस मूर्ति का पूजक; कोई इस मंत्र का भक्त, कोई उस मंत्र का भक्त है। सबके अपने-अपने कुएं है।

कृष्ण यहां कह रहे हैं, इनके लिए सागर को छोड़ना खतरनाक है। हां, इससे उलटा, वाइस-वरसा हो सकता है। सागर के लिए इनको छोड़ने में कोई भी हर्ज नहीं है। क्योंकि जो इनमें मिलेगा, वह अनंत गुना होकर सागर में मिल ही जाता है।

इसलिए वह व्यक्ति अभागा है, जो अपने घर के कुएं के लिए-बाइबिल, कुरान, वेद, गीता...गीता भी! गीता का कृष्ण ने उल्लेख नहीं किया, कैसे करते! क्योंकि जो वे कह रहे थे, वही गीता बनने वाला था। गीता तब तक थी नहीं। मैं उल्लेख करता हूं, गीता भी! जो इनमें मिलता है, इससे अनंत गुना होकर ज्ञान में मिल ही जाता है। इसलिए जो इनके कारण ज्ञान के लिए रुकावट बनाए, इनके पक्ष में ज्ञान को छोड़े, वह अभागा है। लेकिन जो ज्ञान के लिए इन सबको छोड़ दे, वह सौभाग्यशाली है। क्योंकि जो इनमें मिलेगा, वह ज्ञान में मिल ही जाने वाला है।

लेकिन क्या मतलब है? ज्ञान का और वेद का, ज्ञान का और शास्त्र का फासला क्या है? भेद क्या है?

गहरा फासला है। जो जानते है, उन्हे बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। जो नही जानते है, उन्हे दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योकि किन्ही भी दो चीजो का फासला जानने के लिए दोनो चीजो को जानना जरूरी है। जो एक ही चीज को जानता है, दूसरे को जानता ही नही, फासला कैसे निर्मित करे? कैसे तय करे?

हम शास्त्र को ही जानते है, इसलिए हम जो फासले निर्मित करते है, ज्यादा से ज्यादा दो शास्त्रो के बीच करते है। हम कहते है, कुरान कि बाइबिल, वेद कि गीता, कि महावीर कि बुद्ध, कि जीसस कि जरथुस्त्र। हम जो फासले तय करते है, वे फासले ज्ञान और शास्त्र के बीच नही होते, शास्त्र और शास्त्र के बीच होते है। क्योकि हम शास्त्रो को जानते है। असली फासला शास्त्र और शास्त्र के बीच नही है, असली फासला शास्त्रो और ज्ञान के बीच है। उस दिशा मे थोडी-सी सूचक बाते खयाल ले लेनी चाहिए।

ज्ञान वह है, जो कभी भी, कभी भी अनुभव के बिना नही होता है। ज्ञान यानी अनुभव, और अनुभव तो सदा अपना ही होता है, दूसरे का नहीं होता। अनुभव यानी अपना। शास्त्र भी अनुभव है, लेकिन दूसरे का। शास्त्र भी ज्ञान है, लेकिन दूसरे का। ज्ञान भी ज्ञान है, लेकिन अपना।

मै अपनी आंख से देख रहा हूं, यह ज्ञान है। मै अंधा हूं, आप देखते है और मुझे कहते है, यह शास्त्र है। नही कि आप गलत कहते है। ऐसा नही कि आप गलत ही कहते है। लेकिन आप कहते है, आप देखते है। आप जो आंख से करते है, वह मै कान से कर रहा हूं। फर्क पड़ने वाला है। कान आंख का काम नहीं कर सकता।

इसलिए शास्त्र के जो पुराने नाम है, वे बहुत बढ़िया है। श्रुति, सुना हुआ-देखा हुआ नहीं। स्मृति, सुना हुआ, स्मरण किया हुआ, याद किया हुआ, मेमोराइज्ड-जाना हुआ नहीं। सब शास्त्र श्रुति और स्मृति है। किसी ने जाना और कहा। हमने जाना नहीं और सुना। जो उसकी आंख से हुआ, वह हमारे कान से हुआ। शास्त्र कान से आते है, सत्य आंख से आता है। सत्य दर्शन है, शास्त्र श्रुति है।

दूसरे का अनुभव, कुछ भी उपाय करूं मैं, मेरा अनुभव नहीं है। हां, दूसरे का अनुभव उपयोगी हो सकता है। इसी अर्थ में उपयोगी हो सकता है-इस अर्थ में नहीं कि मैं उस पर भरोसा कर लूं, विश्वास कर लूं, अंधश्रद्धालु हो जाऊं; इस अर्थ में तो दुरुपयोग ही हो जाएगा; हिन्ड्रेंस बनेगा, बाधा बनेगा-इस अर्थ मे उपयोगी हो सकता है कि दूसरे ने जो जाना है, उसे जानने की संभावना का द्वार मेरे लिए भी खुलता है। जो दूसरे को हो सका है, वह मेरे लिए भी हो सकता है, इसका आश्वासन मिलता है। जो दूसरे के लिए हो सका, वह क्यों मेरे लिए नहीं हो सकेगा, इसकी प्रेरणा। जो दूसरे के लिए हो सका, वह मेरे भीतर छिपी हुई प्यास को जगाने का कारण हो सकता है। लेकिन बस इतना ही। जानना तो मुझे ही पड़ेगा। जानना मुझे ही पड़ेगा, जीना मुझे ही पड़ेगा, उस सागर-तट तक मुझे ही पहुंचना पड़ेगा।

एक और मजे की बात है कि घर में जो कुएं है, वे बनाए हुए होते है, सागर बनाया हुआ नहीं होता। आपके पिता ने बनाया होगा घर का कुआं, उनके पिता ने बनाया होगा, किसी ने बनाया होगा। जिसने बनाया होगा, उसे एक सीक्रेट का पता है, उसे एक राज का पता है कि कहीं से भी जमीन को तोड़ो, सागर मिल जाता है। कुआं है क्या? जस्ट ए होल, सिर्फ एक छेद है। आप यह मत समझना कि पानी कुआं है। पानी तो सागर ही है, कुआं तो सिर्फ उस सागर मे झांकने का आपके आंगन में उपाय है। सागर तो है ही नीचे फैला हुआ। वही है। जहां भी जल है, वहीं सागर है। हां, आपके आंगन में एक छेद खोद लेते है आप। कुएं से पानी नहीं खोदते, कुएं से सिर्फ मिट्टी अलग करते है, परत तोड़ देते है, एक छेद हो जाता है; अपने ही घर में सागर को झांकने का उपाय हो जाता है।

लेकिन कुआं बनाया हुआ है। और अगर कुआं इसकी खबर लाए-रिमेंबरेंस-कि सागर भी है और सागर की यात्रा करवा दे, तब तो कुआं सहयोगी हो जाता है। और अगर कुआं ही सागर बन जाए और हम सोचें कि यही रहा सागर, तो फिर सागर की, असीम की यात्रा नहीं हो पाती; फिर हम कुएं के किनारे ही बैठे समाप्त होते हैं।

शास्त्र कुएं हैं। जो जानते है, खोदते हैं। और शब्द की सीमा में छेद बनाते हैं। जो कहा जा सकता है, उसकी सीमा में छेद बनाते हैं। और अनकहे की थोड़ी-सी झलक, थोड़ा-सा दर्शन करवाते हैं। इस आशा में कि इसको देखकर अनंत की यात्रा पर कोई निकलेगा। इसलिए नहीं कि इसे देखकर कोई बैठ जाएगा और तृप्त हो जाएगा।

कुआं सागर है, सीमा में बंधा। सागर कुआं है, असीम में मुक्त। शास्त्र ज्ञान है, सीमा में बंधा। ज्ञान शास्त्र है, असीम में मुक्त।

तो कृष्ण जब वेद की, शब्द की बात कर रहे है, तो निंदा नहीं है, सिर्फ निर्देश है। और निर्देश स्मरण मे रखने योग्य है।

अभी इतना ही। फिर सांझ बात करेंगे।

•••

चौदहवां प्रवचन

फलाकांक्षारहित कर्म, जीवंत समता और परम पद

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।। 47।।

इससे तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं, और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

कर्मयोग का आधार-सूत्र : अधिकार है कर्म में, फल में नहीं; करने की स्वतंत्रता है, पाने की नहीं। क्योंकि करना एक व्यक्ति से निकलता है, और फल समष्टि से निकलता है। मैं जो करता हूं, वह मुझसे बहता है; लेकिन जो होता है, उसमें समस्त का हाथ है। करने की धारा तो व्यक्ति की है, लेकिन फल का सार समष्टि का है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, करने का अधिकार है तुम्हारा, फल की आकांक्षा अनधिकृत है।

लेकिन हम उलटे चलते हैं, फल की आकांक्षा पहले और कर्म पीछे। हम बैलगाड़ी को आगे और बैलों को पीछे बांधते है। कृष्ण कह रहे हैं, कर्म पहले, फल पीछे आता है-लाया नहीं जाता। लाने की कोई सामर्थ्य मनुष्य की नहीं है; करने की सामर्थ्य मनुष्य की है। क्यों ? ऐसा क्यों है ? क्योंकि मै अकेला नहीं हूं, विराट है।

मै सोचता हूं, कल सुबह उठूंगा, आपसे मिलूंगा। लेकिन कल सुबह सूरज भी उगेगा ? कल सुबह भी होगी ? जरूरी नहीं है कि कल सुबह हो ही। मेरे हाथ मे नहीं है कि कल सूरज उगे ही। एक दिन तो ऐसा जरूर आएगा कि सूरज डूबेगा और उगेगा नहीं। वह दिन कल भी हो सकता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अब यह सूरज चार हजार साल से ज्यादा नहीं चलेगा। इसकी उम्र चुकती है। यह भी बूढ़ा हो गया है। इसकी किरणे भी बिखर चुकी है। रोज बिखरती जा रही है न मालूम कितने अरबों वर्षो से! अब उसके भीतर की भट्ठी चुक रही है, अब उसका ईंधन चुक रहा है। चार हजार साल हमारे लिए बहुत बड़े है, सूरज के लिए ना-कुछ। चार हजार साल मे सूरज ठंडा पड़ जाएगा-किसी भी दिन। जिस दिन ठंडा पड़ जाएगा, उस दिन उगेगा नहीं; उस दिन सुबह नहीं होगी। उसकी पहली रात भी लोगों ने वचन दिए होंगे कि कल सुबह आते है-निश्चित।

लेकिन छोड़ें! सूरज चार हजार साल बाद डूबेगा और नहीं उगेगा। हमारा क्या पक्का भरोसा है कि कल सुबह हम ही उगेंगे! कल सुबह होगी, पर हम होंगे ? जरूरी नहीं है। और कल सुबह भी होगी, सूरज भी उगेगा, हम भी होंगे, लेकिन वचन को पूरा करने की आकांक्षा होगी ? जरूरी नहीं है। एक छोटी-सी कहानी कहूं।

सुना है मैंने कि चीन में एक सम्राट ने अपने मुख्य वजीर को, बड़े वजीर को फांसी की सजा दे दी। कुछ नाराजगी थी। लेकिन नियम था उस राज्य का कि फांसी के एक दिन पहले स्वयं सम्राट फांसी पर लटकने वाले कैदी से मिले, और उसकी कोई आखिरी आकांक्षा हो तो पूरी कर दे। निश्चित ही, आखिरी

आकांक्षा जीवन को बचाने की नहीं हो सकती थी। वह बंदिश थी। उतनी भर आकांक्षा नहीं हो सकती थी।

सम्राट पहुंचा-कल सुबह फांसी होगी-आज संध्या, और अपने वजीर से पूछा कि क्या तुम्हारी इच्छा है? पूरी करूं! क्योंकि कल तुम्हारा अंतिम दिन है। वजीर एकदम दरवाजे के बाहर की तरफ देखकर रोने लगा। सम्राट ने कहा, तुम और रोते हो? कभी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता, तुम्हारी आंखें और आंसुओं से भरी!

बहुत बहादुर आदमी था। नाराज सम्राट कितना ही हो, उसकी बहादुरी पर कभी शक न था। तुम और रोते हो! क्या मौत से डरते हो? उस वजीर ने कहा, मौत! मौत से नहीं रोता, रोता किसी और बात से हूं। सम्राट ने कहा, बोलो, मैं पूरा कर दूं। वजीर ने कहा, नहीं, वह पूरा नहीं हो सकेगा, इसलिए जाने दें। सम्राट जिद्द पर अड़ गया कि क्यों नहीं हो सकेगा? आखिरी इच्छा मुझे पूरी ही करनी है।

तो उस वजीर ने कहा, नहीं मानते हैं तो सुन लें, कि आप जिस घोड़े पर बैठकर आए हैं, उसे देखकर रोता हूं। सम्राट ने कहा, पागल हो गए? उस घोड़े को देखकर रोने जैसा क्या है? वजीर ने कहा, मैंने एक कला सीखी थी; तीस वर्ष लगाए उस कला को सीखने में। वह कला थी कि घोड़ों को आकाश में उड़ना सिखाया जा सकता है, लेकिन एक विशेष जाति के घोड़े को। उसे खोजता रहा, वह नहीं मिला। और कल सुबह मैं मर रहा हूं, जो सामने घोड़ा खड़ा है, वह उसी जाति का है, जिस पर आप सवार होकर आए हैं।

सम्राट के मन को लोभ पकड़ा। आकाश में घोड़ा उड़ सके, तो उस सम्राट की कीर्ति का कोई अंत न रहे पृथ्वी पर। उसने कहा, फिक्र छोड़ो मौत की! कितने दिन लगेंगे, घोड़ा आकाश में उड़ना सीख सके? कितना समय लगेगा? उस वजीर ने कहा, एक वर्ष। सम्राट ने कहा, बहुत ज्यादा समय नहीं है। अगर घोड़ा उड़ सका तो ठीक, अन्यथा मौत एक साल बाद। फांसी एक साल बाद भी लग सकती है, अगर घोड़ा नहीं उड़ा। अगर उड़ा तो फांसी से भी बच जाओगे, आधा राज्य भी तुम्हें भेंट कर दूंगा।

वजीर घोड़े पर बैठकर घर आ गया। पत्नी-बच्चे रो रहे थे, बिलख रहे थे। आखिरी रात थी। घर आए वजीर को देखकर सब चकित हुए। कहा, कैसे आ गए? वजीर ने कहानी बताई। पत्नी और जोर से रोने लगी। उसने कहा, तुम पागल तो नही हो? क्योंकि मै भलीभांति जानती हूं, तुम कोई कला नहीं जानते, जिससे घोड़ा उड़ना सीख सके। व्यर्थ ही झूठ बोले। अब यह साल तो हमें मौत से भी बदतर हो जाएगा। और अगर मांगा ही था समय, तो इतनी कंजूसी क्या की? बीस, पच्चीस, तीस वर्ष मांग सकते थे! एक वर्ष तो ऐसे चुक जाएगा कि अभी आया अभी गया, रोते-रोते चुक जाएगा।

उस वजीर ने कहा, फिक्र मत कर; एक वर्ष बहुत लंबी बात है। शायद, शायद बुद्धिमानी के बुनियादी सूत्र का उसे पता था। और ऐसा ही हुआ। वर्ष बड़ा लंबा शुरू हुआ। पत्नी ने कहा, कैसा लंबा! अभी चुक जाएगा। वजीर ने कहा, क्या भरोसा है कि मै बचूं वर्ष मे? क्या भरोसा है, घोड़ा बचे? क्या भरोसा है, राजा बचे? बहुत-सी कंडीशंस पूरी हो, तब वर्ष पूरा होगा। और ऐसा हुआ कि न वजीर बचा, न घोड़ा बचा, न राजा बचा। वह वर्ष के पहले तीनों ही मर गए।

कल की कोई भी अपेक्षा नही की जा सकती। फल सदा कल है, फल सदा भविष्य मे है। कर्म सदा अभी है, यही। कर्म किया जा सकता है। कर्म वर्तमान है, फल भविष्य है। इसलिए भविष्य के लिए आशा बांधनी, निराशा बांधनी है। कर्म अभी किया जा सकता है, अधिकार है। वर्तमान मे हम है। भविष्य मे हम होगे, यह भी तय नही। भविष्य मे क्या होगा, कुछ भी तय नही। हम अपनी ओर से कर ले, इतना काफी है। हम मांगे न, हम अपेक्षा न रखें, हम फल की प्रतीक्षा न करें, हम कर्म करें और फल प्रभु पर छोड़ दें-यही बुद्धिमानी का गहरे से गहरा सूत्र है।

इस संबंध में यह बहुत मजेदार बात है कि जो लोग जितनी ज्यादा फल की आकांक्षा करते है, उतना ही कम कर्म करते है। असल मे फल की आकांक्षा में इतनी शक्ति लग जाती है कि कर्म करने योग्य बचती नही। असल मे फल की आकांक्षा में मन इतना उलझ जाता है, भविष्य की यात्रा पर इतना निकल जाता है

कि वर्तमान में होता ही नहीं। असल मे फल की आकांक्षा में चित्त ऐसा रस से भर जाता है कि कर्म विरस हो जाता है, रसहीन हो जाता है।

इसलिए यह बहुत मजे का दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जितना फलाकांक्षा से भरा चित्त, उतना ही कर्महीन होता है। और जितना फलाकांक्षा से मुक्त चित्त, उतना ही पूर्णकर्मी होता है। क्योंकि उसके पास कर्म ही बचता है, फल तो होता नहीं, जिसमें बंटवारा कर सके। सारी चेतना, सारा मन, सारी शक्ति, सब कुछ इसी क्षण, अभी कर्म पर लग जाती है।

स्वभावतः, जिसका सब कुछ कर्म पर लग जाता है, उसके फल के आने की संभावना बढ़ जाती है। स्वभावतः, जिसका सब कुछ कर्म पर नहीं लगता, उसके फल के आने की संभावना कम हो जाती है।

इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जो जितनी फलाकांक्षा से भरा है, उतनी ही फल के आने की उम्मीद कम है। और जिसने जितनी फल की आकांक्षा छोड़ दी है, उतनी ही फल के आने की उम्मीद ज्यादा है। यह जगत बहुत उलटा है। और परमात्मा का गणित साधारण गणित नहीं है, बहुत असाधारण गणित है।

जीसस का एक वचन है कि जो बचाएगा, उससे छीन लिया जाएगा। जो दे देगा, उसे सब कुछ दे दिया जाएगा। जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाता है, व्यर्थ ही अपने को खोता है। क्योंकि उसे परमात्मा के गणित का पता नहीं है। जो अपने को खोता है, वह पूरे परमात्मा को ही पा लेता है।

तो जब कर्म का अधिकार है और फल की आकांक्षा व्यर्थ है, ऐसा कृष्ण कहते हैं, तो यह मत समझ लेना कि फल मिलता नहीं; ऐसा भी मत समझ लेना कि फल का कोई मार्ग नहीं है। कर्म ही फल का मार्ग है; आकांक्षा, फल की आकांक्षा, फल का मार्ग नहीं है। इसलिए कृष्ण जो कहते हैं, उससे फल की अधिकतम, आप्टिमम संभावना है मिलने की। और हम जो करते हैं, उससें फल के खोने की मैक्सिमम, अधिकतम संभावना है और लघुतम, मिनिमम मिलने की संभावना है।

जो फल की सारी ही चिंता छोड़ देता है, अगर धर्म की भाषा में कहें, तो कहना होगा, परमात्मा उसके फल की चिंता कर लेता है। असल में छोड़ने का भरोसा इतना बड़ा है, छोड़ने का संकल्प इतना बड़ा है, छोड़ने की श्रद्धा इतनी बड़ी है कि अगर इतनी बड़ी श्रद्धा के लिए भी परमात्मा से कोई प्रत्युत्तर नहीं है, तो फिर परमात्मा नहीं हो सकता है। इतनी बड़ी श्रद्धा के लिए-कि कोई कर्म करता है और फल की बात ही नहीं करता, कर्म करता है और सो जाता है और फल का स्वप्न भी नहीं देखता-इतनी बड़ी श्रद्धा से भरे हुए चित्त को भी अगर फल न मिलता हो, तो फिर परमात्मा के होने का कोई कारण नहीं है। इतनी श्रद्धा से भरे चित्त के चारों ओर से समस्त शक्तियां दौड़ पड़ती है।

और जब आप फलाकांक्षा करते है, तब आपको पता है, आप अश्रद्धा कर रहे है! शायद इसको कभी सोचा न हो कि फलाकांक्षा अश्रद्धा, गहरी से गहरी अनास्था, और गहरी से गहरी नास्तिकता है। जब आप कहते है, फल भी मिले, तो आप यह कह रहे है कि अकेले कर्म से निश्चय नहीं है फल का; मुझे फल की आकांक्षा भी करनी पड़ेगी। आप कहते है, दो और दो चार जोड़ता तो हूं, जुड़कर चार हों भी। इसका मतलब यह है कि दो और दो जुड़कर चार होते है, ऐसे नियम की कोई भी श्रद्धा नहीं है। हों भी, न भी हों!

जितना अश्रद्धालु चित्त है, उतना फलातुर होता है। जितना श्रद्धा से परिपूर्ण चित्त है, उतना फल को फेंक देता है-जाने समष्टि, जाने जगत, जाने विश्व की चेतना। मेरा काम पूरा हुआ, अब शेष काम उसका है।

फल की आकांक्षा वही छोड़ सकता है, जो इतना स्वयं पर, स्वयं के कर्म पर श्रद्धा से भरा है। और स्वभावतः जो इतनी श्रद्धा से भरा है, उसका कर्म पूर्ण हो जाता है, टोटल हो जाता है-टोटल एक्ट। और जब कर्म पूर्ण होता है, तो फल सुनिश्चित है। लेकिन जब चित्त बंटा होता है फल के लिए और कर्म के लिए, तब जिस मात्रा में फल की आकांक्षा ज्यादा है, कर्म का फल उतना ही अनिश्चित है।

सुबह एक मित्र आए। उन्होंने एक बहुत बढ़िया सवाल उठाया। मैं तो चला गया। शायद परसों मैंने कहीं कहा कि एक छोटे-से मजाक से महाभारत

पैदा हुआ। एक छोटे-से व्यंग्य से द्रौपदी के, महाभारत पैदा हुआ। छोटा-सा व्यंग्य द्रौपदी का ही, दुर्योधन के मन में तीर की तरह चुभ गया और द्रौपदी नग्न की गई, ऐसा मैंने कहा। मैं तो चला गया। उन मित्र के मन में बहुत तूफान आ गया होगा। हमारे मन भी तो बहुत छोटे-छोटे प्यालियों जैसे हैं, जिनमें बहुत छोटे-से हवा के झोंके से तूफान आ जाता है-चाय की प्याली से ज्यादा नहीं! तूफान आ गया होगा। मैं तो चला गया, मंच पर वे चढ़ आए होंगे। उन्होंने कहा, तद्दन खोटी बात छे, बिलकुल झूठी बात है; द्रौपदी कभी नग्न नहीं की गई।

द्रौपदी नग्न की गई; हुई नहीं-यह दूसरी बात है। द्रौपदी पूरी तरह नग्न की गई; हुई नहीं-यह बिलकुल दूसरी बात है। करने वालों ने कोई कोर-कसर न छोड़ी थी। करने वालों ने सारी ताकत लगा दी थी। लेकिन फल आया नहीं, किए हुए के अनुकूल नहीं आया फल-यह दूसरी बात है।

असल में, जो द्रौपदी को नग्न करना चाहते थे, उन्होने क्या रख छोड़ा था! उनकी तरफ से कोई कोर-कसर न थी। लेकिन हम सभी कर्म करने वालों को, अज्ञात भी बीच में उतर आता है, इसका कभी कोई पता नहीं है। वह जो कृष्ण की कथा है, वह अज्ञात के उतरने की कथा है। अज्ञात के भी हाथ हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते।

हम ही नहीं हैं इस पृथ्वी पर। मै अकेला नहीं हूं। मेरी अकेली आकांक्षा नहीं है, अनंत आकांक्षाएं हैं। और अनंत की भी आकांक्षा है। और उन सब के गणित पर अंततः तय होगा कि क्या हुआ। अकेला दुर्योधन ही नहीं है नग्न करने में, द्रौपदी भी तो है जो नग्न की जा रही है। द्रौपदी की भी तो चेतना है, द्रौपदी का भी तो अस्तित्व है। और अन्याय होगा यह कि द्रौपदी वस्तु की तरह प्रयोग की जाए। उसके पास भी चेतना है और व्यक्ति है; उसके पास भी संकल्प है। साधारण स्त्री नहीं है द्रौपदी।

सच तो यह है कि द्रौपदी के मुकाबले की स्त्री पूरे विश्व के इतिहास में दूसरी नहीं है। कठिन लगेगी बात। क्योंकि याद आती है सीता की, याद आती है सावित्री की। और भी बहुत यादें हैं। फिर भी मैं कहता हूं, द्रौपदी का कोई

मुकाबला ही नहीं है। द्रौपदी बहुत ही अद्वितीय है। उसमें सीता की मिठास तो है ही, उसमें क्लियोपेट्रा का नमक भी है। उसमें क्लियोपेट्रा का सौंदर्य तो है ही, उसमें गार्गी का तर्क भी है। असल में पूरे महाभारत की धुरी द्रौपदी है। वह सारा युद्ध उसके आस-पास हुआ है।

लेकिन चूंकि पुरुष कथाएं लिखते है, इसलिए कथाओ में पुरुष-पात्र बहुत उभरकर दिखाई पड़ते हैं! असल में दुनिया की कोई महाकथा स्त्री की धुरी के बिना नहीं चलती। सब महाकथाएं स्त्री की धुरी पर घटित होती है। वह बड़ी रामायण सीता की धुरी पर घटित हुई है; उसमे केंद्र मे सीता है। राम और रावण तो ट्राएंगल के दो छोर है; धुरी पर सीता है।

ये कौरव और पांडव और यह सारा पूरा महाभारत और यह सारा युद्ध द्रौपदी की धुरी पर घटा है। उस युग की और सारे युगो की सुंदरतम स्त्री है वह। नही, आश्चर्य नही है कि दुर्योधन ने भी उसे चाहा हो। असल में, उस युग में कौन पुरुष होगा जिसने उसे न चाहा हो! उसका अस्तित्व उसके प्रति चाह पैदा करने वाला था। दुर्योधन ने भी उसे चाहा है और फिर वह चली गई अर्जुन के हाथ।

और यह भी बड़े मजे की बात है कि द्रौपदी को पांच भाइयों मे बांटना पडा। कहानी बड़ी सरल है, उतनी सरल घटना नही हो सकती। कहानी तो इतनी ही सरल है कि अर्जुन ने आकर बाहर से कहा कि मां देखो, हम क्या ले आए है! और मां ने कहा, जो भी ले आए हो, वह पांचो भाई बांट लो। लेकिन इतनी सरल घटना हो नहीं सकती। क्योकि जब बाद मे मां को भी तो पता चला होगा कि यह मामला वस्तु का नही, स्त्री का है। यह कैसे बांटी जा सकती है! तो कौन-सी कठिनाई थी कि कुंती कह देती कि भूल हुई। मुझे क्या पता कि तुम पत्नी ले आए हो!

नहीं, लेकिन मै जानता हूं कि जो संघर्ष दुर्योधन और अर्जुन के बीच होता, वह संघर्ष पांच भाइयों के बीच भी हो सकता था। द्रौपदी ऐसी थी; वे पांच भाई भी कट-मर सकते थे उसके लिए। उसे बांट देना ही सुगमतम राजनीति थी। वह घर भी कट सकता था। वह महायुद्ध, जो पीछे कौरवों-पांडवों में हुआ, वह पांडवों-पांडवों में भी हो सकता था।

इसलिए कहानी मेरे लिए उतनी सरल नहीं है। कहानी बहुत प्रतीकात्मक है और गहरी है। वह यह खबर देती है कि स्त्री वह ऐसी थी कि पांच भाई भी लड़ जाते। इतनी गुणी थी, साधारण नही थी, असाधारण थी। उसको नग्न करना आसान बात नही थी, आग से खेलना था। तो अकेला दुर्योधन नही है कि नग्न कर ले। द्रौपदी भी है।

और ध्यान रहे, बहुत बाते है इसमे, जो खयाल मे ले लेने जैसी है। जब तक कोई स्त्री स्वयं नग्न न होना चाहे, तब तक इस जगत मे कोई पुरुष किसी स्त्री को नग्न नही कर सकता है, नही कर पाता है। वस्त्र उतार भी ले, तो भी नग्न नही कर सकता है। नग्न होना बडी घटना है वस्त्र उतरने से, निर्वस्त्र होने से नग्न होना बहुत भिन्न घटना है। निर्वस्त्र करना बहुत कठिन बात नही है, कोई भी कर सकता है, लेकिन नग्न करना बहुत दूसरी बात है। नग्न तो कोई स्त्री तभी होती है, जब वह किसी के प्रति खुलती है स्वयं। अन्यथा नही होती; वह ढंकी ही रह जाती है। उसके वस्त्र छीने जा सकते है, लेकिन वस्त्र छीनना स्त्री को नग्न करना नही है। यह भी।

और यह भी कि द्रौपदी जैसी स्त्री को नहीं पा सका दुर्योधन। उसके व्यंग्य तीखे पड गए उसके मन पर। बड़ा हारा हुआ है। हारे हुए व्यक्ति-जैसे कि क्रोध मे आई हुई बिल्लियां खंभे नोचने लगती है-वैसा करने लगते है। और स्त्री के सामने जब भी पुरुष हारता है-और इससे बड़ी हार पुरुष को कभी नहीं होती। पुरुष पुरुष से लड़ ले, हार-जीत होती है। लेकिन पुरुष जब स्त्री से हारता है किसी भी क्षण मे, तो इससे बड़ी कोई हार नही होती।

तो दुर्योधन उस दिन उसे नग्न करने का जितना आयोजन करके बैठा है, वह सारा आयोजन भी हारे हुए पुरुष-मन का है। और उस तरफ जो स्त्री खड़ी है हंसने वाली, वह कोई साधारण स्त्री नहीं है। उसका भी अपना संकल्प है, अपना विल है। उसकी भी अपनी सामर्थ्य है; उसकी भी अपनी श्रद्धा है; उसका भी अपना होना है। उसकी उस श्रद्धा में, वह जो कथा है, वह कथा तो काव्य है कि कृष्ण उसकी साड़ी को बढ़ाए चले जाते है। लेकिन मतलब सिर्फ इतना है कि जिसके पास अपना संकल्प है, उसे परमात्मा का सारा संकल्प तत्काल उपलब्ध हो जाता है। तो अगर परमात्मा के हाथ उसे मिल जाते है, तो कोई आश्चर्य नहीं।

तो मैंने कहा, और मैं फिर से कहता हूं, द्रौपदी नग्न की गई, लेकिन हुई नहीं। नग्न करना बहुत आसान है, उसका हो जाना बहुत और बात है। बीच में अज्ञात विधि आ गई, बीच में अज्ञात कारण आ गए। दुर्योधन ने जो चाहा, वह हुआ नहीं। कर्म का अधिकार था, फल का अधिकार नहीं था।

यह द्रौपदी बहुत अनूठी है। यह पूरा युद्ध हो गया। भीष्म पड़े है शय्या पर-बाणों की शय्या पर-और कृष्ण कहते है पांडवों को कि पूछ लो धर्म का राज! और वह द्रौपदी हंसती है। उसकी हंसी पूरे महाभारत पर छाई है। वह हंसती है कि इनसे पूछते है धर्म का रहस्य! जब मै नग्न की जा रही थी, तब ये सिर झुकाए बैठे थे। उसका व्यंग्य गहरा है। वह स्त्री बहुत असाधारण है।

काश! हिंदुस्तान की स्त्रियों ने सीता को आदर्श न बनाकर द्रौपदी को आदर्श बनाया होता, तो हिंदुस्तान की स्त्री की शान और होती।

लेकिन नहीं, द्रौपदी खो गई है। उसका कोई पता नहीं है। खो गई। एक तो पांच पतियो की पत्नी है, इसलिए मन को पीड़ा होती है। लेकिन एक पति की पत्नी होना भी कितना मुश्किल है, उसका पता नहीं है। और जो पांच पतियों को निभा सकी है, वह साधारण स्त्री नहीं है, असाधारण है, सुपर ह्यूमन है। सीता भी अतिमानवीय है, लेकिन टू ह्यूमन के अर्थो में। और द्रौपदी भी अतिमानवीय है, लेकिन सुपर ह्यूमन के अर्थो में।

पूरे भारत के इतिहास में द्रौपदी को सिर्फ एक आदमी ने प्रशंसा दी है। और एक ऐसे आदमी ने जो बिलकुल अनपेक्षित है। पूरे भारत के इतिहास में डाक्टर राम मनोहर लोहिया को छोड़कर किसी आदमी ने द्रौपदी को सम्मान नहीं दिया है, हैरानी की बात है। मेरा तो लोहिया से प्रेम इस बात से हो गया कि पांच हजार साल के इतिहास में एक आदमी, जो द्रौपदी को सीता के ऊपर रखने को तैयार है।

यह जो मैंने कहा, आदमी करता है कर्म फल की अति आकांक्षा से, कर्म भी नहीं हो पाता और फल की अति आकांक्षा से दुराशा और निराशा ही हाथ लगती है। कृष्ण ने यह बहुत बहुमूल्य सूत्र कहा है। इसे हृदय के बहुत कोने में सम्हालकर रख लेने जैसा है।

करें कर्म, वह हाथ में है, अभी है, यहीं है। फल को छोड़ें। फल को छोड़ने का साहस दिखलाएं। कर्म को करने का संकल्प, फल को छोड़ने का साहस, फिर कर्म निश्चित ही फल ले आता है। लेकिन आप उस फल को मत लाएं, वह तो कर्म के पीछे छाया की तरह चला आता है। और जिसने छोड़ा भरोसे से, उसके छोड़ने मे ही, उसके भरोसे मे ही, जगत की सारी ऊर्जा सहयोगी हो जाती है।

जैसे ही हम मांग करते है, ऐसा हो, वैसे ही हम जगत-ऊर्जा के विपरीत खड़े हो जाते है और शत्रु हो जाते है। जैसे ही हम कहते है, जो तेरी मर्जी; जो हमे करना था, वह हमने कर लिया, अब तेरी मर्जी पूरी हो; हम जगत-ऊर्जा के प्रति मैत्री से भर जाते है। और जगत और हमारे बीच, जीवन-ऊर्जा और हमारे बीच, परमात्मा और हमारे बीच एक हार्मनी, एक संगीत फलित हो जाता है। जैसे ही हमने कहा कि नही, किया भी मैने, जो चाहता हूं वह हो भी, वैसे ही हम जगत के विपरीत खडे हो गए है। और जगत के विपरीत खडे होकर सिवाय निराशा के, असफलता के कभी कुछ हाथ नही लगता है। इसलिए कर्मयोगी के लिए कर्म ही अधिकार है। फल! फल परमात्मा का प्रसाद है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 48।।

हे धनंजय, आसक्ति को त्यागकर, सिद्धि और असिद्धि मे समान बुद्धि वाला होकर, योग मे स्थित हुआ कर्मो को कर। यह समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है।

समता ही योग है-इक्विलिब्रियम, संतुलन, संगीत। दो के बीच चुनाव नही, दो के बीच समभाव; विरोधों के बीच चुनाव नही, अविरोध, दो अतियो के बीच, दो पोलेरिटीज के बीच, दो ध्रुवो के बीच पसंद-नापसंद नहीं, राग-द्वेष नहीं, साक्षीभाव। समता का अर्थ ठीक से समझ लेना जरूरी है, क्योंकि कृष्ण कहते हैं, वही योग है।

समत्व कठिन है बहुत। चुनाव सदा आसान है। मन कहता है, इसे चुन लो, जिसे चुनते हो, उससे विपरीत को छोड़ दो। कृष्ण कहते हैं, चुनो ही मत। दोनों समान हैं, ऐसा जानो। और जब दोनों समान हैं, तो चुनेंगे कैसे? चुनाव तभी तक हो सकता है, जब असमान हों। एक हो श्रेष्ठ, एक हो अश्रेष्ठ; एक में दिखती हो सिद्धि, एक में दिखती हो असिद्धि; एक में दिखता हो शुभ, एक में दिखता हो अशुभ। कहीं न कहीं कोई तुलना का उपाय हो, कंपेरिजन हो, तभी चुनाव है। अगर दोनों ही समान हैं, तो चुनाव कहां?

चौराहे पर खड़े हैं। अगर सभी रास्ते समान हैं, तो जाना कहां? जाएंगे कैसे? चुनेंगे कैसे? खड़े हो जाएंगे। लेकिन अगर एक रास्ता ठीक है और एक गलत, तो जाएंगे, गति होगी। जहां भी असमान दिखा, तत्काल चित्त यात्रा पर निकल जाता है-दि वेरी मोमेंट। यहां पता चला कि वह ठीक, पता नहीं चला कि चित्त गया। पता चला कि वह गलत, पता नहीं चला कि चित्त लौटा। पता लगा प्रीतिकर, पता लगा अप्रीतिकर; पता लगा श्रेयस, पता लगा अश्रेयस-यहां पता लगा मन को, कि मन गया। पता लगना ही मन के लिए तत्काल रूपांतरण हो जाता है। और समता उसे उपलब्ध होती है, जो बीच में खड़ा हो जाता है।

कभी रस्सी पर चलते हुए नट को देखा? नट चुन सकता है, किसी भी ओर गिर सकता है। गिर जाए, झंझट के बाहर हो जाए। लेकिन दोनों गिराव के बीच में सम्हालता है। अगर वह झुकता भी दिखाई पड़ता है आपको, तो सिर्फ अपने को सम्हालने के लिए, झुकने के लिए नहीं। और आप अगर सम्हले भी दिखते हैं, तो सिर्फ झुकने के लिए। आप अगर एक क्षण चौरस्ते पर खड़े भी होते हैं, तो चुनने के लिए, कि कौन-से रास्ते से जाऊं! अगर एक क्षण विचार भी करते हैं, तो चुनाव के लिए, कि क्या ठीक है! क्या करूं, क्या न करूं! क्या अच्छा है, क्या बुरा है! किससे सफलता मिलेगी, किससे असफलता मिलेगी! क्या होगा लाभ, क्या होगी हानि! अगर चिंतन भी करते हैं कभी, तो चुनाव के लिए।

नट को देखा है रस्सी पर! झुकता भी दिखता है, लेकिन झुकने के लिए नहीं। जब वह बाएं झुकता है, तब आपने कभी खयाल किया है, कि बाएं वह

तभी झुकता है, जब दाएं गिरने का डर पैदा होता है। दाएं तब झुकता है, जब बाएं गिरने का डर पैदा होता है। वह दाएं गिरने के डर को बाएं झुककर बैलेंस करता है। बाएं और दाएं के बीच, राइट और लेफ्ट के बीच वह पूरे वक्त अपने को सम कर रहा है।

निश्चित ही, यह समता जड़ नहीं है, जैसा कि पत्थर पड़ा हो। जीवन में भी समता जड़ नहीं है, जैसा पत्थर पड़ा हो। जीवन की समता भी नट जैसी समता ही है-प्रतिपल जीवित है, सचेतन है, गतिमान है।

दो तरह की समता हो सकती है। एक आदमी सोया पड़ा है गहरी सुषुप्ति में, वह भी समता को उपलब्ध है। क्योंकि वहां भी कोई चुनाव नहीं है। लेकिन सुषुप्ति योग नहीं है। एक आदमी शराब पीकर रास्ते पर पड़ा है; उसे भी सिद्धि और असिद्धि में कोई फर्क नहीं है। लेकिन शराब पी लेना समता नहीं है, न योग है। यद्यपि कई लोग शराब पीकर भी योग की भूल में पड़ते हैं।

तो गांजा पीने वाले योगी भी हैं, चरस पीने वाले योगी भी है। और आज ही हैं, ऐसा नहीं है, अति प्राचीन हैं। और अभी तो उनका प्रभाव पश्चिम में बहुत बढ़ता जाता है। अभी तो बस्तियां बस गई है अमेरिका में, जहां लोग चरस पी रहे हैं। मैस्कलीन, लिसर्जिक एसिड, मारिजुआना, सब चल रहा है। वे भी इस खयाल में हैं कि जब नशे में धुत होते हैं, तो समता सध जाती है, क्योंकि चुनाव नहीं रहता।

कृष्ण अर्जुन को ऐसी समता को नहीं कह रहे हैं कि तू बेहोश हो जा! बेहोशी में भी चुनाव नहीं रहता, क्योंकि चुनाव करने वाला नहीं रहता। लेकिन जब चुनाव करने वाला ही न रहा, तो चुनाव के न रहने का क्या प्रयोजन है? क्या अर्थ है? क्या उपलब्धि है?

नहीं, चुनाव करने वाला है; चाहे तो चुनाव कर सकता है; नहीं करता है। और जब चाहते हुए चुनाव नहीं करता कोई, जानते हुए जब दो विरोधों से अपने को बचा लेता है, बीच में खड़ा हो जाता है, तो योग को उपलब्ध होता है, समाधि को उपलब्ध होता है।

सुषुप्ति और समाधि मे बड़ी समानता है। चाहे तो हम ऐसी परिभाषा कर सकते है कि सुषुप्ति मूर्च्छित समाधि है। और ऐसी भी कि समाधि जाग्रत सुषुप्ति है। बड़ी समानता है। सुषुप्ति मे आदमी प्रकृति की समता को उपलब्ध हो जाता है, समाधि मे व्यक्ति परमात्मा की समता को उपलब्ध होता है।

इसलिए दुनिया मे बेहोशी का जो इतना आकर्षण है, उसका मौलिक कारण धर्म है। शराब का जो इतना आकर्षण है, उसका मौलिक कारण धार्मिक इच्छा है।

आप कहेगे, क्या मै यह कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को शराब पीनी चाहिए? नही, मै यही कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को शराब नहीं पीनी चाहिए, क्योकि शराब धर्म का सब्स्टीटयूट बन सकती है। नशा धर्म का परिपूरक बन सकता है। क्योकि वहां भी एक तरह की समता, जड़ समता उपलब्ध होती है।

कृष्ण जिस समता की बात कर रहे है, वह सचेतन समता की बात है। उस युद्ध के क्षण मे तो बहुत सचेतन होना पड़ेगा न। युद्ध के क्षण मे तो बेहोश नहीं हुआ जा सकता, मारिजुआना और एल एस डी नही लिया जा सकता, न चरस पी जा सकती है। युद्ध के क्षण मे तो पूरा जागना होगा।

कभी आपने खयाल किया हो, न किया हो! जितने खतरे का क्षण होता है, आप उतने ही जागे हुए होते हो।

अगर हम यहां बैठे है, और यहां जमीन पर मै एक फीट चौड़ी और सौ फीट लंबी लकड़ी की पट्टी बिछा दूं और आपसे उस पर चलने को कहूं, तो कोई गिरेगा उस पट्टी पर से? कोई भी नही गिरेगा। बच्चे भी निकल जाएंगे, बूढ़े भी निकल जाएंगे, बीमार भी निकल जाएंगे; कोई नहीं गिरेगा। लेकिन फिर उस पट्टी को इस मकान की छत पर और दूसरे मकान की छत पर रख दे। वही पट्टी है, एक फीट चौड़ी है। ज्यादा चौड़ी नहीं हो गई, कम चौड़ी नहीं की, उतनी ही लंबी है। फिर हमसे कहा जाए, चलें इस पर! तब कितने लोग चलने को राजी होंगे?

गणित और विज्ञान के हिसाब से कुछ भी फर्क नहीं पड़ा है। पट्टी वही है, आप भी वही है। खतरा क्या है? डर क्या है? और जब आप नीचे निकल गए थे चलकर और नहीं गिरे थे, तो अभी गिर जाएंगे, इसकी संभावना क्या है?

नहीं, लेकिन आप कहेंगे, अब नहीं चल सकते। क्यों? क्योंकि जमीन पर चलते वक्त जागने की कोई भी जरूरत न थी, सोए-सोए भी चल सकते थे। अब इस पर जागकर चलना पड़ेगा; खतरा नीचे खड़ा है। इतना जागकर चलने का भरोसा नहीं है कि सौ फीट तक जागे रह सकेंगे। एक-दो फीट चलेंगे, होश खो जाएगा। कोई फिल्मी गाना बीच में आ जाएगा, कुछ और आ जाएगा; जमीन पर हो जाएंगे। नीचे एक कुत्ता ही भौंक देगा, तो सब समता समाप्त हो जाएगी। तो आप कहेंगे, नहीं, अब नहीं चल सकते। अब क्यों नहीं चल सकते हैं? अब एक नई जरूरत-खतरे में जागरण चाहिए।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि युद्ध का इतना आकर्षण भी खतरे का आकर्षण है। इसलिए कभी आपने खयाल किया, जब दुनिया में युद्ध चलता है, तो लोगों के चेहरों की रौनक बढ़ जाती है, घटती नहीं। और जो आदमी कभी आठ बजे नहीं उठा था, वह पांच बजे उठकर रेडियो खोल लेता है। पांच बजे से पूछता है, अखबार कहां है? जिंदगी में एक पुलक आ जाती है! बात क्या है? युद्ध के क्षण में इतनी पुलक?

युद्ध का खतरा हमारी नींद को थोड़ा कम करता है। हम थोड़े जागते है। जागने का अपना रस है। इसलिए दस-पंद्रह साल में सोई हुई मनुष्यता को एक युद्ध पैदा करना पड़ता है, क्योंकि और कोई रास्ता नहीं है। और किसी तरह जागने का उपाय नहीं है। और जब युद्ध पैदा हो जाता है, तो रौनक छा जाती है। जिंदगी में रस, पुलक और गति आ जाती है।

युद्ध के इस क्षण में कृष्ण बेहोशी की बात तो कह ही नहीं सकते हैं, वह वर्जित है; उसका कोई सवाल ही नहीं उठता है। फिर कृष्ण जिस समता की बात कर रहे हैं, जिस योग की, वह क्या है? वह है, दो के बीच, द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व, अचुनाव, च्वाइसलेसनेस। कैसे होगा यह? अगर आपने द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व होना भी चुना, तो वह भी चुनाव है।

इसे समझ लें। यह जरा थोड़ा कठिन पड़ेगा।

अगर आपने दो द्वंद्व के बीच निर्द्वंद्व होने को चुना, तो दैट टू इज़ ए

च्वाइस, वह भी एक चुनाव है। निर्द्वंद्व आप नहीं हो सकते। अब आप नए द्वंद्व में जुड़ रहे है-द्वंद्व में रहना कि निर्द्वंद्व रहना। अब यह द्वंद्व है, अब यह कांफ्लिक्ट है। अगर आप इसका चुनाव करते हैं कि निर्द्वंद्व रहेंगे हम, हम द्वंद्व में नहीं पड़ते, तो यह फिर चुनाव हो गया। अब जरा बारीक और नाजुक बात हो गई। लेकिन निर्द्वंद्व को कोई चुन ही नहीं सकता। निर्द्वंद्व अचुनाव में खिलता है; वह आपका चुनाव नही है। अचुनाव मे निर्द्वंद्व का फूल खिलता है; आप चुन नहीं सकते। तो आपको द्वंद्व और निर्द्वंद्व में नही चुनना है।

गीता के इस सूत्र को पढ़कर अनेक लोग मेरे पास आकर कहते है कि हम कैसे समतावान हो? यानी मतलब, हम समता को कैसे चुने? कृष्ण तो कहते है कि समता योग है, तो हम समता को कैसे पा ले?

वे समता को चुनने की तैयारी दिखला रहे है। कृष्ण कहते है, चुना कि समता खोई। फिर तुमने द्वंद्व बनाया-असमता और समता का द्वंद्व बना लिया। असमता छोड़नी है, समता चुननी है! इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम द्वंद्व का पेयर कैसा बनाते हो? बादशाह और गुलाम का बनाते हो, कि बेगम और बादशाह का बनाते हो-इससे कोई फर्क नही पड़ता। आप द्वंद्व बनाए बिना रह नहीं सकते। और जो द्वंद्व बनाता है, वह समता को उपलब्ध नही होता है। फिर कैसे? क्या है रास्ता?

रास्ता एक ही है कि द्वंद्व के प्रति जागें; कुछ करे मत, जस्ट बी अवेयर। जाने कि एक रास्ता यह और एक रास्ता यह और यह मै, तीन है यहां। यह रही सफलता, यह रही विफलता और यह रहा मै। यह तीसरा मै जो हूं, इसके प्रति जागें। और जैसे ही इस तीसरे के प्रति जागेंगे, जैसे ही यह थर्ड फोर्स, यह तीसरा तत्व नजर में आएगा, कि न तो मै सफलता हूं, न मैं विफलता हूं। विफलता भी मुझ पर आती है, सफलता भी मुझ पर आती है। सफलता भी चली जाती है, विफलता भी चली जाती है। सुबह होती है, सूरज खिलता है, रोशनी फैलती है। मैं रोशनी में खड़ा हो जाता हूं। फिर सांझ होती, अंधेरा आता है, फिर अंधेरा मेरे ऊपर छा जाता है। लेकिन न तो मैं प्रकाश हूं, न मै अंधेरा हूं। न तो मै दिन हूं, न मैं रात हूं। क्योंकि दिन भी मुझ पर आकर निकल जाता है और फिर भी मै होता हूं।

रात भी मुझ पर होकर निकल जाती है, फिर भी मै होता हूं। निश्चित ही, रात और दिन से मै अलग हूं, पृथक हूं, अन्य हूं।

यह बोध कि मै भिन्न हूं द्वंद्व से, द्वंद्व को तत्काल गिरा देता है और निर्द्वंद्व फूल खिल जाता है। वह समता का फूल योग है। और जो समता को उपलब्ध हो जाता है, उसे कुछ भी और उपलब्ध करने को बाकी नहीं बचता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू समत्व को उपलब्ध हो। छोड़ फिक्र सिद्धि की, असिद्धि की; सफलता, असफलता की; हिंसा-अहिंसा की; धर्म की, अधर्म की; क्या होगा, क्या नहीं होगा; ईदर आर छोड़! तू अपने में खड़ा हो। तू जाग। तू जागकर द्वंद्व को देख। तू समता में प्रवेश कर। क्योंकि समता ही योग है।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।। 49।।

इस समत्व रूप बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यंत तुच्छ है, इसलिए हे धनंजय, समत्वबुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वासना वाले अत्यंत दीन हैं।

कृष्ण कहते हैं, धनंजय, बुद्धियोग को खोजो। मैने जो अभी कहा, द्वंद्व को छोड़ो, स्वयं को खोजो; उसी को कृष्ण कहते हैं, बुद्धि को खोजो। क्योंकि स्वयं का जो पहला परिचय है, वह बुद्धि है। स्वयं का जो पहला परिचय है। अपने से परिचित होने चलेंगे, तो द्वार पर ही जिससे परिचय होगा, वह बुद्धि है। स्वयं का द्वार बुद्धि है। और स्वयं के इस द्वार में से प्रवेश किए बिना कोई भी न आत्मवान होता है, न ज्ञानवान होता है। यह बुद्धि का द्वार है। लेकिन बुद्धि के द्वार पर हमारी दृष्टि नहीं जाती, क्योंकि बुद्धि से हमेशा हम कर्मों के चुनाव का काम करते रहते हैं।

बुद्धि के दो उपयोग हो सकते हैं। सब दरवाजों के दो उपयोग होते हैं। प्रत्येक दरवाजे के दो उपयोग हैं। होंगे ही। सब दरवाजे इसीलिए बनाए जाते हैं; उनसे बाहर भी जाया जा सकता है, उनसे भीतर भी जाया जा सकता है। दरवाजे

का मतलब ही यह होता है कि उससे बाहर भी जाया जा सकता है, उससे भीतर भी जाया जा सकता है। जिससे भी बाहर जा सकते हैं, उससे ही भीतर भी जा सकते हैं। लेकिन हमने अब तक बुद्धि के दरवाजे का एक ही उपयोग किया है-बाहर जाने का। हमने अब तक उसका एक्जिट का उपयोग किया है, एंट्रेंस का उपयोग नहीं किया। जिस दिन आदमी बुद्धि का एंट्रेंस की तरह, प्रवेश की तरह उपयोग करता है, उसी दिन-उसी दिन-जीवन में क्रांति फलित हो जाती है।

अर्जुन भी बुद्धि का उपयोग कर रहा है। ऐसा नहीं कि नहीं कर रहा है; कहना चाहिए, जरूरत से ज्यादा ही कर रहा है। इतना ज्यादा कर रहा है कि कृष्ण को भी उसने दिक्कत में डाला हुआ है। बुद्धि का भलीभांति उपयोग कर रहा है। निर्बुद्धि नहीं है, बुद्धि काफी है। वह काफी बुद्धि ही उसे कठिनाई में डाले हुए है। निर्बुद्धि वहां और भी बहुत हैं, वे परेशान नहीं हैं।

लेकिन बुद्धि का वह एक ही उपयोग जानता है। वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है कि यह करूं तो ठीक, कि वह करूं तो ठीक? ऐसा होगा, तो क्या होगा? वैसा होगा, तो क्या होगा? वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है बहिर्जगत के संबंध में; वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है फलों के लिए; वह बुद्धि का उपयोग कर रहा है कि कल क्या होगा? परसों क्या होगा? संतति कैसी होगी? कुल नाश होगा? क्या होगा? क्या नहीं होगा? वह बुद्धि का सारा उपयोग कर रहा है। सिर्फ एक उपयोग नहीं कर रहा है-भीतर प्रवेश का।

कृष्ण उससे कहते हैं, धनंजय, कर्म के संबंध में ही सोचते रहना बड़ी निकृष्ट उपयोगिता है बुद्धि की। उसके संबंध में भी सोचो, जो कर्म के संबंध में सोच रहा है। कर्म को ही देखते रहना, बाहर ही देखते रहना, बुद्धि का अत्यल्प उपयोग है-निकृष्टतम!

अगर इसे ऐसा कहें कि व्यवहार के लिए ही बुद्धि का उपयोग करना-क्या करना, क्या नहीं करना-बुद्धि की क्षमता का न्यूनतम उपयोग है। और इसलिए हमारी बुद्धि पूरी काम में नहीं आती, क्योंकि उतनी बुद्धि की जरूरत नहीं है। जहां सुई से काम चल जाता है, वहां तलवार की जरूरत ही नहीं पड़ती।

अगर वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है कि श्रेष्ठतम मनुष्य भी अपनी

बुद्धि के पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा का उपयोग नहीं करते हैं; कुल पंद्रह प्रतिशत, वह भी श्रेष्ठतम! श्रेष्ठतम यानी कोई आइंस्टीन या कोई बर्ट्रेंड रसेल। तो जो दुकान पर बैठा है, वह आदमी कितना काम करता है? जो दफ्तर में काम कर रहा है, वह आदमी कितना काम करता है? जो स्कूल में पढ़ा रहा है, वह आदमी कितना काम करता है बुद्धि से? दो-ढाई परसेंट, इससे ज्यादा नहीं। दो-ढाई परसेंट भी पूरी जिंदगी नहीं करता आदमी उपयोग, केवल अठारह साल की उम्र तक। अठारह साल की उम्र के बाद तो मुश्किल से ही कोई उपयोग करता है। क्योंकि कई बातें बुद्धि सीख लेती है, कामचलाऊ सब बातें बुद्धि सीख लेती है, फिर उन्हीं से काम चलाती रहती है जिंदगीभर।

अठारह साल के बाद मुश्किल से आदमी मिलेगा, जिसकी बुद्धि बढ़ती है। आप कहेंगे, गलत। सत्तर साल के आदमी के पास अठारह साल के आदमी से ज्यादा अनुभव होता है। अनुभव ज्यादा होता है, बुद्धि ज्यादा नहीं होती; अठारह साल की ही बुद्धि होती है। उसी बुद्धि से वह, उसी चम्मच से वह अनुभव को इकट्ठा करता चला जाता है। चम्मच बड़ी नहीं करता; चम्मच वही रहती है; बस उससे अनुभव को इकट्ठा करता चला जाता है। अनुभव का ढेर बढ़ जाता है उसके पास; बाकी चम्मच जो उसकी बुद्धि की होती है, वह अठारह साल वाली ही होती है।

दूसरे महायुद्ध में तो बड़ी कठिनाई हुई। कठिनाई यह हुई कि दूसरे महायुद्ध में अमेरिका को जांच-पड़ताल करनी पड़ी कि हम जिन सैनिकों को भेजते हैं, उनका आई.क्यू. कितना है, उनका बुद्धि-माप कितना है। युद्ध में भेज रहे हैं, तो उनकी बुद्धि की जांच भी तो होनी चाहिए! शरीर की जांच तो हो जाती है कि यह आदमी ताकतवर है, लड़ सकता है, सब ठीक। लेकिन अब युद्ध जो है, वह शरीर से नहीं चल रहा है, मस्कुलर नहीं रह गया है। अब युद्ध बहुत कुछ मानसिक हो गया है। बुद्धि कितनी है?

तो बड़ी हैरानी हुई। युद्ध के मैदान के लिए जो सैनिक भर्ती हो रहे थे, उनकी जांच करने से पता चला कि उन सभी सैनिकों की जो औसत बुद्धि की उम्र है, वह

तेरह साल से ज्यादा की नहीं है। तेरह साल! उसमें यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं, उसमें मैट्रिक से कम पढ़ा-लिखा तो कोई भी नहीं है। कहना चाहिए, पढ़े-लिखे से पढ़ा-लिखा वर्ग है। उसकी उम्र भी उतनी ही है जितनी तेरह साल के बच्चे की होनी चाहिए-बुद्धि की। बड़ी चौकाने वाली, बड़ी घबराने वाली बात है। मगर कारण है। और कारण यह है कि बाहर की दुनिया में जरूरत ही नहीं है बुद्धि की इतनी।

इसलिए जब कृष्ण कहते हैं तो बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य कह रहे है वह कि निकृष्टतम उपयोग है कर्म के लिए बुद्धि का। निकृष्टतम! बुद्धि के योग्य ही नहीं है वह। वह बिना बुद्धि के भी हो सकता है। मशीनें आदमी से अच्छा काम कर लेती है।

सच तो यह है कि आदमी रोज मशीनों से हारता जा रहा है, और धीरे-धीरे आदमियो को कारखाने, दफ्तर के बाहर होना पड़ेगा। मशीनें उनकी जगह लेती चली जाएंगी। क्योंकि आदमी उतना अच्छा काम नहीं कर पाता, जितना ज्यादा अच्छा मशीने कर लेती है। उसका कारण सिर्फ एक ही है कि मशीनों के पास बिलकुल बुद्धि नहीं है। भूल-चूक के लिए भी बुद्धि होनी जरूरी है। गलती करने के लिए भी बुद्धि होनी जरूरी है। मशीनें गलती करती ही नहीं। करती चली जाती है, जो कर रही है।

हम भी सत्रह-अठारह साल की उम्र होते-होते तक मेकेनिकल हो जाते है। दिमाग सीख जाता है क्या करना है, फिर उसको करता चला जाता है।

एक और बुद्धि का महत उपयोग है-बुद्धियोग-बुद्धिमानी नहीं, बुद्धिमत्ता नहीं, इंटलेक्चुअलिज्म नहीं, सिर्फ बौद्धिकता नहीं। बुद्धियोग का क्या मतलब है कृष्ण का? बुद्धियोग का मतलब है, जिस दिन हम बुद्धि के द्वार का बाहर के जगत के लिए नहीं, बल्कि स्वयं को जानने की यात्रा के लिए प्रयोग करते हैं। तब सौ प्रतिशत बुद्धि की जरूरत पड़ती है। तब स्वयं-प्रवेश के लिए समस्त बुद्धिमत्ता पुकारी जाती है।

अगर बायोलाजिस्ट से पूछें, तो वह कहता है, आदमी की आधी खोपड़ी बिलकुल बेकाम पड़ी है; आधी खोपड़ी का कोई भी हिस्सा काम नहीं कर रहा है। बड़ी चिंता की बात है जीव-शास्त्र के लिए कि बात क्या है? इसकी शरीर में

जरूरत क्या है ? यह जो सिर का बड़ा हिस्सा बेकार पड़ा है, कुछ करता ही नहीं; इसको काट भी दें तो चल सकता है; आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ेगा; पर यह है क्यों ? क्योंकि प्रकृति कुछ भी व्यर्थ तो बनाती नहीं। या तो यह हो सकता है कि पहले कभी आदमी पूरी खोपड़ी का उपयोग करता रहा हो, फिर भूल-चूक हो गई हो कुछ, आधी खोपड़ी के द्वार-दरवाजे बंद हो गए हैं। या यह हो सकता है कि आगे संभावना है कि आदमी के मस्तिष्क में और बहुत कुछ पोटेंशियल है, बीजरूप है, जो सक्रिय हो और काम करे।

दोनों ही बातें थोड़ी दूर तक सच हैं। ऐसे लोग पृथ्वी पर हो चुके हैं, बुद्ध या कृष्ण या कपिल या कणाद, जिन्होंने पूरी-पूरी बुद्धि का उपयोग किया। ऐसे लोग भविष्य में भी होंगे, जो इसका पूरा-पूरा उपयोग करें। लेकिन बाहर के काम के लिए थोड़ी-सी ही बुद्धि से काम चल जाता है। वह न्यूनतम उपयोग है-निकृष्टतम।

अर्जुन को कृष्ण कहते हैं, धनंजय, तू बुद्धियोग को उपलब्ध हो। तू बुद्धि का भीतर जाने के लिए, स्वयं को जानने के लिए, उसे जानने के लिए जो सब चुनावों के बीच में चुनने वाला है, जो सब करने के बीच में करने वाला है, जो सब घटनाओं के बीच में साक्षी है, जो सब घटनाओं के पीछे खड़ा है दूर, देखने वाला द्रष्टा है, उसे तू खोज। और जैसे ही उसे तू खोज लेगा, तू समता को उपलब्ध हो जाएगा। फिर ये बाहर की चिंताएं-ऐसा ठीक, वैसा गलत-तुझे पीड़ित और परेशान नहीं करेंगी। तब तू निश्चिंत भाव से जी सकता है। और वह निश्चिंतता तेरी समता से आएगी, तेरी बेहोशी से नहीं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। 50।।

बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य-पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है अर्थात उनसे लिपायमान नहीं होता। इससे बुद्धियोग के लिए ही चेष्टा कर। यह बुद्धिरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात कर्म बंधन से छूटने का उपाय है।

सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति पाप-पुण्य से निवृत्त हो जाता है। सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति कर्म की कुशलता को उपलब्ध हो जाता है। और कर्म की कुशलता ही, कृष्ण कहते हैं, योग है।

इसमें बहुत-सी बातें हैं। एक तो, सांख्यबुद्धि। इसके पहले सूत्र में मैंने कहा कि बुद्धि का प्रयोग प्रवेश के लिए, बहिर्यात्रा के लिए नहीं, अंतर्यात्रा के लिए है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने विचार का उपयोग अंतर्यात्रा के लिए करता है, उस दिन सांख्य को उपलब्ध होता है। जिस दिन भीतर पहुंचता है, स्वयं में जब खड़ा हो जाता है-स्टैंडिंग इन वनसेल्फ-जब अपने में ही खड़ा हो जाता है, जब स्वयं में और स्वयं के खड़े होने में रत्तीभर का फासला नहीं होता; जब हम वहीं होते हैं जहां हमारा सब कुछ होना है, जब हम वही होते हैं जो हम हैं, जब हम ठीक अपने प्राणों की ज्योति के साथ एक होकर खड़े हो जाते हैं-इसे सांख्यबुद्धि कृष्ण कहते हैं।

मैंने पीछे आपसे कहा कि सांख्य परम ज्ञान है, दि सुप्रीम डॉक्ट्रिन। उससे बड़ा कोई सिद्धांत नहीं है। ह्यूबर्ट बेनॉयट ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम है, दि सुप्रीम डॉक्ट्रिन। लेकिन उसे सांख्य का कोई पता नहीं है। उसने वह किताब झेन पर लिखी है। लेकिन जो भी लिखा है वह सांख्य है। परम सिद्धांत क्या है? सांख्य को परम ज्ञान कृष्ण कहते हैं, क्या बात है? ज्ञानों में श्रेष्ठतम ज्ञान सांख्य क्यों है?

दो तरह के ज्ञान हैं। एक ज्ञान, जिससे हम ज्ञेय को जानते हैं। और एक दूसरा ज्ञान, जिससे हम ज्ञाता को जानते हैं। एक ज्ञान, जिससे हम आब्जेक्ट को जानते हैं-वस्तु को, विषय को। और एक ज्ञान, जिससे हम सब्जेक्ट को जानते हैं, जानने वाले को ही जानते हैं जिससे। ज्ञान दो हैं। पहला ज्ञान साइंस बन जाता है, आब्जेक्टिव नालेज। दूसरा ज्ञान सांख्य बन जाता है, सब्जेक्टिव नालेज।

मैं आपको जान रहा हूं, यह भी एक जानना है। लेकिन मैं आपको कितना ही जानूं, तब भी पूरा न जान पाऊंगा। मैं आपको कितना ही जानूं, मेरा जानना राउंड अबाउट होगा; मैं आपके आस-पास घूमकर जानूंगा, आपके भीतर नहीं जा

सकता। अगर मैं आपके शरीर की चीर-फाड़ भी कर लूं, तो भी बाहर ही जानूंगा, तो भी भीतर नहीं जा सकता। अगर मैं आपके मस्तिष्क के भी टुकड़े-टुकड़े कर लूं, तो भी बाहर ही रहूंगा, भीतर नहीं जा सकता। उन अर्थों में मैं आपके भीतर नहीं जा सकता, जिन अर्थो में आप अपने भीतर हैं। यह इंपासिबिलिटी है।

आपके पैर में दर्द हो रहा है। मैं समझ सकता हूं, क्या हो रहा है। मेरे पैर में भी दर्द हुआ है। नहीं हुआ है, तो मेरे सिर में दर्द हुआ है, तो भी मैं अनुमान कर सकता हूं कि आपको क्या हो रहा है। अगर कुछ भी नहीं हुआ है, तो भी आपके चेहरे को देखकर समझ सकता हूं कि कोई पीड़ा हो रही है। लेकिन सच में आपको क्या हो रहा है, इसे मैं बाहर से ही जान सकता हूं। वह इनफरेंस है, अनुमान है। मैं अनुमान कर रहा हूं कि ऐसा कुछ हो रहा है। लेकिन जैसे आप अपने दर्द को जान रहे हैं, वैसा जानने का मेरे लिए आपके बाहर से कोई भी उपाय नहीं है।

लीबनिज हुआ एक बहुत बड़ा गणितज्ञ और विचारक। उसने आदमी के लिए एक शब्द दिया है, मोनोड। वह कहता है, हर आदमी एक बंद मकान है, जिसमें कोई द्वार-दरवाजा-खिड़की भी नहीं है। मोनोड का मतलब है, विंडोलेस सेल-एक बंद मकान, जिसमें कोई खिड़की भी नहीं है, जिसमें से घुस जाओ और भीतर जाकर जान लो कि क्या हो रहा है!

आप प्रेम से भरे हैं। क्या करें कि हम आपके प्रेम को जान लें बाहर से? कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। निर-उपाय है। हां, लेकिन कुछ-कुछ जान सकते हैं। पर वह जो जानना है, वह ठीक नहीं है कहना कि ज्ञान है।

तो बर्ट्रेंड रसेल ने दो शब्द बनाए हैं। एक को वह कहता है नालेज, और एक को कहता है एक्वेनटेंस। एक को वह कहता है ज्ञान, और एक को कहता है परिचय। तो दूसरे का हम ज्यादा से ज्यादा परिचय कर सकते हैं, एक्वेनटेंस कर सकते हैं; दूसरे का ज्ञान नहीं हो सकता। और दूसरे का जो परिचय है, उसमें भी इतने मीडियम हैं बीच में कि वह ठीक है, इसका कभी भरोसा नहीं हो सकता है।

आप वहां बैठे हैं बीस गज की दूरी पर। मैंने आपके चेहरे को कभी नहीं देखा, हालांकि अभी भी देख रहा हूं। फिर भी आपके चेहरे को नहीं देख रहा हूं।

आपके पास से ये प्रकाश की किरणें, आपके चेहरे को लेकर मेरी आंखों के भीतर जा रही हैं। फिर आंखों के भीतर ये प्रकाश की किरणें मेरी आंखों के तंतुओं को हिला रही हैं। फिर वे आंखों के तंतु मेरे भीतर जाकर मस्तिष्क के किसी रासायनिक द्रव्य में कुछ कर रहे हैं, जिसको अभी वैज्ञानिक भी नहीं कहते कि क्या कर रहे हैं। वे कहते हैं, समथिंग। अभी पक्का नहीं होता कि वे वहां क्या कर रहे हैं! उनके कुछ करने से मुझे आप दिखाई पड़ रहे है। पता नहीं, आप वहां हैं भी या नहीं। क्योंकि सपने में भी आप मुझे दिखाई पड़ते हैं और नहीं होते हैं; सुबह पाता हूं, नहीं हैं। अभी आप दिखाई पड़ रहे हैं, पता नहीं, हैं या नहीं! क्योंकि कौन कह सकता है कि जो मैं देख रहा हूं, वह सपना नहीं है! कौन कह सकता है कि जो मै देख रहा हूं, वह सपना नहीं है!

फिर पीलिया का मरीज है, उसे सब चीजें पीली दिखाई पड़ती हैं। कलर ब्लाइंड लोग होते हैं-दस में से एक होता है, यहां भी कई लोग होंगे-उनको खुद भी पता नहीं होता। कुछ लोग रंगों के प्रति अंधे होते है। कोई किसी रंग के प्रति अंधा होता है। पता नहीं चलता, बहुत मुश्किल है पता चलना। क्योंकि अभाव का पता चलना बहुत मुश्किल है।

बर्नार्ड शा हरे रंग के प्रति अंधा था-साठ साल की उम्र में पता चला। साठ साल तक उसे पता ही नहीं था कि हरा रंग उसे दिखाई ही नहीं पड़ता! उसे हरा और पीला एक-सा दिखाई पड़ता था। कभी कोई मौका ही नहीं आया कि जिसमें जांच-पड़ताल हो जाती। वह तो साठवीं वर्षगांठ पर किसी ने एक सूट उसे भेंट भेजा। हरे रंग का सूट था। टाई भेजना भूल गया होगा। तो बर्नार्ड शा ने सोचा कि टाई भी खरीद लाएं, तो पूरा हो जाए। तो बाजार में टाई खरीदने गया; पीले रंग की टाई खरीद लाया।

सेक्रेटरी ने रास्ते में कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं, बड़ी अजीब मालूम पड़ेगी! पीले रंग की टाई और हरे रंग के कोट पर? बर्नार्ड शा ने कहा, पीला और हरा! क्या दोनों बिलकुल मैच नहीं करते? दोनों बिलकुल एक जैसे नहीं हैं? उसने कहा कि आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं? बर्नार्ड शा आदमी मजाक करने वाला था।

पर उसने कहा कि नहीं, मजाक नहीं कर रहा। तुम क्या कह रहे हो! ये दोनों अलग हैं? ये दोनों एक ही रंग हैं! तब आंख की जांच करवाई, तो पता चला कि उसकी आंख को हरा रंग दिखाई ही नहीं पड़ता। वह ब्लाइंड है हरे रंग के प्रति।

तो जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह सच में है? वैसा ही है जैसा दिखाई पड़ रहा है? कुछ पक्का नहीं है। जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ एज़म्शन है। हम मानकर चल सकते हैं कि है। एक बड़ी दूरबीन ले आएं, एक बड़ी खुर्दबीन ले आएं और आपके चेहरे पर लगाकर देखें।

ऐसी मजाक मैंने सुनी है। एक वैज्ञानिक ने एक बहुत सुंदर स्त्री से विवाह किया। और जाकर अपने मित्रों से, वैज्ञानिकों से कहा कि बहुत सुंदर स्त्री से प्रेम किया है। उन वैज्ञानिकों ने कहा, ठीक से देख भी लिया है? खुर्दबीन लगाई थी कि नहीं? क्योंकि भरोसा क्या है! उसने कहा, क्या पागलपन की बात करते हो? कहीं स्त्री के सौंदर्य को खुर्दबीन लगाकर देखा जाता है! उन्होंने कहा, तुम ले आना अपनी सुंदर स्त्री को।

मित्र, सिर्फ मजाक में, मिलाने ले आया। उन सबने एक बड़ी खुर्दबीन रखी, सुंदर स्त्री को दूसरी तरफ बिठाया। उसके पति को बुलाया कि जरा यहां से आकर देखो। देखा तो एक चीख निकल गई उसके मुंह से। क्योंकि उस तरफ तो खाई-खड्डु के सिवाय कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। स्त्री के चेहरे पर इतने खाई-खड्डु!

लेकिन खुर्दबीन चाहिए; आदमी के चेहरे पर भी हैं। बड़ी खुर्दबीन से जब देखो तो ऐसा लगता है कि खाई-पहाड़, खाई-पहाड़, ऐसा दिखाई पड़ता है। सत्य क्या है? जो खुर्दबीन से दिखता है वह? या जो खाली आंख से दिखता है वह? अगर सत्य ही होगा, तो खुर्दबीन वाला ही ज्यादा होना चाहिए, खाली आंख की बजाय। उसको वैज्ञानिक बड़े इंतजाम से बनाते हैं।

जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह सिर्फ एक्नेटेंस है, कामचलाऊ, यूटिलिटेरियन! उपयोगी है, सत्य नहीं है। इसलिए दूसरे से हम सिर्फ परिचित ही हो सकते हैं। उस परिचय को कभी ज्ञान मत समझ लेना।

इसलिए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, परम-ज्ञान है सांख्य। सांख्य का मतलब

है, दूसरे को नहीं, उसे जानो जो तुम हो। क्योंकि उसे ही तुम भीतर से, इंटिमेटली, आंतरिकता से, गहरे में जान सकते हो। उसको बाहर से जानने की जरूरत नहीं है। उसमें तुम उतर सकते हो, डूब सकते हो, एक हो सकते हो।

इसलिए इस मुल्क में, हमारे मुल्क में तो हम ज्ञान कहते ही सिर्फ आत्मज्ञान को हैं। बाकी सब परिचय है। साइंस ज्ञान नहीं है इन अर्थों में। साइंस का जो शब्द है अंग्रेजी में, उसका मतलब होता है ज्ञान, उसका मतलब भी टु नो है। साइंस का मतलब अंग्रेजी में होता है ज्ञान। लेकिन हम अपने मुल्क में साइंस को ज्ञान नहीं कहते, हम उसे विज्ञान कहते हैं; हम कहते हैं, विशेष ज्ञान। ज्ञान नहीं, स्पेसिफिक नालेज। ज्ञान नहीं, क्योंकि ज्ञान तो है वह जो स्वयं को जानता है। यह विशेष ज्ञान है, जिससे जिंदगी में काम चलता है। एक स्पेसिफिक नालेज है, एक्वेनटेंस है, परिचय है।

इसलिए हमारा विज्ञान शब्द अंग्रेजी के साइंस शब्द से ज्यादा मौजूं है, वह ठीक है। क्योकि वह एक-वि-विशेषता जोड़कर यह कह देता है कि ज्ञान नहीं है, एक तरह का ज्ञान है। एक तरह का ज्ञान है, ए टाइप आफ नालेज। लेकिन सच में ज्ञान तो एक ही है। और वह है उसे जानना, जो सबको जानता है।

यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि जब मैं उसे ही नहीं जानता, जो सबको जानता है, तो मैं सबको कैसे जान सकता हूं! जब मैं अपने को ही नहीं जानता कि मैं कौन हूं, तो मै आपको कैसे जान सकता हूं कि आप कौन हैं! अभी जब मैंने इस निकटतम सत्य को नहीं जाना-दि मोस्ट इंटिमेट, दि नियरेस्ट-जिसमें इंचभर का फासला नहीं है, उस तक को भी नहीं जान पाया, तो आप तो मुझसे बहुत दूर हैं, अनंत दूरी पर हैं। और अनंत दूरी पर हैं। कितने ही पास बैठ जाएं, घुटने से घुटना लगा लें, छाती से छाती लगा लें, दूरी अनंत है-इनफिनिट इज़ दि डिस्टेंस। कितने ही करीब बैठ जाएं, दूरी अनंत है। क्योंकि भीतर प्रवेश नहीं हो सकता; फासला बहुत है, उसे पूरा नहीं किया जा सकता।

सभी प्रेमियों की तकलीफ यही है। प्रेम की पीड़ा ही यही है कि जिसको पास लेना चाहते हैं, न ले पाएं, तो मन दुखता रहता है कि पास नहीं ले पाए। और

पास ले लेते हैं, तो मन दुखता है कि पास तो आ गए, लेकिन फिर भी पास कहां आ पाए! दूरी बनी ही रही। वे प्रेमी भी दुखी होते हैं, जो दूर रह जाते हैं; और उनसे भी ज्यादा दुखी वे होते हैं, जो निकट आ जाते है। क्योंकि कम से कम दूर रहने में एक भरोसा तो रहता है कि अगर पास आ जाते, तो आनंद आ जाता। पास आकर पता चलता है कि डिसइलूजनमेंट हुआ। पास आ ही नहीं सकते। तीस साल पति-पत्नी साथ रहें, पास आते हैं? विवाह के दिन से दूरी रोज बड़ी होती है, कम नहीं होती। क्योंकि जैसे-जैसे समझ आती है, वैसे-वैसे पता चलता है, पास आने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।

हर आदमी एक मोनोड है-अपने में बंद, आईलैंड; कहीं से खुलता ही नहीं। जितने निकट रहते हैं, उतना ही पता चलता है कि परिचय नहीं है, अपरिचित हैं बिलकुल। कोई पहचान नहीं हो पाई। मरते दम तक भी पहचान नहीं हो पाती। असल में जो आदमी दूसरे की पहचान को निकला है अपने को बिना जाने, वह गलत है; वह गलत यात्रा कर रहा है, जो कभी सफल नहीं हो सकती।

सांख्य स्वयं को जानने वाला ज्ञान है। इसलिए मै कहता हूं, दि सुप्रीम साइंस, परम ज्ञान। और कृष्ण कहते हैं, धनंजय, अगर तू इस परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो योग सध गया समझ; फिर कुछ और साधने को नहीं बचता। सब सध गया, जिसने स्वयं को जाना। सब मिल गया, जिसने स्वयं को पाया। सब खुल गया, जिसने स्वयं को खोला। तो अर्जुन से वे कहते हैं, सब मिल जाता है; सब योग सांख्यबुद्धि को उपलब्ध व्यक्ति को उपलब्ध है। और योग कर्म की कुशलता बन जाती है।

योग कर्म की कुशलता क्यों है? व्हाय? क्यों? क्यों कहते हैं, योग कर्म की कुशलता है? क्योंकि हम तो योगियों को सिर्फ कर्म से भागते देखते हैं। कृष्ण बड़ी उलटी बात कहते हैं। असल में उलटी बात कहने के लिए कृष्ण जैसी हिम्मत ही चाहिए, नहीं तो उलटी बात कहना बहुत मुश्किल है। लोग सीधी-सीधी बातें कहते रहते हैं। सीधी बातें अक्सर गलत होती हैं। अक्सर गलत होती हैं। क्योंकि सीधी बातें सभी लोग मानते हैं। और सभी लोग सत्य को नहीं मानते हैं। सभी लोग, जो कनवीनिएंट है, सुविधापूर्ण है, उसको मानते हैं।

कृष्ण वड़ी उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं , योगी कर्म की कुशलता को उपलब्ध हो जाता है। योग ही कर्म की कुशलता है।

हम तो योगी को भागते देखते हैं। एक ही कुशलता देखते हैं-भागने की। एक ही एफिशिएंसी है उसके पास, कि वह एकदम रफू हो जाता है कहीं से भी। रफू शब्द तो आप समझते हैं न? कंबल में या शाल में छेद हो जाता है न। तो उसको रफू करने वाला ठीक कर देता है। छेद एकदम रफू हो जाता है। रफू मतलब, पता ही नहीं चलता कि कहां है। ऐसे ही संन्यासी रफू होना जानता है। बस एक ही कुशलता है-रफू होने की। और तो कोई कुशलता संन्यासी में, योगी में दिखाई नहीं पड़ती।

तो फिर ये कृष्ण क्या कहते हैं? ये किस योगी की बात कर रहे है? निश्चित ही, ये जिस योगी की बात कर रहे है, वह पैदा नहीं हो पाया है। जिस योगी की ये बात कर रहे हैं, वह योगी चूक गया।

असल में योगी तो वह पैदा हो पाया है, जो अर्जुन को मानता है, कृष्ण को नहीं। अर्जुन भी रफू होने के लिए बड़ी उत्सुकता दिखला रहे है। वह भी कहते हैं, रफू करो भगवान! कहीं से रास्ता दे दो, मैं निकल जाऊं। फिर लौटकर न देखूं। बड़े उपद्रव में उलझाया हुआ है। यह सब क्या देख रहा हूं! मुझे बाहर निकलने का रास्ता बता दो।

कृष्ण उसे बाहर ले जाने का उपाय नहीं, और भी अपने भीतर ले जाने का उपाय बता रहे है। इस युद्ध के तो बाहर ले जा नहीं रहे। वह इस युद्ध के भी बाहर जाना चाहता है। इस युद्ध के तो भीतर ही खड़ा रखे हुए हैं, और उससे उलटा कह रहे हैं कि जरा और भीतर चल-युद्ध से भी भीतर, अपने भीतर चल। और अगर तू अपने भीतर चला जाता है, तो फिर भागने की कोई जरूरत नहीं। फिर तू जो भी करेगा, वही कुशल हो जाएगा-तू जो भी करेगा, वही।

क्योंकि जो व्यक्ति भीतर शांत है, और जिसके भीतर का दीया जल गया, और जिसके भीतर प्रकाश है, और जिसके भीतर मृत्यु न रही, और जिसके भीतर अहंकार न रहा, और जिसके भीतर असंतुलन न रहा, और जिसके भीतर सब

समता हो गई, और जिसके भीतर सब ठहर गया; सब मौन, सब शांत हो गया-उस व्यक्ति के कर्म में कुशलता न होगी, तो किसके होगी?

अशांत है हृदय, तो कर्म कैसे कुशल हो सकता है? कंपता है, डोलता है मन, तो हाथ भी डोलता है। कंपता है, डोलता है चित्त, तो कर्म भी डोलता है। सब विकृत हो जाता है। क्योंकि भीतर ही सब डोल रहा है, भीतर ही कुछ थिर नहीं है। शराबी के पैर जैसे कंप रहे, ऐसा भीतर सब कंप रहा है। बाहर भी सब कंप जाता है। कंप जाता है, अकुशल हो जाता है।

भीतर जब सब शांत है, सब मौन है, तो अकुशलता आएगी कहां से? अकुशलता आती है-भीतर की अशांति, भीतर के तनाव, टेंशन, एंग्जाइटी, भीतर की चिंता, भीतर के विषाद, भीतर गड़े हैं जो कांटे दुख के, पीड़ा के, चिंता के-वे सब कंपा डालते हैं। उनसे जो आह उठती है, वह बाहर सब अकुशल कर जाती है। लेकिन भीतर अगर वीणा बजने लगे मौन की, समता की, तो अकुशलता के आने का उपाय कहां है? बाहर सब कुशल हो जाता है। फिर तब ऐसा आदमी जो भी करता है, वह मिडास जैसा हो जाता है।

कहानी है यूनान में कि मिडास जो भी छूता, वह सोने का हो जाता। जो भी छू लेता, वह सोने का हो जाता। मिडास तो बड़ी मुश्किल में पड़ा इससे, क्योंकि सोना पास में न हो तो ही ठीक। थोड़ा हो, तो भी चल जाए। मिडास जैसा हो जाए, तो मुश्किल हो गई। क्योंकि सोना न तो खाया जा सकता, न पीया जा सकता। पानी छुए मिडास, तो सोना हो जाए; खाना छुए, तो सोना हो जाए। पत्नी उससे दूर भागे, बच्चे उससे दूर बचें। सभी सोने वालों की पत्नियां और बच्चे दूर भागते हैं। छुएं, तो सोना हो जाएं। मिडास का टच-पत्नी को अगर गले लगा ले प्रेम से, तो वह मरी, सोना हो गई।

तो जहां भी सोने का संस्पर्श है, वहां प्रेम मर जाता है; सब सोना हो जाता है, सब पैसा हो जाता है। मिडास तो बड़ी मुश्किल में पड़ा। क्योंकि वह जो छूता था, वह जीवित भी हो, तो मुर्दा सोना हो जाए।

लेकिन मैं यह कह रहा हूं कि कृष्ण एक और तरह की कीमिया, और तरह की अल्केमी बता रहे हैं। वे यह बता रहे हैं कि भीतर अगर समता है, और भीतर

अगर सांख्य है, और भीतर अगर सब मौन और शांत हो गया है, तो हाथ जो भी छूते है, वह कुशल हो जाता है; जो भी करते है, वह कुशल हो जाता है। फिर जो होता है, वह सभी सफल है। सफल ही नही, कहना चाहिए, सुफल भी है।

सुफल और बात है। सफल तो चोर भी होता है, लेकिन सुफल नही होता। सफल का तो इतना ही मतलब है कि काम करते है, फल लग जाता है। लेकिन कड़वा लगता है, जहरीला भी लगता है। सुफल का मतलब है, अमृत का फल लगता है। भीतर जब सब ठीक है, तो बाहर सब ठीक हो जाता है। इसे कृष्ण ने योग की कुशलता कहा है।

और यह पृथ्वी तब तक दीनता, दुख और पीडा से भरी रहेगी, जब तक अयोगी कुशलता की कोशिश कर रहे है कर्म की, और योगी पलायन की कोशिश कर रहे है। जब तक योगी भागेगे और अयोगी जमकर खड़े रहेगे, तब तक यह दुनिया उपद्रव बनी रहे, तो आश्चर्य नहीं है। इससे उलटा हो, तो ज्यादा स्वागत योग्य है। अयोगी भागे तो भाग जाएं, योगी टिके और खडे हो और जीवन के युद्ध को स्वीकार करे।

जीवन के युद्ध मे नही है प्रश्न। युद्ध भीतर है, वह है कष्ट। द्वंद्व भीतर है, वह है कष्ट। वहां निर्द्वद्वता, वहा मौन, वहां शांति, तो बाहर सब कुशल हो जाता है।

एक श्लोक और।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्य नामयम्।। 51।।

क्योकि बुद्धियोगयुक्त ज्ञानीजन कर्मो से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर, जन्मरूप बंधन से छूटे हुए निर्दोष, अर्थात अमृतमय परमपद को प्राप्त होते है।

जो भी ऐसे ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, जो भी ऐसी निष्ठा को, ऐसी श्रद्धा को, ऐसे अनुभव को उपलब्ध हो जाता है जहां द्वंद्व नहीं है, वैसा व्यक्ति जन्म के, मृत्यु के घेरे से मुक्त होकर परमपद को पा लेता है।

इसे थोड़ा-सा खोलना पड़ेगा।

एक तो, जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है, इसका ऐसा मतलब नहीं है कि अभी जन्म-मृत्यु में है। है तो अभी भी नहीं; ऐसा प्रतीत करता है कि है। जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाता है, इसका मतलब यह नहीं कि पहले बंधा था और अब मुक्त हो जाता है। नहीं, ऐसा बंधा तो पहले भी नहीं था, लेकिन मानता था कि बंधा हूं। और अब जानता है कि नहीं बंधा हूं। पहला तो यह खयाल ले लेना जरूरी है। जो घटना घटती है जन्म और मृत्यु से मुक्ति की, वह वास्तविक नहीं है, क्योंकि जन्म और मृत्यु ही वास्तविक नहीं हैं। जो घटना घटती है, वह एक असत्य का, एक अज्ञान का निराकरण है।

जैसे कि मैं एक गणित करता हूं, दो और दो पांच जोड़ लेता हूं। मैं कितना ही दो और दो पांच जोडूं, दो और दो पांच होते नहीं हैं। जब मैं दो और दो पांच जोड़ रहा हूं, तब भी दो और दो चार ही हैं। यानी मेरे जोड़ने से कोई दो और दो पांच नहीं हो जाते। एक कमरे में कुर्सियां रखी हैं दो और दो, और मैं जोड़कर बाहर आता हूं और कहता हूं कि पांच हैं, तो भी कमरे में पांच कुर्सियां नहीं हो जातीं। कमरे में कुर्सियां चार ही होती हैं। भूल जोड़ की है। जोड़ की भूल, अस्तित्व की भूल नहीं बनती।

तो सांख्य का कहना है कि जो गलती है, वह अस्तित्व में नहीं है। जो गलती है, वह हमारी समझ में है। वह जोड़ की भूल है। ऐसा नहीं है कि जन्म और मृत्यु हैं। ऐसा हमें दिखाई पड़ रहा है कि हैं। हमारे दिखाई पड़ने से हो नहीं जातीं।

फिर कल मुझे पता चलता है कि नहीं, दो और दो पांच नहीं होते, दो और दो चार होते हैं। मैं फिर लौटकर कमरे में जाता हूं और मैं देखता हूं कि ठीक, दो और दो चार ही हैं। और मैं बाहर आकर कहता हूं कि जब गणित ठीक आ जाता है किसी को, तो कुर्सियां पांच नहीं रह जातीं, चार हो जाती हैं। ऐसा ही-ठीक ऐसा ही-ऐसा ही समझना है। जो भूल है, वह ज्ञान की भूल है, इरर आफ नोइंग। वह भूल एक्झिस्टेंशियल नहीं है, अस्तित्वगत नहीं है। क्योंकि अस्तित्वगत अगर भूल हो, तो सिर्फ जानने से नहीं मिट सकती है।

अगर कुर्सियां पांच ही हो गई हों, तो फिर मैं दो और दो चार कर लूं, इससे

चार नहीं हो जातीं। कुर्सियां दो और दो चार होने से चार तभी हो सकती हैं, जब वे चार रही ही हों उस समय भी, जब मैं पांच गिनता था। वह मेरे गिनने की भूल थी।

जीवन और मरण आत्मा का होता नहीं, प्रतीत होता है, एपियरेंस है, दिखाई पड़ता है, गणित की भूल है। मैंने पीछे आपसे बात कही, इसे थोड़ा और आगे ले जाना जरूरी है। हम दूसरे को मरते देख लेते हैं, तो सोचते हैं, मैं भी मरूंगा। यह इमिटेटिव मिसअंडरस्टैंडिंग है। और चूंकि जिंदगी में हम सब इमिटेशन से सीखते हैं, नकल से सीखते हैं, तो मृत्यु भी नकल से सीख लेते हैं। यह नकल है। नकल चोरी है बिलकुल। जैसे कि बच्चे स्कूल मे दूसरे की कापी में से उतारकर उत्तर लिख लेते हैं। उनको हम चोर कहते है। हम सब चोर हैं, जिंदगी मे हमारे अधिकतम अनुभव चोरी के है। मृत्यु जैसा बड़ा अनुभव भी चुराया हुआ है। किसी को मरते देखा, कहा कि अब हम भी मरेंगे।

आपने अपने को कभी मरते देखा है? किसी को मरते देखा; सोचा, हम भी मरेंगे। नकल कर ली। फिर रोज कोई न कोई मर रहा है-एक मरा, दो मरे, तीन मरे, चार मरे, पांच मरे। फिर पता चला कि सबको मरना ही पड़ता है। पहले जो भी हुए, सब मरे। तो फिर पक्का होता जाता है अनुमान, गणित तय होता जाता है कि नहीं, मरना ही है।

मृत्यु है, यह अनुभूत सत्य नहीं है। यह एक्सपीरिएंस्ड ट्रुथ नहीं है कि मृत्यु है। यह अनुमानजन्य, इनफरेंशियल है। यह हमने चारों तरफ देख लिया कि ऐसा होता है, इसलिए मृत्यु है।

आपने अपना जन्म देखा? यह बड़े मजे की बात है, आप जन्मे और आपको अपने जन्म का भी पता नहीं? छोड़ें, मृत्यु अभी आने वाली है, भविष्य में है, इसलिए भविष्य का अभी हम कैसे पक्का करें! लेकिन जन्म तो कम से कम अतीत में है। आप जन्मे हैं। आपको जन्म का भी पता नहीं है कि आप जन्मे हैं! बड़ी मजेदार बात है। मृत्यु का न पता हो, समझ में आता है। क्योंकि मृत्यु अभी भविष्य है, पता नहीं होगी कि नहीं होगी। लेकिन जन्म तो हो चुका है। पर आपको जन्म का भी कोई पता नहीं। और आप ही जन्मे और आपको ही अपने जन्म का पता नही है!

असल में आपको अपना ही पता नहीं है, जन्म वगैरह का पता कैसे हो! इतनी बड़ी घटना जन्म की घट गई, और आपको पता नहीं है! असल में आपको जीवन की किसी घटना का-गहरी घटना का-कोई भी पता नहीं है। आपको तो जो सिखा दिया गया है, वही पता है। स्कूल में गणित सिखा दिया गया, मां-बाप ने भाषा सिखा दी, फिर धर्म-मंदिर में धर्म की किताब सिखा दी, फिर किसी ने हिंदू-मुसलमान सिखा दिया, फिर किसी ने कुछ और सिखा दिया-वह सब सीखकर खड़े हो गए है। मगर आपको जिंदगी का कुछ भी गहरा अनुभव नहीं है, जन्म तक का कोई अनुभव नहीं है!

तो ध्यान रहे, जब जन्म से गुजरकर आपको जन्म का अनुभव नही मिला, तो पक्का समझना कि मृत्यु से भी आप गुजर जाओगे और आपको अनुभव नहीं मिलेगा। क्योकि वह भी इतनी ही गहरी घटना है, जितनी जन्म है। वह दरवाजा वही है; जन्म से आप आए थे, मृत्यु से आप लौटेगे-दि सेम डोर। दरवाजा अलग नहीं है; दरवाजा वही है। इधर आए थे, उधर जाएंगे। और दरवाजे को देखने की आपकी आदत नहीं है। आंख बंद करके निकल जाते है। अभी निकल आए है आंख बंद करके, अब फिर आंख बंद करके निकल जाएंगे।

तो ये जन्म और मृत्यु...जन्म भी, लोग हमसे कहते है कि आपका हुआ। वह भी कथन है। मृत्यु भी हम देखते है कि होती है, वह अनुमान है। जन्म किसी ने बताया, मृत्यु का अनुमान हमने किया है। लेकिन न हमें जन्म का कोई पता है, न हमें मृत्यु का कोई पता है। तो ये जन्म और मृत्यु होते है, ये बड़े इमिटेटिव कनक्लूजंस हैं; ये नकल से ली गई निष्पत्तियां है।

सांख्य कहता है कि काश! तुम एक बार जन्म लो जानते हुए। काश! तुम एक बार मरो जानते हुए। फिर तुम दुबारा न कहोगे कि जन्म और मरण होता है। और अभी मृत्यु को तो देर है, और जन्म हो चुका, लेकिन जीवित अभी आप हैं। सांख्य कहता है, अगर तुम जीवित रहो जानते हुए, तो भी छुटकारा हो जाएगा। छुटकारे का मतलब ही इतना है कि वह जो भ्रांति हो रही है, विचार से जो निष्कर्ष लिया जा रहा है, वह गलत सिद्ध होता है।

तो जो सांख्यबुद्धि को उपलब्ध हो जाते है, कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वे जन्म-मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। ठीक होता कहना कि वे कहते कि वे जन्म-मृत्यु की गलती से मुक्त हो जाते हैं। परमपद को उपलब्ध होते है।

वह परमपद कहां है? जब भी हम परमपद की बात सोचते हैं, तो कहीं ऊपर आकाश में खयाल आता है। क्योंकि पद जो हैं हमारे, वे जमीन से जितने ऊंचे होते जाते है, उतने बड़े होते जाते हैं।

पट्टाभि सीतारमैया ने एक संस्मरण लिखा है। लिखा है कि मद्रास में एक मजिस्ट्रेट था अंग्रेज। वह अपनी अदालत में एक ही कुर्सी रखता था, खुद के बैठने के लिए। बाकी कुर्सियां थी, लेकिन वह बगल के कमरे में रखता था। नंबर डाल रखे थे। क्योंकि वह कहता था, आदमी देखकर कुर्सी देनी चाहिए। तो एक नंबर का एक मोढ़ा था छोटा-सा, बिलकुल गरीब आदमी आ जाए-बहुत गरीब आ जाए, तब तो खड़े-खड़े चल जाए-बाकी थोड़ा, जिसको एकदम गरीब न भी कहा जा सके, उसको नंबर एक का मोढ़ा। फिर नंबर दो का मोढ़ा, फिर नंबर तीन की कुर्सी, फिर चार की-ऐसे सात नंबर की कुर्सियां थीं।

एक दिन एक आदमी आया-पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है-कि एक दिन बड़ी मुश्किल हो गई। एक बड़ा धोखे से भरा आदमी आ गया। आदमी आया तो मजिस्ट्रेट ने देखा उसको, तो सोचा कि खड़े-खड़े चल जाएगा।

सोचना पड़ता है, कौन आदमी आया! आपको भी सोचना पड़ता है, कहां बिठाएं! क्या करें! क्या न करें! आदमी देखकर जगह बनानी पड़ती है। आदमी के लिए कोई जगह नहीं बनाता; जैसा दिखाई पड़ता है, उसके लिए जगह बनानी पड़ती है।

पर जैसे ही पास आया और जैसे ही उसने ऊपर आंख उठाई, तो देखा कि एक कीमती चश्मा लगाए हुए है। उसने कहा कि जाओ, नंबर एक; चपरासी को कहा कि नंबर एक। चपरासी भीतर भागा गया। वह बूढ़ा पास आकर खड़ा हुआ। जब उसने सिर ऊंचा किया-झुकी है कमर उसकी-तो देखा, गले में सोने की चेन है। तब तक मोढ़ा लिए चपरासी आता था। उसने कहा, रुक-रुक! नंबर

दो ला। तब तक उस बूढ़े ने कोट उठाकर घड़ी देखी। तब तक चपरासी नंबर दो लाता था। मजिस्ट्रेट ने कहा, रुक-रुक...।

उस बूढ़े ने कहा, मैं बूढ़ा आदमी हूं, जो आखिरी नंबर हो, वही बुला लो। क्योंकि अभी और भी बहुत बातें हैं। तुम्हें शायद पता नहीं कि सरकार ने मुझे राय बहादुर की पदवी दी है। और तुम्हें शायद यह भी पता नहीं कि मैं यहां आया ही इसलिए हूं कि कुछ लाख रुपया सरकार को दान करना चाहता हूं। नंबर आखिरी कुर्सी जो हो, तू बुला ले। बार-बार चपरासी को दिक्कत दे रहे हो। और मैं बूढ़ा आदमी हूं।

तो हमारे पद जो हैं, वे जमीन से ऊंचे उठते है। ऐसा ऊपर उठते जाते है सिंहासन। तो उसी सिंहासन के आखिरी छोर पर कहीं आकाश में परमपद हमारे खयाल में है, कि परमपद जो है, वह कहीं समव्हेअर अप, ऊपर है।

जिस परमपद की कृष्ण बात कर रहे हैं, वह समव्हेअर इन- ऊपर की बात नहीं है वह; वह कहीं भीतर-उस जगह, जिसके और भीतर नहीं जाया जा सकता; उस जगह, जो आंतरिकता का अंत है। जो इनरमोस्ट कोर, वह जो भीतरी से भीतरी जगह है, वह जो भीतरी से भीतरी मंदिर है चेतना का, वहीं परमपद है। सांख्य को उपलब्ध व्यक्ति उस परम मंदिर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

शेष फिर कल।

•••

पंद्रहवां प्रवचन

मोह-मुक्ति, आत्म-तृप्ति और प्रज्ञा की थिरता

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।। 52।।

और हे अर्जुन, जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को बिलकुल तर जाएगी, तब तू सुनने योग्य और सुने हुए के वैराग्य को प्राप्त होगा।

मोहरूपी कालिमा से जब बुद्धि जागेगी, तब वैराग्य फलित होता है। मोहरूपी कालिमा से! मनुष्य के आस-पास कौन-सा अंधकार है?

एक तो वह अंधकार है, जो दीयों के जलाने से मिट जाता है। धर्म से उस अंधकार का कोई भी संबंध नहीं है। वह हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है, नहीं हो तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। फिर धर्म किस अंधकार को मिटाने के लिए चेष्टारत है?

एक और भी अंधकार है, जो मनुष्य के शरीर को नहीं घेरता, वरन मनुष्य

की चेतना को घेर लेता है। एक और भी अंधकार है, जो मनुष्य की आत्मा के चारों तरफ घिर जाता है। उस अंधकार को कृष्ण कह रहे हैं, मोहरूपी कालिमा। तो अंधकार और मोह इन दो शब्दों को थोड़ा गहरे में समझना उपयोगी है।

अंधकार का लक्षण क्या है? अंधकार का लक्षण है कि दिखाई नहीं पड़ता जहां, जहां देखना खो जाता है, जहां देखना संभव नहीं हो पाता, जहां आंखों पर परदा पड़ जाता है-एक। दूसरा, जहां दिखाई न पड़ने से कोई मार्ग नहीं मालूम पड़ता, कहां जाएं! क्या करें! तीसरा, जहां दिखाई न पड़ने से प्रतिपल किसी भी चीज से टकरा जाने की संभावना हो जाती है। अंधकार हमारी दृष्टि का खो जाना है।

मोह में भी ऐसा ही घटित होता है। इसलिए मोह को अंधकार कहने की सार्थकता है। मोह में जो हम करते हैं, मोह में जो हम होते हैं, मोह में जैसे हम चलते हैं, मोह में जो भी हमसे निकलता है, वह ठीक ऐसा ही है, जैसे अंधेरे मे कोई टटोलता हो। नहीं कुछ पता होता, क्या कर रहे हैं! नहीं कुछ पता होता, क्या हो रहा है! नहीं कुछ पता होता, कौन-सा रास्ता है! कौन-सा मार्ग है! आंखें नहीं होती हैं। मोह अंधा है। और मोह का अंधापन आध्यात्मिक अंधापन है, स्प्रिचुअल ब्लाइंडनेस है।

सुना है मैंने, एक आदमी के मकान में आग लग गई है। भीड़ इकट्ठी है। वह आदमी छाती पीटकर रो रहा है, चिल्ला रहा है। स्वभावतः, उसके जीवनभर की सारी संपदा नष्ट हुई जा रही है। जिसे उसने जीवन समझा है, वही नष्ट हुआ जा रहा है। जिसके आधार पर वह खड़ा था, वह आधार गिरा जा रहा है। जिसके आधार पर उसके मैं में शक्ति थी, बल था; जिसके आधार पर वह कुछ था, समबडी था, वह सब बिखरा जा रहा है।

जान सोलिज ने एक किताब लिखी है, अरेस्ट्रोस। उसमें कुछ कीमती वचन लिखे हैं। उसमें एक कीमती वचन है, नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। नोबडी वांट्स टु बी नोबडी। ठीक-ठीक अनुवाद मुश्किल है। कोई भी नहीं चाहता कि ना-कुछ हो। सभी चाहते हैं, समबडी हों, कुछ हों।

उसकी समबडीनेस बिखरी जा रही है, उस आदमी की। वह कुछ था इस मकान के होने से। और जिनका भी कुछ होना किसी और चीज के होने पर निर्भर है, किसी दिन ऐसा ही रुदन, ऐसी ही पीड़ा उन्हें घेर लेती है। क्योंकि वे सब जो बाहर की संपदा पर टिके हैं, किसी दिन बिखरते हैं, क्योंकि बाहर कुछ भी टिकने वाला नहीं है। वह उसी के मकान में आग लग गई हो, ऐसा नहीं, सभी के बाहर के मकानों में आग लग जाती है। असल में बाहर जो भी है, वह आग पर चढ़ा हुआ ही है।

तो छाती पीटता है, रोता है। स्वाभाविक है। फिर पड़ोस में से कोई दौड़ा हुआ आता है और कहता है, व्यर्थ रो रहे हो तुम। तुम्हारे लड़के ने मकान तो कल बेच दिया। उसका बयाना भी हो गया है। क्या तुम्हें पता नहीं? बस, आंसू तिरोहित हो गए। उस आदमी का छाती पीटना बंद हो गया। जहां रोना था, वहां वह हंसने लगा, मुस्कुराने लगा। सब एकदम बदल गया।

अभी भी आग लगी है, मकान जल रहा है; वैसा ही जैसा क्षणभर पहले जलता था। फर्क कहां पड़ गया? मकान अब मेरा नहीं रहा, अपना नहीं रहा। मोह का जो जोड़ था मकान से, वह टूट गया है। अब भी मकान में आग है, लेकिन अब आंख में आंसू नहीं हैं। आंख में जो आंसू थे, वे मकान के जलने की वजह से थे? वह मकान अब भी जल रहा है। आंख में जो आंसू थे, वे मेरे के जलने की वजह से थे। मेरा अब नहीं जल रहा है, आंखें साफ हो गई हैं। अब आंसुओं की परत आंख पर नहीं है। अब उस आदमी को ठीक-ठीक दिखाई पड़ रहा है। अभी उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था।

उधर आग की लपटें थीं, तो इधर आंख में भी तो आंसू थे, सब धुंधला था, सब अंधेरा था। अब तक उसके हाथ-पैर कंपते थे, अब हाथ-पैर का कंपन चला गया। अब वह आदमी ठीक वैसा ही हो गया है, जैसे और लोग हैं। और कह रहा है, ठीक; जो हो गया, ठीक है।

तभी उसका लड़का दौड़ा हुआ आता है। और वह कहता है, बात तो हुई थी, लेकिन बयाना नहीं हो पाया। बेचने की बात चली थी, लेकिन हो नहीं पाया। और अब इस जले हुए मकान को कौन खरीदने वाला है!

फिर आंसू वापस लौट आए; फिर छाती पीटना शुरू हो गया। मकान अब भी वैसा ही जल रहा है! मकान को कुछ भी पता नहीं चला कि इस बीच सब बदल गया है। सब फिर बदल गया है। मोह फिर लौट आया है। आंखें फिर अंधी हो गई हैं। फिर मेरा जलने लगा है।

इस जीवन में मोह ही जलता है, मोह ही चिंतित होता है, मोह ही तनाव से भरता है, मोह ही संताप को उपलब्ध होता है, मोह ही भटकाता है, मोह ही गिराता है। मोह ही जीवन का दुख है।

इसे कृष्ण मोह कह रहे हैं। बुद्ध ने इसे तृष्णा कहा है, तनहा कहा है। इसे कोई और नाम दें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसके भीतरी रहस्य में एक गुण है, और वह यह कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होने लगता है। मोह की जो हिप्नोसिस है, मोह का जो सम्मोहन है, वहां जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होने लगता है; और जो मेरा है, उसका कुछ पता ही नहीं चलता।

मोह के अंधकार का जो गुणधर्म है, वह यह है कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा मालूम होता है। और जो मेरा है, वह मेरा नहीं मालूम होता है। एक रिवर्सन, एक विपर्यय हो जाता है। चीजें सब उलटी हो जाती हैं।

मकान मेरा कैसे हो सकता है? मैं नहीं था, तब भी था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी रहेगा। जमीन मेरी कैसे हो सकती है? मैं नहीं था, तब भी थी। मैं नहीं रहूंगा, तब भी होगी। और जमीन को बिलकुल पता नहीं है कि मेरी है। और मेरा मोह एक सम्मोहन का जाल फैला लेता है-मेरा बेटा है, मेरी पत्नी है, मेरे पिता हैं, मेरा धर्म है, मेरा धर्मग्रंथ है, मेरा मंदिर है, मेरी मस्जिद है-मैं के आस-पास एक बड़ा जाल खड़ा हो जाता है। वह जो मैं का फैलाव है, वही मोह का अंधकार है।

असल में मैं जो है, उसे ठीक ऐसा समझें कि वह अंधेरे का दीया है। जैसे दीए से रोशनी गिरती है, ऐसे मैं से अंधकार गिरता है। जैसे दीया जलता है, तो प्रकाश हो जाता है; ऐसे मैं जलता है, तो अंधकार हो जाता है। जितना सघन मैं, उतनी डार्कनेस, उतना निबिड़ अंधकार चारों ओर फैलता चला जाता है। जो आदमी मैं में ही जीता है, वह अंधकार में जीता है-मोह-निशा में।

तो कृष्ण कहते हैं, इस मोह की कालिमा से जो मुक्त हो जाता है, वैसा व्यक्ति वैराग्य को उपलब्ध होता है। लेकिन कृष्ण जिसे वैराग्य कहते हैं, हम आमतौर से उसे वैराग्य नहीं कहते हैं। इसलिए इस बात को भी ठीक से समझ लेना जरूरी है।

हम तो वैराग्य जिसे कहते हैं, वह राग की विपरीतता को कहते हैं। विपरीत राग को कहते है वैराग्य, हम जिसे वैराग्य कहते हैं। मकान मेरा है, ऐसा जानना राग है-हमारी बुद्धि में। मकान मेरा नहीं है, ऐसा जानना वैराग्य है-हमारी बुद्धि में। लेकिन मेरा है या मेरा नहीं है, ये दोनों एक ही चीज के दो छोर है। कृष्ण इसे वैराग्य नहीं कहते। यह विपरीत राग है। यह राग से मुक्ति नही है। नहीं, मेरा नही है।

रामतीर्थ अमेरिका से वापस लौटे, टेहरी गढ़वाल मे मेहमान थे। उनकी पत्नी मिलने आई। खिड़की से देखा पत्नी को आते हुए, तो खिड़की बंद करके द्वार बंद कर लिया। एक मित्र साथ ठहरे हुए थे, सरदार पूर्ण सिंह। उन्होंने कहा, दरवाजा क्यों बंद करते है? क्योंकि मैने आपको किसी भी स्त्री के लिए कभी दरवाजा बंद करते नही देखा! पूर्ण सिंह जानते है कि जो आ रही है, उनकी पत्नी है-या थी। रामतीर्थ ने कहा, वह मेरी कोई भी नहीं है। पर पूर्ण सिंह ने कहा कि और भी जो स्त्रियां आती है, वे भी आपकी कोई नही है। लेकिन उन और कोई नही स्त्रियो के लिए कभी द्वार बंद नहीं किया! नहीं, यह स्त्री जरूर आपकी कोई है-विशेष आयोजन करते हैं, द्वार बंद करते है! रामतीर्थ ने कहा, वह मेरी पत्नी थी; लेकिन मेरी कोई पत्नी नहीं है। पूर्ण सिंह ने कहा, अगर वह पत्नी नहीं है, तो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा किसी भी स्त्री के साथ करते है। द्वार खोलें!

यह व्यवहार विशेष है; यह विपरीत राग का व्यवहार है। एक भ्रम था कि मेरी पत्नी है, अब एक भ्रम है कि मेरी पत्नी नहीं है। लेकिन अगर पहला भ्रम गलत था, तो दूसरा भ्रम सही कैसे हो सकता है? वह पहले पर ही खड़ा है; वह पहले का ही एक्सटेंशन है; वह उसी का विस्तार है।

पहला भ्रम तो हमारी समझ में आ जाता है। दूसरा भ्रम विरागी का भ्रम है-संन्यासी का, त्यागी का-वह जरा हमारी समझ में मुश्किल से आता है। लेकिन

साफ है बात कि यह पत्नी विशेष है, यह साधारण नहीं है। इस स्त्री के प्रति रामतीर्थ की कोई दृष्टि है। किसी दिन रामतीर्थ ने इस स्त्री के लिए उठकर द्वार खोला होता, अब उठकर द्वार बंद कर रहे हैं। लेकिन इस स्त्री के लिए उठते जरूर हैं। किसी दिन द्वार खोलने उठे होते, अपनी पत्नी है; आज द्वार बंद करने उठे हैं, अपनी पत्नी नहीं है। लेकिन द्वार तक रामतीर्थ को उठना पड़ता है; वैराग्य नहीं है।

पूर्ण सिंह ने कहा कि अगर आप द्वार नहीं खोलते हैं, तो मैं नमस्कार करता हूं। मेरे लिए आपका सब ब्रह्मज्ञान व्यर्थ हो गया। मैं जाता हूं। यह कैसा ब्रह्मज्ञान है! क्योंकि किसी स्त्री से आपने नहीं कहा अब तक रुकने के लिए। सभी स्त्रियों में ब्रह्म दिखाई पड़ा। आज इस स्त्री में कौन-सा कसूर हो गया है कि ब्रह्म नहीं है!

रामतीर्थ को भी चुभी बात; खयाल में पड़ी। द्वार तो खोल दिया। लेकिन विचारशील व्यक्ति थे। यह तो दिखाई पड़ गया कि वैराग्य फलित नहीं हुआ है। क्योंकि वैराग्य का अर्थ ही यह है कि जहां न राग रहा हो, न विराग रहा हो। वैराग्य भी न रहा हो, वहीं वैराग्य है। मोह की निशा पूरी ही खो गई हो। मेरा खो गया हो, मेरा नहीं है, यह भी खो गया हो। जहां वैराग्य भी नहीं है, वहीं वैराग्य है।

रामतीर्थ को भी दिखाई तो पड़ गया। समझ में तो आ गया। उसी दिन उन्होंने गेरुए वस्त्र छोड़ दिए। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि रामतीर्थ ने जिस दिन जल-समाधि ली, उस दिन वे गेरुए वस्त्र नहीं पहने हुए थे। उस दिन उन्होंने साधारण वस्त्र पहन लिए थे। क्योंकि यह उनको भी यह साफ हो गया था कि यह वैराग्य नहीं है।

वैराग्य का अर्थ, जहां न राग रह गया, न विराग रह गया। न जहां किसी चीज का आकर्षण है, न विकर्षण है; न अट्रैक्शन है, न रिपल्शन है। जहां न किसी चीज के प्रति खिंचाव है, न विपरीत भागना है। न जहां किसी चीज का बुलावा है, न विरोध है। जहां व्यक्ति थिर हुआ, सम हुआ; जहां पक्ष और विपक्ष एक से हो गए, वहां वैराग्य फलित होता है।

लेकिन इसे विराग क्यों कहते हैं? वैराग्य क्यों कहते हैं? क्योंकि जहां वैराग्य भी नहीं है, वहां वैराग्य क्यों कहते हैं? कोई उपाय नहीं है। शब्द की मजबूरी है, और

कोई बात नहीं है। आदमी के पास सभी शब्द द्वंद्वात्मक हैं, डायलेक्टिकल हैं। आदमी की भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जो नान-डायलेक्टिकल हो, द्वंद्वात्मक न हो। मनुष्य ने जो भाषा बनाई है, वह मन से बनाई है। मन द्वंद्व है। इसलिए मनुष्य जो भी भाषा बनाता है, उसमें विपरीत शब्दों में भाषा को निर्मित करता है।

बड़े मजे की बात है कि हमारी भाषा बन ही नहीं सकती विपरीत के बिना। क्योंकि बिना विपरीत के हम परिभाषा नहीं कर सकते, डेफिनीशन नहीं कर सकते। अगर कोई आपसे पूछे कि अंधेरा यानी क्या? तो आप कहते हैं, जो प्रकाश नहीं है। बड़ी सर्कुलर डेफिनीशन है। कोई पूछे, प्रकाश यानी क्या? तो आप कहते हैं, जो अंधेरा नहीं है। न आपको अंधेरे का पता है कि क्या है, न प्रकाश का पता है कि क्या है। अंधेरे को जब पूछते हैं, क्या है? तो कह देते हैं, प्रकाश नहीं है। और जब पूछते हैं, प्रकाश क्या है? तो कह देते है, अंधेरा नहीं है। यह कोई परिभाषा हुई? यह कोई डेफिनीशन हुई? परिभाषा तो तभी हो सकती है, जब कम से कम एक का तो पता हो!

मैने सुना है, एक आदमी एक अजनबी गांव में गया। उसने पूछा कि अ नाम का आदमी कहां रहता है? तो लोगों ने कहा, ब नाम के आदमी के पड़ोस में। पर उसने कहा, मुझे ब का भी कोई पता नहीं, ब कहां रहता है? उन्होंने कहा, अ के पड़ोस में। पर उसने कहा कि इससे कुछ हल नहीं होता, क्योंकि न मुझे अ का पता है, न ब का पता है। मुझे ठीक-ठीक बताओ, अ कहां रहता है? उन्होंने कहा, ब के पड़ोस में। लेकिन ब कहां रहता है? उन्होंने कहा, अ के पड़ोस में।

आदमी से पूछो, चेतना क्या है? वह कहता है, पदार्थ नहीं। उससे पूछो, पदार्थ क्या है? वह कहता है, चेतना नहीं। माइंड क्या है? मैटर नहीं। मैटर क्या है? माइंड नहीं। बड़े से बड़ा दार्शनिक भी इसको परिभाषा कहता है, इसको डेफिनीशन कहता है। यह डेफिनीशन हुई? धोखा हुआ, डिसेप्शन हुआ-परिभाषा न हुई। क्योंकि इसमें से एक का भी पता नहीं है।

लेकिन आदमी को कुछ भी पता नहीं है, काम तो चलाना पड़ेगा। इसलिए आदमी बेईमान शब्दों को रखकर काम चलाता है। उसके सब शब्द डिसेप्टिव

हैं। उसके किसी शब्द में कोई भी अर्थ नहीं है। क्योंकि अपने शब्द में वह जिस शब्द से अर्थ बताता है, उस शब्द में भी उसको कोई अर्थ नहीं है। उसकी सब परिभाषाएं सर्कुलर हैं, वर्तुलाकार हैं। वह कहता है, बाएं यानी क्या! वह कहता है, दाएं जो नहीं है। और दाएं? वह कहता है, बाएं नहीं। लेकिन इनमें से किसी का पता है कि बायां क्या है?

यह आदमी की भाषा डायलेक्टिकल है। डायलेक्टिकल का मतलब यह कि जब आप पूछें अ क्या, तो वह ब की बात करता है; जब पूछें ब क्या, तो वह अ की बात करने लगता है। इससे भ्रम पैदा होता है कि सब पता है। पता कुछ भी नहीं है; सिर्फ शब्द पता हैं। लेकिन बिना शब्दों के काम नहीं चल सकता। राग है तो विराग है। लेकिन तीसरा शब्द कहां से लाएं? और तीसरा शब्द ही सत्य है। वह कहां से लाएं?

महावीर कहते हैं, वीतराग। लेकिन उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वीतराग का भी मतलब राग के पार हो जाना, बियांड अटैचमेंट होता है। विराग का भी मतलब वही होता है कि राग के बाहर हो जाना। कोई फर्क नहीं पड़ता। हम कोई भी शब्द बनाएंगे, वह किसी शब्द के विपरीत होगा। वह तीसरा नहीं होता, वह हमेशा दूसरा ही होता है। और सत्य तीसरा है। इसलिए दूसरे शब्द को कामचलाऊ रूप से उपयोग करते हैं। कृष्ण भी कामचलाऊ उपयोग कर रहे हैं।

इसलिए वैराग्य का अर्थ राग की विपरीतता मत समझ लेना। वैराग्य का अर्थ है, द्वंद्व के पार, राग और विराग के पार जो हो गया, जिसे न अब कोई चीज आकर्षित करती है, न विकर्षित करती है। क्योंकि विकर्षण आकर्षण का ही शीर्षासन है। क्योंकि विकर्षण आकर्षण का ही शीर्षासन है। वह सिर के बल खड़ा हो गया आकर्षण है। और मोह की अंध-निशा टूटे तो। शर्त साफ है। वैराग्य को कौन उपलब्ध होता है? मोह की अंध-निशा टूटे तो, मोह की कालिमा बिखरे तो।

लेकिन हम क्या करते हैं? हम मोह की कालिमा नहीं तोड़ते, मोह के खिलाफ अमोह को साधने लगते हैं। हम मोह की कालिमा नहीं तोड़ते, मोह के खिलाफ, विरोध में अमोह को साधने लगते हैं। हम कहते हैं, घर में मोह है, तो घर छोड़ दो, जंगल चले जाएं। लेकिन जिस आदमी में मोह था, आदमी में था कि घर में था?

अगर घर में मोह था, तो आदमी चला जाए तो मोह के बाहर हो जाएगा। अगर घर मोह था। लेकिन घर को कोई भी मोह नहीं है आपसे, मोह आपको है घर से। और आप भाग रहे हैं और घर वहीं का वहीं है। आप जहां भी जाएंगे, मोह वहीं पहुंच जाएगा। वह आपके साथ चलेगा, वह आपकी छाया है। फिर आश्रम से मोह हो जाएगा-मेरा आश्रम। क्या फर्क पड़ता है? मेरा घर, मेरा आश्रम-क्या फर्क पड़ता है? मेरा बेटा, मेरा शिष्य-क्या फर्क पड़ता है? मोह नया इंतजाम कर लेगा, मोह नई गृहस्थी बसा लेगा।

यह बड़ी मजेदार बात है कि गृह का अर्थ घर से नहीं है। गृह का अर्थ उस मोह से है, जो घर को बसा लेता है, दैट व्हिच बिल्ट्स दि होम। होम से मतलब नहीं है गृह का; उससे मतलब है, जो घर को बनाता है। वह कहीं भी घर को बना लेगा। वह झाड़ के नीचे बैठेंगे, तो मेरा हो जाएगा। महल होगा, तो मेरा होगा। लंगोटी होगी, तो मेरी हो जाएगी। और मेरे को कोई दिक्कत नहीं आती कि बड़ा मकान हो कि छोटा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरे का आयतन कितना है, इससे मेरे के होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा, आयतन पर निर्भर नहीं है।

इसे ऐसा समझें, एक आदमी दो लाख रुपये की चोरी करे और एक आदमी दो पैसे की चोरी करे, तो क्या आप समझते हैं कि दो पैसे की चोरी छोटी चोरी है और दो लाख रुपये की चोरी बड़ी चोरी है? आयतन बड़ा है, चोरी बराबर है। दो लाख की चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी दो पैसे की चोरी है। क्योंकि चोरी करने में जो भी घटना घटती है, वह दो पैसे में भी घट जाती है, दो लाख में भी घट जाती है। चोर तो आदमी हो ही जाता है दो पैसे में उतना ही, जितना दो लाख में। हां, अदालत दो पैसे के चोर को छोटा चोर कहे, दो लाख के चोर को बड़ा चोर कहे, सजा कम-ज्यादा करे, वह बात अलग है। क्योंकि अदालत को चोरी से मतलब नहीं है, दो लाख से मतलब है। अदालत क्वांटिटी पर जीती है।

धर्म का क्वांटिटी से, परिमाण से कोई संबंध नहीं। धर्म का क्वालिटी से संबंध है, गुण से संबंध है। धर्म कहेगा, दो पैसे की चोरी या दो लाख की चोरी, बराबर चोरी है। इसमें कोई फर्क नहीं। गणित में होगा फर्क, धर्म में कोई भी फर्क नहीं है। धर्म के लिए चोरी हो गई। आदमी चोर है।

सच तो यह है कि धर्म को और थोड़ा गहरे में उतरें, तो अगर दो लाख और दो पैसे की चोरी में कोई फर्क नहीं है, तो दो लाख की चोरी और चोरी करने के विचार में भी कोई फर्क हो सकता है? धर्म के लिए कोई फर्क नहीं है। चोरी की या चोरी करने का विचार किया, कोई अंतर नहीं है, बात घटित हो गई। हम जो करते हैं, वह भी हमारे जीवन का हिस्सा हो जाता है। जो हम करने की सोचते हैं, वह भी हमारे जीवन का हिस्सा हो जाता है।

यह जान सोलिज की जिस किताब का मैंने नाम लिया, अरेस्ट्रोस, उसमें उसका एक वचन और है कि आदमी अपने कर्मों से ही नहीं बंधता-सिर्फ कर्मों से नहीं बंधता-बल्कि जो उसने करना चाहा और नहीं किया, उससे भी बंध जाता है।

हम सिर्फ चोरी से ही नहीं बंधते-की गई चोरी से-नहीं की गई चोरी से, सोची गई चोरी से भी उतने ही बंध जाते हैं। की गई चोरी से दूसरे को भी पता चलता है, न की गई चोरी से जगत को पता नहीं चलता, लेकिन परमात्मा को पूरा पता चलता है। क्योंकि परमात्मा से हमारे संबंध भाव के हैं, कृत्य के नहीं। करने के नहीं हैं हमारे संबंध परमात्मा से, करने के संबंध जगत से हैं, समाज से हैं, बाहर से हैं। होने के संबंध हैं हमारे परमात्मा से-बीइंग के, डूइंग के नहीं।

और होने में क्या फर्क पड़ता है? मैंने चोरी की कल्पना की या मैंने चोरी की, इससे होने में कोई फर्क़ नहीं पड़ता, चोर मैं हो गया। परमात्मा की तरफ तो चोरी की खबर पहुंच गई कि यह आदमी चोर है। हां, जगत तक खबर नहीं पहुंची। जगत तक खबर पहुंचने में देर लगेगी। जगत तक खबर पहुंचने में चोरी का विचार ही नहीं, चोरी को हाथ का भी सहयोग लेना होगा। जगत तक पहुंचने में भाव ही नहीं, पौदगलिक कृत्य, मैटीरियल एक्ट भी करना होगा। इससे चोरी बढ़ती नहीं, सिर्फ चोरी प्रकट होती है; अनमैनिफेस्ट चोरी मैनिफेस्ट होती है; अव्यक्त चोरी व्यक्त होती है। बस और कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अव्यक्त चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी व्यक्त चोरी है, जहां तक धर्म का संबंध है।

तो यह सवाल नहीं है कि आपके पास कितना बड़ा मकान है, कि मकान नहीं है, झोपड़ा है। यह सवाल नहीं है कि आपके पास करोड़ों रुपये हैं, कि

कौड़ियां हैं। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि आपके पास मेरा कहने का भाव है या नहीं है।

वही मेरे का भाव मोह की निशा है, मोह का अंधकार है। जब तक आप कह सकते हैं मेरा, चाहे यह मेरा किसी भी चीज से जुड़ता हो-मेरा धर्म-फर्क नहीं पड़ता, मोह की निशा जारी है। आप कह सकते हैं : हिंदू, मुसलमान मेरा; कुरान, बाइबिल, गीता मेरी; मंदिर-मस्जिद मेरा।

हम अजीब लोग हैं। सारी दुनिया के धर्म चिल्लाते हैं कि जिसे परमात्मा को पाना हो, उसे मेरे को छोड़ना पड़ेगा। और हम इतने कुशल हैं कि हम परमात्मा को भी मेरा बना लेते हैं कि मेरा! वह परमात्मा तेरा, यह परमात्मा मेरा।

मैंने सुना है कि किसी गांव में एक बहुत मजेदार घटना घटी। गणेशोत्सव था और गणेश का जुलूस निकल रहा था। लेकिन पूरे गांव के लोगों के हर मोहल्ले के गणेश होते थे। अब गणेश हर मोहल्ले के होते, कोई ब्राह्मणों का गणेश होता, कोई भंगियों का गणेश होता, कोई चमारों का गणेश होता, कोई लोहारों का, कोई तेलियों का। लेकिन नियम था, डिसिप्लिन थी गणेशों की भी एक। और वह यह थी कि ब्राह्मणो का गणेश पहले चलता, फिर उसके बाद किसी का, फिर किसी का; ऐसी प्रोसेशन में व्यवस्था थी।

लेकिन एक वर्ष ऐसा हुआ कि ब्राह्मणों के गणेश जरा समय से देर से पहुंचे। ब्राह्मणो के गणेश थे; समय में जरा देर दिखानी ही चाहिए! आदमी के बड़े होने का पता ही चलता है कि वह समय से जरा देर से पहुंचे। जितना बड़ा नेता, उतनी देर से पहुंचता है। जरा देर से पहुंचे ब्राह्मणों के गणेश, और तेलियों के गणेश जरा पहले पहुंच गए। गरीब गणेश थे, वह जरा पहले पहुंच गए, समय से पहुंच गए कि कहीं जुलूस न निकल जाए। क्योंकि तेलियों के गणेश के लिए कोई जुलूस रुकेगा नहीं। उनको तो समय पर पहुंचना ही चाहिए, वे समय पर पहुंचे।

फिर समय से बहुत देर हो गई, जुलूस निकालना जरूरी था, रात हुई जाती थी, तो तेलियो के गणेश ही आगे हो गए। पीछे से आए ब्राह्मणों के गणेश! तो ब्राह्मणों ने कहा, हटाओ तेलियों के गणेश को! तेलियों का गणेश और आगे? यह कभी नहीं हो सकता। बेचारे तेलियों के गणेश को पीछे हटना पड़ा।

हिंदू के भी देवता हैं, मुसलमान के भी। हिंदुओं में भी हिंदुओं के हजार देवता हैं। एक देवता भी तेलियों और ब्राह्मणों का होकर, अलग हो जाता है। भगवान मेरे को छोड़ने से मिलता है। और हम इतने कुशल हैं कि भगवान को भी मेरे की सीमाओं में बांधकर खड़ा कर देते हैं। मंदिर जलता है, तो किसी मुसलमान को पीड़ा नहीं होती; खुशी होती है। मस्जिद जलती है, तो किसी हिंदू को पीड़ा नहीं होती; खुशी होती है। और हर हालत में भगवान ही जलता है। लेकिन मेरे की वजह से दिखाई नहीं पड़ता। मेरा अंधा कर जाता है। वह मेरा अंधकार है।

किसी भी तरह के मेरे का भाव मोह की निशा है। इसके प्रति जागना है, भागना नहीं है। भागे कि मैं की विपरीतता शुरू हुई, कि फिर मैं कहीं और निर्माण होगा। फिर वह वहां जाकर अपने को निर्मित कर लेगा।

मैं जो है, बड़ी क्रिएटिव फोर्स है; मैं जो है, बड़ी सृजनात्मक शक्ति है। वास्तविक नहीं, स्वप्न का सृजन करती है, ड्रीम क्रिएटिंग। स्वप्न का निर्माण करती है, लेकिन करती है। बहुत हिप्नोटिक है। जहां भी खड़ी हो जाती है, वहां एक संसार बन जाता है।

सच तो यह है कि मेरे के कारण ही संसार है। जिस दिन मेरा नहीं है, उस दिन संसार कहीं भी नहीं है। मेरे के कारण ही गृह है, गृहस्थी है। जिस दिन मेरा नहीं है, उस दिन कहीं कोई गृह नहीं है, कहीं कोई गृहस्थी नहीं है। संन्यासी वह नहीं है, जो घर छोड़कर भाग गया; संन्यासी वह है, जिसके भीतर घर को बनाने वाला बिखर गया। जिसके भीतर से वह निर्माण करने वाली मोह की जो तंद्रा थी, वह खो गई है।

इसे कृष्ण कहते हैं, इस मोह की निशा को जो छोड़ देता है और जिसकी बुद्धि वैराग्य को उपलब्ध हो जाती है, उसके जीवन में, उसके जीवन में फलित होता है-कहें उसे मोक्ष, कहें उसे ज्ञान, कहें उसे आनंद, कहें उसे परमात्मा, कहें उसे ब्रह्म, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे सिर्फ नामों के भेद हैं।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।। 53।।

और जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धांतों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि परमात्मा के स्वरूप में अचल और स्थिर ठहर जाएगी, तब तू समत्वरूप योग को प्राप्त होगा।

जैसी बुद्धि है, निश्चल नहीं है। जैसी बुद्धि है, दृढ़ नहीं है। जैसी बुद्धि है, वेवरिंग, कंपित, कंपती हुई, लहराती हुई है। जैसी बुद्धि है वह ऐसी है, जैसे तूफान और आंधी में दीए की ज्योति होती है। एक क्षण भी एक जगह नहीं; एक क्षण में भी अनेक जगह। क्षण के शुरू में कहीं होती है, तो क्षण के अंत में कहीं। एक क्षण को भी आश्वस्त नहीं कि बचेगी, बुझती-जलती मालूम पड़ती है। झोंके हवा के-और ज्योति अब गई, अब गई, ऐसी ही होती रहती है।

कीर्कगार्ड ने मनुष्य को कहा है, ए ट्रेंबलिंग, एक कंपन। पूरे समय-जन्म से लेकर मृत्यु तक-एक कंपन, जहां सब कंप रहा है, जहां सब भूकंप है। जहां भीतर कोई थिरता नहीं, कोई दृढ़ता नहीं। जो हम बाहर से चेहरे बनाए हुए हैं, वे झूठे है। हमारे बाहर के चेहरे ऐसे लगते हैं, बड़े अकंप हैं। सचाई वैसी नहीं है; भीतर सब कंपता हुआ है। बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भय से कंप रहा है। बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भय से कंप रहा है।

स्टैलिन था। नाम ही उसको स्टैलिन इसलिए दिया-मैन आफ स्टील, लौहपुरुष। नाम नहीं है उसका असली वह, दिया हुआ नाम है-लौहपुरुष, स्टैलिन, स्टील का आदमी। लेकिन ख्रुश्चेव ने अभी संस्मरण लिखे हैं। तो उसमें लिखा है कि वह इतना भयभीत आदमी था, जिसका कोई हिसाब नहीं। और एक दिन तो ख्रुश्चेव से उसने कहा कि अब तक तो मैं दूसरों से डरता था, अब तो मैं अपने से भी डरने लगा हूं। डर भारी था।

स्टैलिन कभी भी भोजन नहीं कर सकता था सीधा, जब तक कि दो-चार को खिलाकर न देख ले। अपनी लड़की पर भी भरोसा नहीं था, कि जो खाना

बना है, उसमें जहर तो नहीं है! ख्रुश्चेव ने लिखा है, हम सब को उसका भोजन पहले चखना पड़ता था। हम भी कंपते हुए चखते थे कि जिससे स्टैलिन घबड़ा रहा है, लौहपुरुष, वह हमको चखना पड़ रहा है! लेकिन मजबूरी थी। पहले चार को भोजन करवा लेता सामने बिठाकर। जब देख लेता कि चारों जिंदा हैं, तब भोजन करता। भोजन करना भी निश्चिंतता न रही।

घर से बाहर नहीं जाता था। समझा तो यह जाता है कि उसने एक डबल आदमी रख छोड़ा था, अपनी शकल का एक आदमी और रख छोड़ा था, जो सामूहिक जलसों में सम्मिलित होता था। हिटलर ने भी एक डबल रख छोड़ा था। सामूहिक जलसे में कहां-कब गोली लग जाएगी! सब इंतजाम है, फिर भी डर है। इंतजाम भारी था। स्टैलिन और हिटलर के पास जैसा इंतजाम था, ऐसा पृथ्वी पर किसी आदमी के पास कभी नहीं रहा। एक-एक आदमी की तलाशी ले ली जाती थी। हजारों सैनिकों के बीच में थे। सब तरह का इंतजाम था। लेकिन फिर भी आखिरी इंतजाम यह था कि जो आदमी सलामी ले रहा है जनता की, वह असली स्टैलिन नहीं है। वह एक नकली अभिनेता है, जो स्टैलिन का काम कर रहा है। स्टैलिन तो अपने घर में बैठा हुआ देख रहा है, खबर सुन रहा है कि क्या हो रहा है।

कैसी विडंबना है कि स्टैलिन और हिटलर जैसे आदमी इसी यश को पाने के लिए इतना श्रम करते हैं! और फिर कोई अभिनेता नमस्कार लेता है जाकर। पत्नी को भी कमरे में सुला नहीं सकते। क्योंकि रात कब गरदन दबा देगी, कुछ पता नहीं।

खूब स्टील के आदमी हैं! तो घास-फूस का आदमी कैसा होता है? भूसे से भरा आदमी कैसा होता है? और अगर स्टैलिन इतने भूसे से भरे हैं, तो हमारी क्या हालत होगी? हम तो स्टैलिन नहीं हैं, हम तो स्टील के आदमी नहीं हैं। स्टील के आदमी की यह हालत हो, तो हमारी क्या हालत होगी?

नहीं, एक चेहरा, एक मास्क, एक मुखौटा है, जो ऊपर से बिलकुल थिर है। भीतर असली चेहरा पूरे वक्त कंप रहा है। वहां कंपन ही चल रहा है। वहां बहादुर से बहादुर आदमी भीतर भयभीत है। वहां तथाकथित ज्ञानी से ज्ञानी, भीतर गहरे में अज्ञान से कंप रहा है। यहां वह कह रहा है कि मुझे पता है, ब्रह्म है।

और वहां भीतर वह जान रहा है, मुझे कुछ भी पता नहीं। यह भी पता नहीं है कि मैं भी हूं। बाहर वह दिखला रहा है अधिकार, कि मुझे मालूम है। भीतर उसे कुछ भी मालूम नहीं है। भीतर अज्ञान खाए जा रहा है। बाहर से वह कह रहा है, आत्मा अमर है। और भीतर मौत मुंह बाए मालूम पड़ती है।

ऐसी जो हमारी बुद्धि है, जो दृढ़ नहीं है। लेकिन दृढ़ का क्या मतलब है? फिर वही कठिनाई है शब्दों की। दृढ़ का क्या मतलब है? जिसको हम दृढ़ आदमी कहते हैं, क्या उसके भीतर कंपन नहीं होता? असल में जितनी दृढ़ता आदमी बाहर से दिखाता है, उतना ही भीतर कंपित होता है। असल में दृढ़ता जो है, वह सेफ्टी मेजर है, वह भीतर के कंपन को झुठलाने के लिए आयोजन है।

एडलर ने इस संबंध में बड़ी मेहनत की है। शायद मनुष्य जाति के इतिहास में इस दिशा में एडलर की खोज सर्वाधिक कीमती है। एडलर कहता है कि एक बड़ी अजीब घटना आदमी के साथ घटती है कि आदमी जो भीतर होता है, उससे ठीक उलटा बाहर आयोजन करता है, दि एग्जेक्ट कानट्रेरी, ठीक उलटा आयोजन करता है। जितना मनुष्य भीतर हीनता से पीड़ित होता है, उतना बाहर श्रेष्ठता का आयोजन करता है।

सभी राजनीतिज्ञ इनफीरिअरिटी कांप्लेक्स से पीड़ित होते हैं। होंगे ही, अन्यथा राजनीतिज्ञ होना मुश्किल है। राजनीतिज्ञ होने के लिए जरूरी है कि भीतर हीनता का भाव हो कि मैं कुछ भी नहीं हूं। तभी आदमी दौड़कर सिद्ध करता है कि देखो, मैं कुछ हूं। यह आपको कम सिद्ध करता है, अपने को ज्यादा सिद्ध करता है- अपने सामने-कि नहीं, गलत थी वह बात कि मैं कुछ नहीं हूं। देखो, मैं कुछ हूं।

एडलर का कहना है कि बड़े से बड़े जो संगीतज्ञ हुए है जगत में, वे वे ही लोग हैं, जिनके बचपन में कान कमजोर होते हैं। कमजोर कान का आदमी संगीतज्ञ हो जाता है। कमजोर आंख के आदमी चित्रकार हो जाते हैं।

लेनिन कुर्सी पर बैठता था, तो उसके पैर जमीन नहीं छूते थे। पैर बहुत छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बहुत बड़ा था। लेकिन बड़ी से बड़ी कुर्सी पर वह आदमी बैठ सका। उसने सिद्ध करके बता दिया कि तुम्हारे पैर अगर जमीन को

छूते हैं, तो कोई बात नहीं, कोई फिक्र नहीं, हम कुर्सी को आसमान से छूकर बताए देते हैं। एडलर कहेगा कि लेनिन की इस महत्वाकांक्षा में उसके पैरों का छोटा होना ही कारण था, वह हीनता ही उसको पीड़ित कर रही थी। पैर बहुत छोटे थे, साधारण कुर्सी पर भी लटक जाते थे, जमीन पर नहीं पहुंचते थे।

बर्नार्ड शा ने मजाक में कहा है कि छोटे पैर से क्या फर्क! छोटा हो पैर कि बड़ा हो, जमीन पर आदमी खड़ा हो, तो सभी के पैर जमीन पर पहुंच जाते हैं। क्या फर्क पड़ता है छोटे-बड़े पैर से? जमीन पर खड़ा हो, तो सभी के पैर जमीन पर पहुंच जाते हैं।

वह तो ठीक है। लेकिन छोटे पैर से फर्क पड़ता है; आदमी कुर्सी पर पहुंच जाता है। क्योंकि जब तक कुर्सी पर नहीं पहुंच जाता, तब तक उसके प्राण पीड़ित होते रहते हैं कि पैर छोटे हैं, पैर छोटे हैं, पैर छोटे हैं। वही पीड़ा उसको विपरीत यात्रा पर ले जाती है।

तो एडलर से अगर पूछें कि दृढ़ता का क्या मतलब है? तो एडलर और कृष्ण के मतलब में फर्क है; वह मैं समझाना चाहता हूं। एडलर कहेगा, दृढ़ता का मतलब कि आदमी वीकलिंग है, भीतर कमजोर है। आदमी भीतर कमजोर है, इसलिए बाहर से दृढ़ता आरोपित कर रहा है। आदमी भीतर घास-फूस का है, इसलिए बाहर से स्टैलिन है। आदमी भीतर से कुछ नहीं है, इसलिए बाहर से सब कुछ बनने की कोशिश में लगा है। क्या कृष्ण भी इसी दृढ़ता की बात कर रहे हैं? अगर इसी दृढ़ता की बात कर रहे हैं, तो दो कौड़ी की है।

नहीं, इस दृढ़ता की वे बात नहीं कर रहे हैं। एक और दृढ़ता है, जो भीतर की कमजोरी को दबाने से उपलब्ध नहीं होती, जो भीतर के चित्त के विपरीत आयोजन करने से उपलब्ध नहीं होती, बल्कि भीतर के कंपित चित्त के विदा हो जाने से उपलब्ध होती है।

दो तरह की दृढ़ताएं हैं। एक दृढ़ता वह है, जिसमें मेरे भीतर कमजोरी तो मौजूद रहती है, और उसकी छाती पर सवार होकर मैं दृढ़ हो जाता हूं। और एक ऐसी दृढ़ता है, जो मेरी कमजोरी बिखर जाती है, विलीन हो जाती है, उसके अभाव में जो

मेरे भीतर छूट जाती है। लेकिन उसे हम क्या कहें ? उसे दृढ़ता कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सच तो यह है कि दृढ़ता पहले वाली ही है। वह एडलर ठीक कहता है। उसे हम क्या कहें, जो कमजोरी के विसर्जन पर बचती है ?

एक तो स्वास्थ्य वह है, जो भीतर बीमारी को दबाकर प्रकट होता है। और एक स्वास्थ्य वह है, जो बीमारी के अभाव पर, एब्सेंस में प्रकट होता है। लेकिन जो बीमारी के अभाव में प्रकट होता है, उस स्वास्थ्य को हम क्या कहें ? क्योंकि हम एक ही तरह के स्वास्थ्य से परिचित हैं, जो बीमारी को दबाकर उपलब्ध होता है। दबाने की प्रक्रिया को इसलिए हम दवा कहते हैं। दवाई-दबाने वाली। जिससे हम बीमारी को दबाते रहते है, उसको हम दवा कहते हैं।

लेकिन एक और स्वास्थ्य है, जो बीमारी का अभाव है-दबाव नहीं, सप्रेशन नहीं-एब्सेंस। लेकिन अगर हम मेडिकल साइंस से पूछने जाएं, तो वह कहेगी कि नहीं, हम ऐसे किसी स्वास्थ्य को नहीं जानते हैं, जो बीमारी का अभाव है। हम तो ऐसे ही स्वास्थ्य को जानते हैं, जो बीमारी से लड़कर उपलब्ध होता है।

इसलिए अगर आप किसी चिकित्सक से जाकर कहें कि मुझे स्वस्थ होना है, तो वह कहेगा, हम कुछ रास्ता नहीं बता सकते है। हमसे तो यह पूछो कि कौन-सी बीमारी है, उसे अलग करना है, उसे मिटाना है, तो हम रास्ता बता सकते हैं।

इसलिए आज तक दुनिया की कोई भी मेडिकल साइंस, चाहे वह आयुर्वेद हो और चाहे वह एलोपैथी हो और चाहे होमियोपैथी हो और चाहे यूनानी हो और चाहे कोई और हो, कोई भी पैथी हो, वह अब तक स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं कर पाई, सिर्फ बीमारियों की परिभाषा कर पाई है। उससे पूछो कि स्वास्थ्य क्या है ? तो वह कहेगी, हमें पता नहीं। हमसे पूछो कि बीमारियां क्या हैं, तो हम बता सकते हैं, टी.बी. का मतलब यह, कैंसर का मतलब यह, फ्लू का मतलब यह। लेकिन स्वास्थ्य का क्या मतलब है ? स्वास्थ्य का हमें कोई पता नहीं है।

हीनता को दबाकर एक श्रेष्ठता प्रकट होती है, यह श्रेष्ठता सदा ही नीचे की हीनता पर कंपती रहती है। सदा भयभीत, सदा अपने को सिद्ध करने को आतुर, सदा अपने को तर्क देने को चेष्टारत, सदा संदिग्ध, सदा भीतर से भयग्रस्त।

और एक ऐसी भी श्रेष्ठता है-असंदिग्ध, अपने को सिद्ध करने को आतुर नहीं, अपने को प्रमाणित करने के लिए चेष्टारत नहीं, जिसे अपने होने का पता ही नहीं।

अब ध्यान रहे, जिस दृढ़ता का आपको पता है, वह एडलर वाली दृढ़ता होगी। और जिस दृढ़ता का आपको पता ही नहीं है, वह कृष्ण वाली दृढ़ता होगी। जिस दृढ़ता का पता है...पता चलेगा कैसे? पता हमेशा कंट्रास्ट में चलता है। स्कूल में शिक्षक लिखता है सफेद खड़िया से काले ब्लैक-बोर्ड पर। सफेद दीवार पर भी लिख सकता है, लिख जाएगा, पता नहीं चलेगा। लेकिन काले ब्लैक-बोर्ड पर लिखता है; लिखता है, दिखाई पड़ता है। काले पर लिखता ही इसीलिए है कि दिखाई पड़ सके। जितना काला ब्लैक-बोर्ड, उतने अक्षर साफ दिखाई पड़ते हैं।

जितना हीन आदमी, उतनी श्रेष्ठता दिखाई पड़ती है। जितना श्रेष्ठ आदमी, उतनी श्रेष्ठता सफेद दीवार पर सफेद अक्षरों जैसी लीन हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती है। कंट्रास्ट में, विरोध में दिखाई पड़ती है।

अगर आपको पता चलता है कि मै स्वस्थ हूं, तो समझना कि बीमारी कहीं दबी है। अगर आपको पता चलता है, मै ज्ञानी हूं, तो समझना कि अज्ञान कही दबा है। अगर आपको पता चलता है कि मै दृढ़ चित्तवान हूं, तो समझना कि भीतर भूसा कहीं भरा है। अगर पता ही नहीं चलता...।

इसलिए उपनिषद कहते है कि जो कहता है, मैं जानता हूं, समझना कि नहीं जानता है। इसलिए उपनिषद एक अदभुत वचन कहते हैं। शायद इससे ज्यादा करेजियस स्टेटमेंट, इससे ज्यादा साहसी वक्तव्य पृथ्वी पर कभी नहीं दिया गया है। उपनिषद कहते हैं कि ज्ञानी को क्या कहें! अज्ञानी तो भटक ही जाते हैं अंधकार में, ज्ञानी महा-अंधकार में भटक जाते हैं, ग्रेटर डार्कनेस। अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महा-अंधकार में भटक जाते हैं। किन ज्ञानियों की बात कर रहा है उपनिषद? उन ज्ञानियों की बात कर रहा है, जिन्हें ज्ञान का पता है कि ज्ञान है।

जिन्हें दृढ़ता का पता है, वे दृढ़ नहीं है। कृष्ण जिस दृढ़ता की बात कह रहे हैं, उसे एडलर की दृढ़ता से बिलकुल भिन्न जान लेना। कृष्ण का मनोविज्ञान बहुत और है। वह विपरीत पर खड़ा हुआ नहीं है। क्योंकि जो विपरीत पर खड़ा हुआ मकान है, किसी भी दिन गिर जाएगा; उसका कोई भरोसा नहीं है। जो प्रतिकूल पर ही निर्मित है, वह अपने शत्रु पर ही आधार बनाए है। स्वभावतः, अपने ही शत्रु के कंधे पर हाथ रखकर जो बलशाली हुआ है, वह कितनी देर बलशाली रहेगा? जो अपने ही विपरीत को अपनी बुनियाद में आधारशिला के पत्थर बनाया है, उसके शिखर कितनी देर तक आकाश में, सूर्य की रोशनी में उन्नत रहेंगे? कितनी देर तक?

नहीं, यह नही हो सकता ज्यादा देर। और जितनी देर ये शिखर ऊपर उन्नत दिखाई भी पड़ेगे, उतनी देर नीचे बुनियाद मे पूरे समय संघर्ष है, पूरे समय द्वंद्व है, पूरे समय प्राणो मे कंपन है, वेवरिंग है, ट्रेंबलिग है। वहां कंपन चलता ही रहेगा, वहां भय हिलता ही रहेगा, वहां पानी की धार कंपती ही रहेगी। यह रेत पर बनाया हुआ मकान है। रेत पर भी नही, पानी पर बनाया हुआ मकान है। यह अब गिरा, अब गिरा, अब गिरा-भीतर आप जानते ही रहेंगे; अब गिरा, अब गिरा, अब गिरा-भीतर आप डरते ही रहेगे। जितना भीतर डरेंगे, उतनी बाहर दृढ़ता दिखलाएंगे-अपने को धोखा देने के लिए, दूसरों को धोखा देने के लिए।

लेकिन कृष्ण जिस दृढ़ता की बात कर रहे है, वह प्रवंचना नहीं है, वह रूपांतरण है। लेकिन वह कब फलित होता है? वह तभी फलित होता है, वह तभी फलित होता है, जब चित्त राग और विराग से, जब बुद्धि चुनाव से, और जब मन विषयो के बीच कंपन को छोड़कर अकंप हो जाता है, जब मन इच्छाओं के बीच कंपन को छोड़कर अनिच्छा को उपलब्ध हो जाता है। अनिच्छा का मतलब विपरीत इच्छा नहीं, इच्छा के अभाव को उपलब्ध हो जाता है। तब वे कहते हैं कि अर्जुन, ऐसी अकंप चित्त की दशा में जीवन की संपदा की उपलब्धि है। तब चित्त दृढ़ है। तब चित्त पानी पर नहीं, चट्टानों पर है। और तब आकाश में शिखर उठ सकता है। और तब पताका, जीवन की, अस्तित्व की ऊंचाइयों में फहरा सकती है।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।। 54।।

इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन ने पूछा :

हे केशव, समाधि में स्थित स्थिर प्रज्ञा वाले पुरुष का क्या लक्षण है और स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है, कैसे चलता है?

अर्जुन पहली बार, अब तक अर्जुन का जो वर्तुल- व्यक्तित्व था, उससे उठकर प्रश्न पूछ रहा है। पहली बार। अब तक जो भी उसने पूछा था, वह पुराना आदमी पूछ रहा था, वह पुराना अर्जुन पूछ रहा था। पहली बार उसके प्रश्न ने कृष्ण को छूने की कोशिश की है-पहली बार। इस वचन से पहली बार वह कृष्ण के निकट आ रहा है। पहली बार अर्जुन अर्जुन की तरह नहीं पूछ रहा है, पहली बार अर्जुन कृष्ण के निकट होकर पूछ रहा है। पहली बार कृष्ण अर्जुन के भीतर प्रविष्ट हुए प्रतीत होते हैं।

यह सवाल गहरा है। वह पूछता है, स्थितप्रज्ञ किसे कहते हैं? किसे कहते हैं, जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गई? वह कौन है? वह कौन है जिसके ज्ञान की ज्योति थिर हो गई? वह कौन है जिसकी चेतना का दीया अकंप है? वह कौन है जिसे समाधिस्थ कहते हैं? उसकी भाषा क्या है? वह उठता कैसे है? वह चलता कैसे है? वह बोलता कैसे है? उसका होना क्या है? उसका व्यवहार क्या है? उसे हम कैसे पहचानें?

दो बातें वह पूछ रहा है। एक तो वह यह पूछ रहा है, प्रज्ञा का स्थिर हो जाना, स्थित हो जाना, ठहर जाना क्या है? लेकिन वह घटना तो बहुत आंतरिक है। वह घटना तो शायद स्वयं पर ही घटेगी, तभी पता चलेगा। वह शायद कृष्ण भी नहीं बता पाएंगे कि क्या है। इसलिए अर्जुन तत्काल-और इसमें अर्जुन बहुत ही बुद्धिमानी का सबूत देता है। एक बहुत इंटेलिजेंट, बहुत ही विचार का, विवेक का सबूत देता है। प्रश्न के पहले हिस्से में पूछता है कि प्रज्ञा का थिर हो जाना क्या

है कृष्ण? लेकिन जैसे किसी अनजान मार्ग से उसको भी एहसास होता है कि प्रश्न शायद अति-प्रश्न है, शायद प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता है। क्योंकि घटना इतनी आंतरिक है कि शायद बाहर से न बताई जा सके।

इसलिए ठीक प्रश्न के दूसरे हिस्से में वह यह पूछता है कि बताएं यह भी कि बोलता कैसे है वह, जिसकी प्रज्ञा थिर हो गई? जो समाधि को उपलब्ध हुआ, समाधिस्थ है, वह बोलता कैसे? डोलता कैसे? चलता कैसे? उठता कैसे? उसका व्यवहार क्या है? इस दूसरे प्रश्न में वह यह पूछता है कि बाहर से भी अगर हम जानना चाहें, तो वह कैसा है? भीतर से जानना चाहें, तो क्या है? वह घटना क्या है? वह हैपनिंग क्या है? जिसको समाधिस्थ कहते हैं, वह घटना क्या है? यह भीतर से। लेकिन अगर यह न भी हो सके, तो जब किसी व्यक्ति में वैसी घटना घट जाती है, तो उसके बाहर क्या-क्या फलित होता है? उस घटना के चारों तरफ जो परिणाम होते है, वे क्या है?

यह प्रश्न पहला प्रश्न है, जिसने कृष्ण को आनंदित किया होगा। यह पहला प्रश्न है, जिसने कृष्ण के हृदय को पुलकित कर दिया होगा। अब तक के जो भी प्रश्न थे, अत्यंत रोगग्रस्त चित्त से उठे प्रश्न थे। अब तक जो प्रश्न थे, वे अर्जुन के जस्टीफिकेशन के लिए थे। वह जो चाहता था, उसके ही समर्थन के लिए थे। अब तक जो प्रश्न थे, उनमें अर्जुन ने चाहा था कि कृष्ण, वह जैसा है, वैसे ही अर्जुन के लिए कोई कंसोलेशन, कोई सांत्वना बन जाएं।

अब यह पहला प्रश्न है, जिससे अर्जुन उस मोह को छोड़ता है कि मैं जैसा हूं, वैसे के लिए सांत्वना हो। यह पहला प्रश्न है जिससे वह पूछता है कि चलो, अब मैं उसको ही जानूं, जैसे आदमी के लिए तुम कहते हो, जैसे आदमी को तुम चाहते हो। जिस मनुष्य के आस-पास तुम्हारे इशारे हैं, अब मैं उसको ही जानने के लिए आतुर हूं। छोड़ूं उसे, जो अब तक मैंने पकड़ रखा था।

इस प्रश्न से अर्जुन की वास्तविक जिज्ञासा शुरू होती है। अब तक अर्जुन जिज्ञासा नहीं कर रहा था। अब तक अर्जुन कृष्ण को ऐसी जगह नहीं रख रहा था, जहां से उनसे उसे कुछ सीखना, जानना है। अब तक अर्जुन कृष्ण का उपयोग

एक जस्टीफिकेशन, एक रेशनलाइजेशन, एक युक्तियुक्त हो सके उसका अपना ही खयाल, उसके लिए कर रहा था।

इसे समझ लेना उचित है, तो आगे-आगे समझ और स्पष्ट हो सकेगी।

हम अक्सर जब प्रश्न पूछते हैं, तो जरूरी नहीं कि वह प्रश्न जिज्ञासा से आता हो। सौ में निन्यानबे मौके पर प्रश्न जिज्ञासा से नहीं आता। सौ में निन्यानबे मौके पर प्रश्न सिर्फ किसी कनफर्मेशन के लिए, किसी दूसरे के प्रमाण को अपने साथ जोड़ लेने के लिए आता है।

बुद्ध एक दिन एक गांव में प्रविष्ट हुए। एक आदमी ने पूछा, ईश्वर है? बुद्ध ने कहा, नहीं, कहीं नहीं है, कभी नहीं था, कभी नहीं होगा। स्वभावतः, वह आदमी कंप गया। कंप गया। उसने कहा, क्या कहते हैं आप? ईश्वर नहीं है? बुद्ध ने कहा, बिलकुल नहीं है। सब जगह खोज डाला; मैं कहता हूं, नहीं है।

फिर दोपहर एक आदमी उस गांव में आया और उसने पूछा कि जहां तक मैं सोचता हूं, ईश्वर नहीं है। आपका क्या खयाल है? बुद्ध ने कहा, ईश्वर नहीं है? ईश्वर ही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं! मैं तो यह सोचकर आया कि बुद्ध नास्तिक हैं।

सांझ को एक और आदमी आया और उस आदमी ने बुद्ध से कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। आप क्या कहते हैं? बुद्ध ने कहा, मैं भी कुछ न कहूंगा। मैं भी चुप रहूंगा। उसने कहा कि नहीं-नहीं, कुछ तो कहें! बुद्ध ने कहा कि मैं कुछ न कहूंगा।

इन तीन को तो छोड़ दें, कठिनाई में पड़ गया बुद्ध का भिक्षु आनंद। वह तीनों समय साथ था, सुबह भी, दोपहर भी, सांझ भी। उसका कष्ट हम समझ सकते हैं। सोचा न था कभी कि बुद्ध और ऐसे इनकंसिस्टेंट, इतने असंगत कि सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ। लेकिन कंसिस्टेंट सिर्फ बुद्धुओं के सिवाय और कोई भी नहीं हो सकते। सिर्फ बुद्धिहीन संगत हो सकते हैं। बुद्धिमान के उत्तर असंगत होंगे ही। क्योंकि हर उत्तर किसी को दिया गया है; कोई उत्तर सभी को नहीं दिया गया है।

आनंद ने बुद्ध से कहा कि मुझे परेशानी में डाल दिया। रात सोते समय मुझे नींद न आएगी, पहले मेरा उत्तर दो! सही क्या है? इन तीनों में कौन-सी बात ठीक है? या कि चौथी बात ठीक है?

बुद्ध ने कहा, तुझे क्या मतलब! जिनसे मैंने बात की थी, उनसे मतलब पूरा हो गया। तेरा न सवाल था, न तेरे लिए जवाब है। तूने पूछा नहीं था, तूने सुना क्यों? उसने कहा, और मजा करते हैं आप! मेरे पास कान हैं, मै बहरा नहीं हूं। मै पास ही मौजूद था। सुनाई मुझे पड़ गया। तो बुद्ध ने कहा, जो दूसरे के लिए कहा गया हो, उसे सुनना उचित नहीं है। तुझे क्या जरूरत थी? पर उसने कहा, जरूरत थी या नहीं, मुझे सुनाई पड़ गया और मै बेचैन हूं। तीन उत्तर एक दिन में! आप कहना क्या चाहते है?

बुद्ध ने कहा, मैने तीन उत्तर नहीं दिए। मैने तो उत्तर एक ही दिया है कि मैं तुम्हें कन्फर्म न करूंगा। मैं तुम्हारी हां में हां न भरूंगा। मैंने तो उत्तर एक ही दिया है दिनभर। सुबह जो आदमी आया था, वह चाहता था कि मै कह दूं कि हां, ईश्वर है, ताकि जिस ईश्वर को वह मानता है, उसको मेरा भी सहारा मिल जाए। ताकि वह आश्वस्त हो जाए कि चलो, मै ठीक हूं, बुद्ध भी यही कहते है। वह सिर्फ मेरा उपयोग करना चाहता था। वह मुझसे सीखने नहीं आया था। वह मुझसे जानने नही आया था। वह जानता ही था, वह सीखा ही हुआ था। वह सिर्फ मेरा और साथ चाहता था, वह सिर्फ एक सर्टिफिकेट और चाहता था, एक प्रमाणपत्र और चाहता था कि जो मै कहता हूं, वही बुद्ध भी कहते है! मै ठीक हूं, क्योंकि बुद्ध भी यही कहते है! वह सिर्फ अपने अहंकार के लिए एक युक्ति और खोज रहा था। वह बुद्ध का भी अपने अहंकार के लिए शोषण कर रहा था।

दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह भी आश्वस्त था कि उसे पक्का पता है। उसकी कोई जिज्ञासा न थी। जिन्हें पक्का पता है, उनकी कोई जिज्ञासा नहीं होती। जिन्हें पक्का ही पता है, उन्हें जिज्ञासा कैसे हो सकती है? और मजा यह है कि जिन्हें पक्का पता है, वे भी जिज्ञासा करते हैं। तब उनका पक्का पता बहुत कच्चे पते पर खड़ा है। पर वह कच्चा पता बहुत नीचे है। पक्का

ऊपर है, कच्चा नीचे है। इसलिए वह कच्चा उनको धक्के देता रहता है कि और पक्का कर लो, और पक्का कर लो। पक्का नहीं है, पता कुछ भी नहीं है, लेकिन भ्रम है कि पता है।

अर्जुन अभी ऐसे बोलता रहा, इस प्रश्न के पहले तक, जैसे उसे पता है कि क्या ठीक है, क्या गलत है! चाहता था इतना कि कृष्ण और हामी भर दें, गवाह बन जाएं, तो कल वह जगत को कह सके कि मैं ही नहीं भागा था, कृष्ण ने भी कहा था। मैंने ही युद्ध नहीं छोड़ा था, कृष्ण से पूछो! रिस्पांसिबिलिटी बांटना चाहता था, दायित्व बांटना चाहता था।

ध्यान रहे, जो दायित्व बांटना चाहता है, उसके भीतर कंपन है। पक्का उसको भी नहीं है, इसीलिए तो दूसरे का सहारा चाहता है। लेकिन यह बताना भी नहीं चाहता कि मुझे पता नहीं है। यह अहंकार भी नहीं छोड़ना चाहता कि मुझे पता नहीं है।

अर्जुन पूरे समय ऐसे बोल रहा है कि जैसे उसे भलीभांति पता है। धर्म क्या है, अधर्म क्या है! श्रेयस क्या है, अश्रेयस क्या है! जगत का किससे लाभ होगा, किससे नहीं होगा! मरेगा कोई, नहीं मरेगा! सब उसे पता है। पता बिलकुल नहीं है; लेकिन अहंकार कहता है, पता है। इसी अहंकार में वह एक टेक कृष्ण की भी लगवा लेना चाहता था। तुम भी बन जाओ उस लंगड़े की बैसाखी, यही वह चाहता था।

कृष्ण जैसे लोग किसी की बैसाखी नहीं बनते। क्योंकि किसी लंगड़े की बैसाखी बनना, उसको लंगड़ा बनाए रखने के लिए व्यवस्था है। कृष्ण जैसे लोग तो सब बैसाखियां छीन लेते हैं। वे लंगड़े को पैर देना चाहते हैं, बैसाखी नहीं देना चाहते। इसलिए कृष्ण ने अभी इस बीच उसकी सब बैसाखियां छीन लीं, जो उसके पास थीं, वे भी।

अब वह पहली दफा, पहली बार कृष्ण से जिज्ञासा कर रहा है, जिसमें अपने लिए समर्थन नहीं मांग रहा है। अब वह उन्हीं से पूछ रहा है कि समाधिस्थ कौन है कृष्ण? किसे हम कहते हैं कि उसकी प्रज्ञा ठहर गई? और जब किसी की

प्रज्ञा ठहर जाती है, तो उसका आचरण क्या है? और जब किसी के अंतस में ज्योति ठहर जाती है, तो उसके बाहर के आचरण पर क्या परिणाम होते हैं? मुझे उस संबंध में बताएं। अब वह पहली बार हंबल है, पहली बार विनीत है।

और जहां विनय है, वहीं जिज्ञासा है। और जहां विनय है, वहां ज्ञान का द्वार खुलता है। जहां अपने अज्ञान का बोध है, वहीं से मनुष्य ज्ञान की तरफ यात्रा शुरू करता है। इस वचन में कृष्ण ज्ञानी और अर्जुन अज्ञानी, ऐसी अर्जुन की प्रतीति पहली बार स्पष्ट है। इसके पहले अर्जुन भी ज्ञानी है। कृष्ण भी होंगे, नंबर दो के। नंबर एक वह खुद था अब तक। बड़ा कठिन है, दूसरे आदमी को नंबर एक रखना बड़ा कठिन है।

मैने सुना है, गांधी गोलमेज-कांफ्रेंस के लिए गए लंदन। तो उनका एक भक्त बर्नार्ड शा को मिलने गया। और बर्नार्ड शा को कहा उस भक्त ने कि गांधी जी को आप महात्मा मानते है या नहीं?

भक्तों को बड़ी चिंता होती है कि उनके महात्मा को कोई दूसरा महात्मा मानता है कि नहीं! खुद ही संदेह होता है भीतर, इसलिए दूसरे से भी पक्की गारंटी करवाना चाहते है। अब बर्नार्ड शा से पूछने जाने की क्या जरूरत है भक्त को? इसको खुद ही शक रहा होगा। सोचा, चलो, बर्नार्ड शा से पूछ लें। और सोचा होगा यह भी कि शिष्टाचारवश भी कम से कम बर्नार्ड शा कुछ ऐसा तो कह नहीं सकता कि नहीं हैं।

लेकिन बर्नार्ड शा जैसे लोग शिष्टाचार नहीं पालते, सत्याचार पालते है। और सत्याचार बड़ी और बात है। और शिष्टाचार तो सब दिखावा है। बर्नार्ड शा ने कहा, महात्मा है तुम्हारे गांधी, बिलकुल है, लेकिन नंबर दो के है। भक्त ने कहा, नंबर दो के? नंबर एक का महात्मा कौन है? बर्नार्ड शा ने कहा, मैं! बर्नार्ड शा ने कहा, मै झूठ न बोल सकूंगा। मैं अपने से ऊपर किसी को रख ही नहीं सकता हूं। ऐसी मेरी स्पष्ट प्रतीति है।

भक्त तो बहुत घबड़ा गया कि कैसा अहंकारी आदमी है! लेकिन बर्नार्ड शा बड़ा ईमानदार आदमी है। नंबर एक कोई भी अपने को रखता है। वह जो

कहता है, चरणों की धूल हूं, वह भी नंबर एक ही रखता है अपने को। यह चरणों की धूल वगैरह सब शिष्टाचार है।

बर्नार्ड शा ने कहा, सचाई यह है कि ज्यादा से ज्यादा नंबर दो रख सकता हूं तुम्हारे महात्मा को। नंबर एक तो तय ही है। उसकी कोई बात ही मत करो। उसमें कोई शक-शुबहा नहीं है मुझे। मैं नंबर एक हूं।

व्यंग्य कर रहा था गहरा पूरी मनुष्य जाति पर। और कभी-कभी ऐसा होता है कि बहुत बुद्धिमान जो नहीं कह पाते, वह व्यंग्य करने वाले कह जाते हैं।

अरबी में एक कहावत है कि परमात्मा जब भी किसी आदमी को बनाता है, तो दुनिया में धक्का देने के पहले उसके कान में एक मजाक कर देता है। उससे कह देता है, तुझसे अच्छा आदमी कभी भी नहीं बनाया। बस उस मजाक में सभी आदमी जीते हैं। जिंदगीभर कान में वह गूंजती रहती है परमात्मा की बात कि मुझसे अच्छा कोई भी नहीं! मगर वह दिल में ही रखनी पड़ती है, क्योंकि बाकी को भी यही कह दिया है उसने। उसको अगर जोर से कहिए, तो झगड़े के सिवाय कुछ हो नहीं सकता। इसलिए मन में अपने-अपने हर आदमी समझता है। दूसरे से शिष्टाचार की बातें करता है, मन में सत्य को जानता है, कि सत्य मुझे पता है।

अभी जो भी प्रश्न पूछे जा रहे थे कृष्ण से, कृष्ण भी समझते हैं कि उनमें अर्जुन अभी तक नंबर एक है। इस पूरे बीच उसके नंबर एक को गिराने की उन्होंने सब तरफ से कोशिश की है। और उसको चाहा है कि त्रह समझे कि स्थिति क्या है! व्यर्थ ही अपने को नंबर एक न माने। क्योंकि नंबर एक को केवल वही उपलब्ध होता है, जिसको अपने नंबर एक होने का कोई पता नहीं रह जाता। वह हो जाता है। जिसको पता रहता है, वह कभी नहीं हो पाता। पहली दफे अर्जुन विनम्र हुआ है। अब उसकी हंबल इंक्वायरी शुरू होती है। अब वह पूछता है कि बताओ कृष्ण! और इस पूछने में बड़ी विनम्रता है।

प्रश्न : जैसा कि आपने बताया, स्थितप्रज्ञता एक आंतरिक घटना है। और स्थितप्रज्ञ पुरुष जो जीवन जीता है, वह कोई पैटर्न में तो जीता नहीं है, कोई निश्चित पैटर्न बनाकर नहीं जीता है। जैसे कि बुद्ध के तीनों उत्तर अलग रहे। तो बाहर से भी हम कैसे निश्चित कर पाएं कि वह स्थितप्रज्ञ है ?

ठीक पूछते है। जिस व्यक्ति के भीतर जीवन में सत्य की किरणें फैल जाती है, सत्य का सूर्य जगता है, और जिसकी आंतरिक चेतना जागृति को, पूर्ण जागृति को उपलब्ध हो जाती है, उसका जीवन स्पांटेनियस हो जाता है, सहज हो जाता है, सहज-स्फूर्त हो जाता है। उसके जीवन में किसी पैटर्न को, किसी ढांचे को खोजना मुश्किल है। उसके जीवन में कोई बंधी-बंधाई रेखाएं नहीं होतीं। उस व्यक्ति का जीवन रेल की पटरियो पर दौड़ता हुआ जीवन नहीं होता; गंगा की तरह भागता हुआ, स्वतंत्रता से भरा जीवन होता है। वहां कोई रेल की पटरियां नहीं होतीं बंधी हुई, कि जिन पर ही चलता है वैसा व्यक्ति।

लेकिन फिर भी कुछ बातें कही जा सकती हैं। क्योंकि उसके नो-पैटर्न में भी एक बहुत गहरा पैटर्न होता है। उसके न-ढांचे में भी, उसके ढांचे के अभाव में भी, एक गहरी आंतरिक व्यवस्था होती है, एक इनर डिसिप्लिन होती है। ऊपर तो कोई ढांचा नही होता।

अब जैसे इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसका जीवन सहज-स्फूर्त होता है, स्पांटेनियस होता है। यह भी सूचना हो गई। यह भी सूचना हो गई। बुद्ध सुबह कुछ कहते है, दोपहर कुछ कहते हैं, सांझ कुछ कहते हैं। पैटर्न नहीं है, फिर भी पैटर्न है। ढांचा नहीं है। सुबह जो कहा था, वही दोपहर नहीं दोहराया।

बुद्ध जैसे व्यक्ति मरकर नहीं जीते हैं, जीकर ही जीते है। सुबह जो कहा था, उसको सिर्फ वही दोहराएगा, जो दोपहर तक मरा हुआ है। जो दोपहर तक जीया है, वह फिर से उत्तर देगा, फिर रिस्पांड करेगा। उसका उत्तर सदा नया होगा। नए का मतलब यह है कि वह पुराने उत्तर को दोहराएगा नहीं। आप पूछेंगे, फिर उत्तर उसमें प्रतिध्वनित होगा। वह जो भी हो!

लेकिन इन तीन अलग-अलग घटनाओं में, इन तीन असंगतियों में, इस इनकंसिस्टेंसी में भी एक भीतरी कंसिस्टेंसी है। सुबह भी बुद्ध सहज उत्तर देते हैं, दोपहर भी, सांझ भी। सुबह भी देख लेते हैं कि वह आदमी सिर्फ प्रमाण चाह रहा है, दोपहर भी देख लेते हैं कि प्रमाण चाह रहा है, सांझ भी देख लेते हैं कि प्रमाण चाह रहा है। सुबह भी उसे डगमगा देते, दोपहर भी डगमगा देते, सांझ भी डगमगा देते।

बुद्ध के ऊपर कोई मृत ढांचा नहीं है, लेकिन एक जीवंत धारा है। पर उस जीवंत-धारा के संबंध में कुछ इशारे किए जा सकते हैं। जैसे एक इशारा यही किया जा सकता है कि स्थितप्रज्ञ का जीवन सहज-स्फूर्त, तत्क्षण-स्फूर्त, स्पांटेनियस है। इसलिए दो स्थितप्रज्ञ के जीवनों को ऊपर से बिलकुल अलग-अलग होते हुए भी, भीतर की एकता को जांचा जा सकता है, पहचाना जा सकता है।

जैसा मैंने पीछे कहा, तो कई मित्रों ने मुझे पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है! मैंने कहा कि महावीर और बुद्ध एक बार एक ही गांव में एक ही धर्मशाला में ठहरे। अब एक ही धर्मशाला में दो स्थितप्रज्ञ-ऐसा कम होता है। एक ही बार पृथ्वी पर दो स्थितप्रज्ञ मुश्किल से होते हैं। एक ही धर्मशाला में, एक ही गांव में-बहुत रेयर फिनामिनन, बड़ी अदभुत घटना है। तो मुझसे मित्रों ने पूछा कि क्या इतने अहंकारी रहे होंगे कि मिले नहीं?

हमको ऐसा ही सूझता है एकदम से। क्योंकि हम जब नहीं मिलते किसी से, तो सिर्फ अहंकार के कारण नहीं मिलते। और हमारे पास कोई कारण नहीं होता। क्यों मिलें हम? लेकिन हमको यह पता ही नहीं होता कि अहंकार न बचा हो, तो मिलना कैसे हो सकता है। क्योंकि मिलने वाले भी अहंकार है, न मिलने वाले में भी अहंकार है। हमें खयाल में नहीं आती वह बात।

मिले कौन? होना तो चाहिए न कोई-मिलने के लिए भी, न मिलने के लिए भी। बुद्ध हैं कहां! महावीर हैं कहां! किससे मिलना है? कोई बचा है, जिससे मिलना है? बुद्ध अगर बचे होते, तो चले जाते महावीर से मिलने, या इनकार करते मिलने से।

यह बड़े मजे की बात है कि न मिले, न इनकार किया मिलने से। वह हुआ ही नहीं, बस, इट डिडन्ट हैपेन-बस, यह हुआ ही नहीं। इसका कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि कौन मिले? किससे मिले? मिलने के लिए भी अहंकार चाहिए। और फिर किसलिए मिले? कोई कारण चाहिए।

हां, अगर अहंकार होता, तो शायद एक ही धर्मशाला में ठहरने से भी इनकार कर देते। कहते कि वहां हम नहीं ठहरते। ठहर गए। अगर कोई पकड़कर ले जाता, तो चले जाते। रुकते भी नहीं, रोकते भी नहीं कि नहीं जाते। कोई पकड़कर नहीं ले गया। किसी ने दोनों को खींचा नहीं।

असल में दोनों के आस-पास अहंकारियों का इतना बड़ा जाल रहा होगा कि उसने दीवार का काम किया होगा। दोनों के आस-पास अहंकारियों का इतना जाल रहा होगा कि उसने सख्त प्राचीर का काम किया होगा। अगर कोशिश भी चली होगी, तो भक्तों ने न चलने दी होगी-मिलने की। ऐसा कैसे हो सकता है! अगर बुद्ध के भक्तों ने महावीर के भक्तों से कहा होगा कि मिलाने महावीर को ले आओ, तो उन्होंने कहा होगा, हम ले आएं? तुम ले आओ अपने बुद्ध को, मिलाना हो तो। उन्होंने कहा होगा, यह कैसे हो सकता है कि बुद्ध को हम लेकर आएं! बुद्ध नहीं आ सकते। मगर यह बातचीत भक्तों में चली होगी। यह उनमें चली होगी, जो चारों तरफ घेरकर खड़े है। वे सदा खड़े हैं।

इस दुनिया में बुद्ध, महावीर, कृष्ण और मोहम्मद और ईसा के बीच कोई दीवार नहीं है; दीवार है, भक्तों के कारण; वे जो घेरकर खड़े है। भयंकर दीवार है। हां, बुद्ध अगर तोड़ना चाहते, तो दीवार को तोड़ सकते थे। लेकिन तोड़ने का भी कोई कारण नहीं है। महावीर अगर चाहते कि मिलना है, तो मिल सकते थे। लेकिन महावीर और बुद्ध चाह से नहीं जीते; एकदम डिजायरलेस, अचाह से जीते हैं। मिलना हो जाता, तो हो जाता। नहीं हुआ, तो नहीं हुआ। राह पर चलते मिल जाते, तो मिल जाते। नहीं मिले, तो नहीं मिले। मगर दोनों बिलकुल एक जैसे हैं। दोनों बिलकुल एक जैसे हैं।

एक और मित्र ने इस संबंध में मुझे चिट्ठी लिखकर भेजी है कि आप

कहते हैं कि महावीर और बुद्ध जो कहते हैं, वह बिलकुल एक है। तो क्या बुद्ध और महावीर को दिखाई नहीं पड़ा यह कि एक है?

बिलकुल दिखाई पड़ता था। बिलकुल दिखाई पड़ता था। तो उन्होंने पूछा है कि अगर दिखाई पड़ता था, तो उन्होंने कह क्यों नहीं दिया कि एक है!

उन्होंने नहीं कहा, आप पर कृपा करके। क्योंकि अगर बुद्ध और महावीर कह दें कि बिलकुल एक है, तो आप सिर्फ कनफ्यूज्ड होंगे और कुछ भी नहीं हो सकता; आप सिर्फ विभ्रमित होंगे, और कुछ भी नहीं हो सकता।

इसलिए महावीर कहे चले जाते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वही ठीक है। जो बुद्ध...बेकार है। यह जो मैं कह रहा हूं, यही ठीक है। आप इतने कमजोर चित्त है कि अगर महावीर इतने अतिशय से न बोलें, तो आपके चित्त पर कोई परिणाम ही होने वाला नहीं है। क्योंकि आप इतने कमजोर हैं कि अगर महावीर को आप देखें कि वह कहें, यह भी ठीक, वह भी ठीक; यह भी ठीक, वह भी ठीक, सभी ठीक, तो आप भाग खड़े होंगे। आप तो खुद ही कमजोर हैं। आप तो चले ही जाएंगे कि जब सभी ठीक है, तो फिर ठीक है, हम भी ठीक हैं। आप उससे जो निष्कर्ष निकालेंगे, वह यह कि फिर हम भी ठीक! फिर हम जाते हैं।

अगर महावीर को ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, तो महावीर कहेंगे, सभी ठीक। अगर बुद्ध को ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, बुद्ध कहेंगे, सभी ठीक। अगर ज्ञानियों के बीच में बोलना पड़े, तो बुद्ध बोलेंगे ही नहीं, महावीर बोलेंगे ही नहीं। इतना भी नहीं कहेंगे कि सभी ठीक। लेकिन बोलना पड़ता है अज्ञानियों के बीच में।

ये बुद्ध और महावीर की पीड़ा आपको पता नहीं है। बोलना पड़ता है उनके बीच में, जिन्हें कुछ भी पता नहीं है। उनके लिए इस तरह के एब्सोल्यूट स्टेटमेंट, इस तरह के निरपेक्ष वचन कि सभी ठीक, सिर्फ व्यर्थ होंगे, अर्थहीन होंगे। उनके लिए कहना पड़ता है, यही ठीक। और इतने जोर से कहना पड़ता है कि महावीर के व्यक्तित्व का वजन और गरिमा और महिमा, उस यही ठीक के बीच जुड़ जाए, तो शायद आप दो कदम उठाएं।

हां, महावीर भलीभांति जानते हैं कि जिस दिन आप पहुंचेंगे, जान लेंगे, सभी ठीक। लेकिन वह उस दिन के लिए छोड़ दिया जाता है। उसके लिए कोई अभी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

पहाड़ पर आप चल रहे हैं। मैं अपने रास्ते को कहता हूं, यही ठीक। आप कहते है, उस रास्ते के बाबत क्या खयाल है, वह जो वहां से जा रहा है? मैं कहता हूं, बिलकुल गलत! जब मै कहता हूं, बिलकुल गलत, तो मेरा मतलब यह नहीं होता कि वह बिलकुल गलत। मै भलीभांति जानता हूं, उससे भी लोग पहुंचे है। लेकिन हजार रास्ते जा रहे है पहाड़ पर। और आप चल सकते हैं सिर्फ एक पर, हजार पर नहीं। और अगर आपको हजार ही ठीक दिखाई पड़ जाएं, तो संभावना यह नहीं है कि आप हजार पर चलें, संभावना यही है कि आप एक पर भी न चले। दो कदम एक पर चलें, फिर दो कदम दूसरे पर चलें, फिर दो कदम तीसरे पर चलें। जैसा आपका चित्त है डांवाडोल, वह रास्ते बदलता रहे और आप पहाड़ के नीचे ही भटकते रहे।

हजार रास्ते भी पहुंच जाते है पहाड़ पर, लेकिन हजार रास्तों से चलकर कोई भी नहीं पहुंचता। अनंत रास्ते पहुंचते है परमात्मा तक, लेकिन अनंत रास्तों से कोई भी नहीं पहुंचता। पहुंचने वाले सदा एक ही रास्ते से पहुंचते है।

तो महावीर जिस रास्ते पर खड़े है, उचित है कि वे कहें, इसी रास्ते से पहुंच जाओगे, आ जाओ। और जरूरी है कि आपको इस रास्ते पर चलने के लिए भरोसा और निष्ठा आ सके, वे कहें कि बाकी कोई रास्ता नहीं पहुंचाता है।

महावीर को आपकी वजह से भी असत्य बोलने पड़ते है। और बुद्ध को भी आपकी वजह से असत्य बोलने पड़ते हैं। मनुष्य के ऊपर जो अनुकंपा है ज्ञानियों की, उसकी वजह से उन्हें ढेर असत्य बोलने पड़ते हैं। लेकिन इस भरोसे में वे असत्य बोले जाते है कि आप एक से भी चढ़कर जब शिखर पर पहुंच जाएंगे, तब आप खुद ही देख लेंगे कि सभी रास्ते यहीं ले आए है।

अब जैसे पूछा है कि क्या ढांचा होगा? ढांचा कोई नहीं होगा। लेकिन जैसे यह बात: कृष्ण भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो, बुद्ध भी कहेंगे कि इस रास्ते से

चलो, महावीर भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो, शंकर भी कहेंगे कि इस रास्ते से चलो। और अगर झंझट बनी और शंकर से किसी ने पूछा, बुद्ध के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो वे कहेंगे, बिलकुल गलत। और बुद्ध से अगर किसी ने पूछा कि महावीर के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो बुद्ध कहेंगे, बिलकुल गलत। और महावीर से किसी ने पूछा कि बुद्ध के रास्ते के बाबत क्या खयाल है? तो महावीर कहेंगे, भटकना हो तो बिलकुल ठीक। इस मामले में तो बिलकुल एक ही बात होगी।

यह जो...ऊपर से ढांचे नहीं दिखाई पड़ेंगे, लेकिन अगर बहुत गहरे में खोज-बीन की, तो बहुत जीवंत पैटर्न, लिविंग पैटर्न होंगे। पैटर्न भी डेड और लिविंग हो सकते हैं।

एक चित्रकार एक चित्र बनाता है, वह डेड होता है। लेकिन एक चित्र प्रकृति बनाती है, वह लिविंग होता है। एक चित्रकार भी एक वृक्ष बनाता है, लेकिन वह मरा होता है। एक वृक्ष प्रकृति भी बनाती है, लेकिन वह जीवंत होता है। वह प्रतिपल बदल रहा है। कुछ पत्ते गिर रहे, कुछ आ रहे, कुछ जा रहे, कुछ फूट रहे, हवाएं हिला रही है।

एक सूर्य सुबह उगता है, और एक वानगाग भी सूर्योदय का चित्र बनाता है। लेकिन वानगाग के सूर्योदय का चित्र ठहरा हुआ है, स्टैटिक, स्टैगनेंट है। सुबह का सूरज कभी नहीं ठहरता है; उगता ही चला जाता है, कहीं नहीं ठहरता। इतना उगता चला जाता है कि डूब जाता है, एक क्षण नहीं ठहरता है।

जिंदगी में जो पैटर्न हैं, वे सब जीवित है। वे ऐसे ही हैं जैसे किसी वृक्ष के नीचे खड़े हो जाएं। पत्तों से छनकर धूप की किरणें आती हैं। वृक्ष में हवाएं दौड़ती हैं, नीचे छाया और धूप का एक जाल बन जाता है। वह प्रतिपल कंपता रहता है, बदलता रहता है-प्रतिपल।

स्थितप्रज्ञ की प्रज्ञा तो स्थिर होती है, लेकिन उसके जीवन का पैटर्न बिलकुल जीवंत होता है, वह प्रतिपल बदलता रहता है।

कृष्ण से ज्यादा बदलता हुआ व्यक्ति खोजना मुश्किल है। नहीं तो हम

सोच ही नहीं सकते कि एक ही आदमी बांसुरी भी बजाए और एक ही आदमी सुदर्शन चक्र लेकर भी खड़ा हो जाए। और एक ही आदमी गोपियों के साथ नाचे भी, और इतना कोमल, और वही आदमी युद्ध के लिए इतना सख्त हो जाए। और वही आदमी नदी में स्नान करती स्त्रियों के कपड़े लेकर वृक्ष पर चढ़ जाए, और वही आदमी नग्न होती द्रौपदी के लिए वस्त्र बढ़ाता रहे, बढ़ा दे। यह एक ही आदमी इतने बदलता पैटर्न!

जिन्होंने कृष्ण को गोपियों के वस्त्र उठाकर वृक्ष पर बैठते देखा होगा, क्या वे सोच सकते थे कभी कि किसी नग्न होती स्त्री के यह वस्त्र बढ़ाएगा? यह आदमी! भूलकर ऐसा नहीं सोच सकते थे। कोई सोच सकता था कि यह आदमी, जो मोर के पंख बांधकर और स्त्रियों के बीच नाचता है, यह आदमी कभी युद्ध के लिए जगत की सबसे मुखर वाणी बन जाएगा? कोई सोच भी नही सकता था। मोर के पंखों से और युद्धो का कोई संबंध है, कोई संगति है?

लेकिन यह मृत आदमी नहीं है, मोर के पंख इसे बांधते नहीं। यह मृत आदमी नहीं है, बांसुरी की धुन इसे बांधती नहीं। यह मृत आदमी नहीं है, यह जीवित आदमी है।

और जीवित आदमी का मतलब ही है, रिस्पांसिव। जगत जो भी स्थिति ला देगा, उसमें उत्तर देगा और उत्तर रेडीमेड नहीं होंगे। स्थितप्रज्ञ के उत्तर कभी भी रेडीमेड नहीं हैं, तैयार नहीं है। उन पर सैमसन की सील नहीं होती, वे रेडीमेड कपड़े नहीं है। बने-बनाए नहीं है कि बस कोई भी पहन ले। वह प्रतिपल, प्रतिपल जीवन को दिए गए उत्तर से, प्रतिपल जीवन के प्रति हुई संवेदना से, सब कुछ निकलता है। इसलिए एक अनुशासन नहीं है ऊपर, लेकिन भीतर एक गहरा अनुशासन है।

और एक बात और। जिनके जीवन में ऊपर अनुशासन होता है, उनके जीवन में ऊपर अनुशासन इसलिए होता है कि उन्हें इनर डिसिप्लिन का भरोसा नहीं है। उनके भीतर कोई डिसिप्लिन नहीं है। जिन्हें भीतर के अनुशासन का कोई भरोसा नहीं है, वे ऊपर से अनुशासन बांधकर चलते हैं। लेकिन जिनके भीतर के

अनुशासन का जिन्हें भरोसा है, वे ऊपर से बिलकुल स्वतंत्र होकर चलते हैं। कोई डर ही नहीं है। कोई डर ही नहीं है। वे तैयार होकर नहीं जीते; वे जीते हैं, क्योंकि वे तैयार हैं। जो भी स्थिति आएगी, उसमें उत्तर उनसे आएगा। उस उत्तर के लिए पहले से तैयार होने की कोई भी जरूरत नहीं है।

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। 55।।

उसके उपरांत श्री कृष्ण भगवान बोले : हे अर्जुन, जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट हुआ, स्थिर प्रज्ञा वाला कहा जाता है।

स्वरूप से संतुष्ट-टु बी कंटेंट विद वनसेल्फ-इसे पहला स्थितप्रज्ञ का लक्षण कृष्ण कहते हैं। हम कभी भी स्वयं से संतुष्ट नहीं है। अगर हमारा कोई भी लक्षण कहा जा सके, तो वह है, स्वयं से असंतुष्ट। हमारे जीवन की पूरी धारा ही स्वयं से असंतुष्ट होने की धारा है। अकेले में हमें कोई छोड़ दे, तो अच्छा नहीं लगता, क्योंकि अकेले में हम अपने ही साथ रह जाते है। हमें कोई दूसरा चाहिए, कंपनी चाहिए, साथ चाहिए। तभी हमें अच्छा लगता है, जब कोई और हो।

और बड़े मजे की बात है कि दो आदमियों को साथ होकर अच्छा लगता है और इन दोनों आदमियों को ही अकेले में बुरा लगता है। जो अपने साथ ही आनंदित नहीं है, वह दूसरे को आनंद दे पाएगा? और जो अपने को भी इस योग्य नहीं मानता कि खुद को आनंद दे पाए, वह दूसरे को आनंद कैसे दे पा सकता है? करीब-करीब हमारी हालत ऐसी है कि जैसे भिखारी रास्ते पर मिल जाएं और एक-दूसरे के सामने भिक्षा-पात्र फैला दें। दोनों भिखारी!

मैंने सुना है, एक गांव में दो ज्योतिषी रहते थे। सुबह दोनों निकलते थे, तो एक-दूसरे को अपना हाथ दिखा देते थे कि आज कैसा धंधा चलेगा!

हम सब स्वयं से बिलकुल राजी नहीं हैं। एक क्षण अकेलापन भारी हो जाता है। जितना हम अपने से ऊब जाते हैं, उतना हम किसी से नहीं ऊबते। रेडियो खोलो, अखबार उठाओ, मित्र के पास जाओ, होटल में जाओ, सिनेमा में जाओ, नाच देखो, मंदिर में जाओ-कहीं न कहीं जाओ, अपने साथ मत रहो। अपने साथ बड़ा... ।

कृष्ण पहला सूत्र देते है, स्वयं से संतुष्ट, स्वयं से तृप्त। स्वभावतः, जो अपने से तृप्त नहीं है, उसकी चेतना सदा दूसरे की तरफ बहती रहेगी, उसकी चेतना सदा दूसरे की तरफ कंपती रहेगी। असल में जहां हमारा संतोष है, वहीं हमारी चेतना की ज्योति ढल जाती है। मिलता है वहां या नहीं, यह दूसरी बात है। लेकिन जहां हमें संतोष दिखाई पड़ता है, हमारे प्राणो की धारा उसी तरफ बहने लगती है।

तो हम चौबीस घंटे बहते रहते है यहां-वहां। एक जगह को छोड़कर-अपने मे होने को छोड़कर-हमारा होना सब तरफ डांवाडोल होता है। फिर जिसके पास भी बैठ जाते है, थोड़ी देर मे वह भी उबा देता है। मित्र से भी ऊब जाते है, प्रेमी से भी ऊब जाते है, क्लब से भी ऊब जाते है, खेल से भी ऊब जाते है, ताश से भी ऊब जाते है। तो फिर विषय बदलने पड़ते है। फिर दौड़ शुरू होती है-जल्दी बदलो-नए सेसेशन की, नई संवेदना की। सब पुराना पड़ता जाता है-नया लाओ, नया लाओ, नया लाओ। उसमें हम दौड़ते चले जाते है।

लेकिन कभी यह नहीं देखते कि जब मै अपने से ही असंतुष्ट हूं, तो मैं कहां संतुष्ट हो सकूंगा? जब मै भीतर ही बीमार हूं, तो मै किसी के भी साथ होकर कैसे स्वस्थ हो सकूंगा? जब दुख मेरे भीतर ही है, तब किसी और का सुख मुझे कैसे भर पाएगा?

हां, थोड़ी देर के लिए धोखा हो सकता है। लोग मरघट ले जाते है किसी को, कंधे पर रखकर उसकी अर्थी को, तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। एक कंधा दुखने लगता है, तो दूसरे कंधे पर अर्थी कर लेते है। लेकिन अर्थी का वजन कम होता है? नहीं, दुखा हुआ कंधा थोड़ी राहत पा लेता है। नए कंधे पर थोड़ी देर भ्रम होता है कि ठीक है। फिर दूसरा कंधा दुखने लगता है। सिर्फ वजन के ट्रांसफर से

कुछ अंतर पड़ता है ? नहीं कोई अंतर पड़ता। अपने पर वजन है, तो कंधे बदलने से कुछ न होगा। और भीतर दुख है, तो साथी बदलने से कुछ न होगा। और भीतर दुख है, तो जगह बदलने से कुछ न होगा।

दूसरे में संतोष खोजना ही प्रज्ञा की अस्थिरता है, स्वयं में संतोष पा लेना ही प्रज्ञा की स्थिरता है। लेकिन स्वयं में संतोष वही पा सकता है, जो-दूसरे में संतोष नहीं मिलता है-इस सत्य को अनुभव करता है। जब तक यह भ्रम बना रहता है कि मिल जाएगा-इसमें नहीं मिलता तो दूसरे में मिल जाएगा, दूसरे में नहीं मिलता तो तीसरे में मिल जाएगा-जब तक यह भ्रम बना रहेगा, तब तक जन्मों-जन्मों तक प्रज्ञा अस्थिर रहेगी। जब तक यह इलूजन, जब तक यह भ्रम पीछा करेगा कि कोई बात नहीं, इस स्त्री में सुख नहीं मिला, दूसरी में मिल सकता है; इस पुरुष में सुख नहीं मिला, दूसरे में मिल सकता है; इस मकान में सुख नहीं मिला, दूसरे में मिल सकता है; इस कार में सुख नहीं मिला, दूसरी कार में मिल सकता है-जब तक यह भ्रम बना रहेगा कि बदलाहट में मिल सकता है, तब तक प्रज्ञा डोलती ही रहेगी, कंपित होती ही रहेगी। यह विषयों की आकांक्षा, यह भ्रामक दूर के ढोल का सुहावनापन, यह चित्त को कंपाता ही रहेगा।

लेकिन आदमी बहुत अदभुत है। अगर उसका सबसे अदभुत कोई रहस्य है, तो वह यही है कि वह अपने को धोखा देने में अनंत रूप से समर्थ है। इनफिनिट उसकी सामर्थ्य है धोखा देने की। एक चीज से धोखा टूट जाए, टूट ही नहीं पाता कि उसके पहले वह अपने धोखे का दूसरा इंतजाम कर लेता है।

बर्नार्ड शा ने कहीं कहा है, कि कैसा मजेदार है मन! एक जगह भ्रम के तंबू उखड़ नहीं पाते कि मन तत्काल दूसरी जगह खूंटियां गाड़कर इंतजाम शुरू कर देता है। सच तो यह है कि मन इतना होशियार है कि इसके पहले कि एक जगह से तंबू उखड़ें, वह दूसरी जगह खूंटियां गाड़ चुका होता है।

और हम सब इसको समझ लेते हैं। अगर पत्नी देखती है कि पति थोड़ी कम उत्सुकता ले रहा है, तो वह किसी बहुत गहरे इंसटिंक्टिव आधार पर समझ जाती है कि खूंटियां किसी और स्त्री पर गड़नी शुरू हो गई होंगी। तत्काल! तत्काल कोई उसे

गहरे में बता जाता है, कहीं खूंटियां और गड़नी शुरू हो गई है। और सौ में निन्यानबे मौके पर बात सही होती है। सही इसलिए होती है कि सौ में निन्यानबे मौके पर आदमी स्थितप्रज्ञ नहीं हो जाता। और मन बिना खूंटियां गाड़े जी नहीं सकता।

हां, एक मौके पर गलत होती है। कभी किसी बुद्ध के मौके पर गलत हो जाती है। यशोधरा ने भी सोची होगी पहली बात तो यही कि कुछ गड़बड़ है। जरूर कोई दूसरी स्त्री बीच में आ गई, अन्यथा भाग कैसे सकते थे!

इसलिए बुद्ध जब बारह साल बाद घर लौटे, तो यशोधरा बहुत नाराज थी, बड़ी क्रुद्ध थी। क्योंकि वह यह सोच ही नही सकती कि मन ने कहीं खूंटियां ही न गाड़ी हो, खूंटियां ही उखाड़ दी हो सब तरफ से। और फिर भी बड़े मजे की बात है कि एक स्त्री को इसमें ही ज्यादा सुख मिलेगा कि कोई किसी दूसरी स्त्री पर खूंटियां गाड़ ले। इसमें ही ज्यादा पीड़ा होगी कि अब खूंटियां गाड़ी ही नहीं हैं। क्योंकि यह बिलकुल समझ के बाहर मामला हो जाता है।

कृष्ण से अर्जुन ने जो बात पूछी है, उसके लिए पहला उत्तर बहुत ही गहरा है, मौलिक है, आधारभूत है। जब तक चित्त सोचता है कि कहीं और सुख मिल सकता है, तब तक चित्त स्वयं से असंतुष्ट है। जब तक चित्त स्वयं से असंतुष्ट है, तब तक दूसरे की आकांक्षा, दूसरे की अभीप्सा उसकी चेतना को कंपित करती रहेगी, दूसरा उसे खीचता रहेगा। और उसके दीए की लौ दूसरे की तरफ दौड़ती रहेगी, तो थिर नहीं हो सकती। जैसे ही-दूसरे में सुख नहीं है-इसका बोध स्पष्ट हो जाता है, जैसे ही दूसरे पर खूंटियां गाड़ना मन बंद कर देता है, वैसे ही सहज चेतना अपने में थिर हो जाती है। स्थिरधी की घटना घट जाती है।

बायरन ने शादी की। मुश्किल से शादी की। कोई साठ स्त्रियों से उसके संबंध थे। हमे लगेगा, कैसा पुरुष था! लेकिन अगर हमें लगता है, तो हम धोखा दे रहे हैं। असल में ऐसा पुरुष खोजना कठिन है जो साठ स्त्रियों से भी तृप्त हो जाए। यह दूसरी बात है कि समाज का भय है, हिम्मत नहीं जुटती, व्यवस्था है, कानून है, और फिर उपद्रव हैं बहुत।

लेकिन बायरन को एक स्त्री ने मजबूर कर दिया शादी के लिए। उसने

कहा, पहले शादी, फिर कुछ और। पहले शादी, अन्यथा हाथ भी मत छूना। शादी की। चर्च में घंटियां बज रही हैं, मोमबत्तियां जली हैं, मित्र विदा हो रहे हैं, शादी करके बायरन उतर रहा है सीढ़ियों पर अपनी नव-वधू का हाथ हाथ में लिए हुए। और तभी सड़क से एक स्त्री जाती हुई दिखाई पड़ती है। और उसका हाथ छूट गया। और उसकी पत्नी ने चौंककर देखा, और बायरन वहां नहीं है। शरीर से ही है, मन उसका उस स्त्री के पीछे चला गया है।

उसकी पत्नी ने कहा, क्या कर रहे हैं आप? बायरन ने कहा, अरे, तुम हो? लेकिन जैसे ही तुम्हारा हाथ मेरे हाथ में आया, तुम मेरे लिए अचानक व्यर्थ हो गई हो। मेरा मन एक क्षण को उस स्त्री के पीछे चला गया। और मैं कामना करने लगा कि काश! वह स्त्री मिल जाए।

ईमानदार आदमी है। नहीं तो पहले ही दिन विवाहित स्त्री से इतनी हिम्मत बहुत मुश्किल है कहने की। साठ साल के बाद भी मुश्किल पड़ती है कहना। पहला दिन, पहला दिन भी नहीं, अभी सीढ़ियां ही उतर रहा है चर्च की। वह स्त्री तो चौंककर खड़ी हो गई। लेकिन बायरन ने कहा कि जो सच है वही मैंने तुमसे कहा है।

ऐसा ही है सच हम सब के बाबत। कभी आपने सोचा है कि जिस कार के लिए आप दीवाने थे और कई रात नहीं सोए थे, वह पोर्च में आकर खड़ी हो गई है। फिर! फिर कल दूसरी कोई कार सड़क पर चमकती हुई निकलती है और उसकी चमक आंखों में समा जाती है। फिर वही पीड़ा है। जिस मकान के लिए आप दीवाने थे कि पता नहीं उसके भीतर पहुंचकर कौन-से स्वर्ग में प्रवेश हो जाएगा। उसमें प्रवेश हो गया है। और प्रवेश होते ही मकान भूल गया और कोई स्वर्ग नहीं मिला। और फिर स्वर्ग कहीं और दिखाई पड़ने लगा। मृग-मरीचिका है। सदा सुख कहीं और है और चित्त दौड़ता रहता है।

कृष्ण कहते हैं, जब सुख यहीं है भीतर, अपने में, तभी प्रज्ञा की स्थिरता उपलब्ध होती है।

अभी इतना ही। फिर सांझ।

•••

सोलहवां प्रवचन

विषय-त्याग नहीं- रस-विसर्जन मार्ग है

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।। 56।।

तथा दुखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में दूर हो गई है स्पृहा जिसकी, तथा नष्ट हो गए हैं-राग, भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिर-बुद्धि कहा जाता है।

समाधिस्थ कौन है? स्थितधी कौन है? कौन है जिसकी प्रज्ञा थिर हुई? कौन है जो चंचल चित्त के पार हुआ? अर्जुन ने उसके लक्षण पूछे हैं। कृष्ण इस सूत्र में कह रहे हैं, दुख आने पर जो उद्विग्न नहीं होता...।

दुख आने पर कौन उद्विग्न नहीं होता है? दुख आने पर सिर्फ वही उद्विग्न नहीं होता, जिसने सुख की कोई स्पृहा न की हो, जिसने सुख चाहा न हो। जिसने सुख चाहा हो, वह दुख आने पर उद्विग्न होगा ही। जो चाहा हो और न मिले, तो

उद्विग्नता होगी ही। सुख की चाह जहां है, जहां दुखं की पीड़ा भी होगी ही। जिसे सुख के फूल चाहिए, उसे दुख के कांटों के लिए तैयार होना ही पड़ता है।

इसलिए पहली बात कहते हैं, दुख आने पर जो उद्विग्न नहीं होता। और दूसरी बात कहते हैं, सुख की जिसे स्पृहा नहीं है, सुख की जिसे आकांक्षा नहीं है।

ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख की आकांक्षा है, तो दुख की उद्विग्नता होगी। सुख की आकांक्षा नहीं है, तो दुख असमर्थ है फिर उद्विग्न करने में।

दुख को तो कोई भी नहीं चाहता है, दुख आता है। सुख को सभी चाहते हैं। इसलिए दुख को आने का एक ही रास्ता है, सुख की आड़ में; और तो कोई रास्ता भी नहीं है। दुख को तो कोई बुलाता नहीं, निमंत्रण नहीं देता। दुख को तो कोई कहता नहीं कि आओ। दुख का अतिथि द्वार पर आए, तो कोई भी द्वार बंद कर लेता है। दुख का तो कोई स्वागत नहीं करता। फिर भी दुख आता तो है। तो दुख कहां से आता है?

दुख, सुख की आड़ में आता है; वही है मार्ग। अगर बहुत ठीक से समझें, तो दुख सुख की ही छाया है। और भी गहरे में समझें, तो जो ऊपर से सुख दिखाई पड़ता है, वह भीतर से दुख सिद्ध होता है। कहें कि सुख केवल दिखावा है, दुख स्थिति है।

जैसे एक आदमी मछली मार रहा है नदी के किनारे बैठकर, तो कांटे में आटा लगा लेता है। आटे को लटका देता है पानी में। कोई मछली कांटे को पकड़ने को न आएगी। कोई मछली क्यों कांटे को पकड़ेगी? लेकिन आटे को तो कोई भी मछली पकड़ना चाहती है। मछली सदा आटा ही पकड़ती है, लेकिन आटे के पकड़े जाने में मछली कांटे में पकड़ी जाती है। आटा धोखा सिद्ध होता है, आवरण सिद्ध होता है; कांटा भीतर का सत्य सिद्ध होता है।

सुख आटे से ज्यादा नहीं है। हर सुख के आटे में दुख का कांटा है। और सुख भी तभी तक मालूम पड़ता है, जब तक आटा दूर है और मछली के मुंह में नहीं है-तभी तक! मुंह में आते ही तो कांटा मालूम पड़ना शुरू हो जाता है।

तो सुख सिर्फ दिखाई पड़ता है, मिलता सदा दुख है। और जिसने सुख चाहा हो, उसे दुख मिल जाए, वह उद्विग्न न हो! तो फिर उद्विग्न और कौन होगा?

जिसने सुख मांगा हो और दुख आ जाए, जिसने जीवन मांगा हो और मृत्यु आ जाए, जिसने सिंहासन मांगे हों और सूली आ जाए-वह उद्विग्न नहीं होगा? उद्विग्न होगा ही। अपेक्षा के प्रतिकूल उद्विग्नता निर्मित होती है।

और भी एक बात समझ लेने जैसी है कि असल मे जो सुख मांग रहा है, वह भी उद्विग्नता मांग रहा है। शायद इसका कभी खयाल न किया हो। खयाल तो हम जीवन में किसी चीज का नहीं करते। आंख बंद करके जीते है। अन्यथा कृष्ण को कहने की जरूरत न रह जाए। हमें ही दिखाई पड़ सकता है।

सुख भी एक उद्विग्नता है। सुख भी एक उत्तेजना है। हां, प्रीतिकर उत्तेजना है। है तो आंदोलन ही, मन थिर नहीं होता सुख में भी, कंपता है। इसलिए कभी अगर बड़ा सुख मिल जाए, तो दुख से भी बदतर सिद्ध हो सकता है। कभी आटा भी बहुत आ जाए मछली के मुंह मे, तो कांटे तक नहीं पहुंचती; आटा ही मार डालता है, कांटे तक पहुंचने की जरूरत नहीं रह जाती।

एक आदमी को लाटरी मिल जाती है और हृदय की गति एकदम से बंद हो जाती है। लाख रुपया! हृदय चले भी तो कैसे चले! इतने जोर से चल नहीं सकता, जितने जोर से लाख रुपये के सुख में चलना चाहिए। इतने जोर से नहीं चल सकता है, इसलिए बंद हो जाता है। बड़ी उत्तेजना की जरूरत थी। हृदय नही चाहिए था, लोहे का फेफड़ा चाहिए था, तो लाख रुपये की उत्तेजना में भी धड़कता रहता। लाख रुपये अचानक मिल जाएं, तो सुख भी भारी पड़ जाता है।

खयाल में ले लेना जरूरी है कि सुख भी उत्तेजना है; उसकी भी मात्राएं हैं। कुछ मात्राओं को हम सह पाते है। आमतौर से सुख की मात्रा किसी को मारती नहीं, क्योंकि मात्रा से ज्यादा सुख आमतौर से उतरता नही।

यह बहुत मजे की बात है कि मात्रा से ज्यादा दुख आदमी को नहीं मार पाता, लेकिन मात्रा से ज्यादा सुख मार डालता है। दुख को सहना बहुत आसान है, सुख को सहना बहुत मुश्किल है। सुख मिलता नहीं है, इसलिए हमें पता नहीं है। दुख को सहना बहुत आसान है, सुख को सहना बहुत मुश्किल है। क्यों? क्योंकि दुख के बाहर सुख की सदा आशा बनी रहती है। उस उत्तेजना के बाहर निकलने की आशा बनी रहती है। उसे सहा जा सकता है।

सुख के बाहर कोई आशा नहीं रह जाती; मिला कि आप ठप्प हुए, बंद हुए। मिलता नहीं है, यह बात दूसरी है। आप जो चाहते हैं, वह तत्काल मिल जाए, तो आपके हृदय की गति वहीं बंद हो जाएगी। क्योंकि सुख में ओपनिंग नहीं है, दुख में ओपनिंग है। दुख में द्वार है, आगे सुख की आशा है, जिससे जी सकते हैं। सुख अगर पूरा मिल जाए, तो आगे फिर कोई आशा नहीं है, जीने का उपाय नहीं रह जाता। सुख भी एक गहरी उत्तेजना है।

मैंने सुना है, एक आदमी को लाटरी मिल गई है। उसकी पत्नी बहुत चिंतित और परेशान है, घबड़ा गई है। उस आदमी के हाथ में कभी सौ रुपये नहीं आए, इकट्ठे पांच लाख रुपये! पास में चर्च है। वह पादरी के पास गई और उसने प्रार्थना की, पांच लाख की लाटरी मिल गई है, पति दफ्तर से लौटते होंगे। क्लर्क हैं, सौ रुपये से ज्यादा कभी देखे नहीं हैं हाथ में, पांच लाख! उन्हें किसी तरह इस सुख से बचाओ। कहीं कुछ हानि न हो जाए!

पादरी ने कहा, घबड़ाओ मत, एकदम से सुख पड़े तो खतरा हो सकता है, इंस्टालमेंट में पड़े तो खतरा नहीं हो सकता। हम आते हैं; हम खंड-खंड सुख देने का इंतजाम करते हैं।

पादरी बुद्धिमान था; आ गया, बैठ गया। पति घर लौटा। पादरी ने सोचा, पांच लाख इकट्ठा कहना ठीक नहीं, पचास हजार से शुरू करो। तो उसने पति को कहा कि सुना तुमने, पचास हजार लाटरी में मिले हैं! फिर आंखों की तरफ देखा कि इतना पचा जाए तो फिर और पचास हजार की बात करूं! लेकिन उस आदमी ने कहा, सच! अगर पचास हजार मुझे मिले हैं, यह सच है, तो पच्चीस हजार चर्च को दान देता हूं। पादरी का हार्ट-फेल हो गया। पच्चीस हजार! पांच पैसे कोई चर्च को देता नहीं था।

सुख का आघात अगर आकस्मिक हो, तीव्र हो, तो जीवनधारा तक टूट सकती है। तार टूट सकते हैं।

सुख भी उत्तेजना है-प्रीतिकर। अपने आप में तो सिर्फ उत्तेजना है। हमारे मनोभाव में प्रीतिकर है, क्योंकि हमने उसे चाहा है। इसलिए एक और बात ध्यान में

रख लेनी जरूरी है कि सब सुख कनवर्टिबल हैं, दुख बन सकते हैं। और सब दुख सुख बन सकते हैं। कुल सवाल इतना है कि चाह है। चाह का फर्क हो जाना चाहिए।

एक आदमी पहली दफा शराब पीता है, तो प्रीतिकर नहीं होता स्वाद। स्वाद तिक्त ही होता है, अप्रीतिकर ही होता है। इसलिए टेस्ट डेवलप करना होता है। शराब पीने वाले को स्वाद विकसित करना पड़ता है। फिर-फिर पीता है-मित्रों की शान में, लोगों की तारीफ में, कि मैं कोई कमजोर तो नहीं हूं-पीता है, अभ्यास हो जाता है। फिर वह तिक्त स्वाद भी प्रीतिकर लगने लगता है।

सिगरेट कोई पहली दफा पीता है, तो खांसी ही आती है, तकलीफ ही होती है। फिर सिगरेट के साथ जुड़ी है अकड़, सिगरेट के साथ जुड़ा है अहंकार, सिगरेट के साथ शान के प्रतीक जुड़े हैं। उस शान के लिए आदमी उस दुख को झेलता है और अभ्यासी हो जाता है। फिर वह सिगरेट का गंदा स्वाद-धुएं में कोई और अच्छा स्वाद हो भी नहीं सकता-प्रीतिकर लगने लगता है, सुख हो जाता है। दुख का भी अभ्यास सुख बना सकता है। और सुख के अभ्यास से भी दुख निकल आता है।

आए हैं आप मेरे पास, मैने गले आपको लगा लिया; बहुत प्रीतिकर लगा है क्षणभर को। लेकिन मिनिट होने लगा, अब आप घबड़ा रहे हैं। दो मिनिट होने लगे, अब आप छूटना चाहते हैं। तीन मिनिट हो गए, अब आप कहते हैं, छोड़िए भी। चार मिनिट हो गए, अब आप घबड़ाते हैं कि कहीं मैं पागल तो नहीं हूं! पांच मिनिट हो गए, अब आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं!

यह हुआ क्या? पहले क्षण में कह रहे थे, हृदय से मिलकर बड़ा आनंद मिला है। पांच मिनिट में आनंद खो गया! अगर मिला था, तो पांच मिनिट में हजार गुना हो जाना चाहिए था। जब एक सेकेंड में इतना मिला, तो दूसरे में और ज्यादा, तीसरे में और ज्यादा। नहीं, वह पहले सेकेंड में भी मिला नहीं था, सिर्फ सोचा गया था। दूसरे सेकेंड में समझ बढ़ी, तीसरे में समझ और बढ़ी-पाया कि कुछ भी नहीं है। जिन हाथों को हम हाथों में लेने को तरसते हैं, थोड़ी देर में सिवाय पसीने के उनसे कुछ भी नहीं निकलता है।

सब सुख की उत्तेजनाएं परिचित होने पर दुख हो जाती हैं; सब दुख की

उत्तेजनाएं परिचित होने पर सुख बन सकती हैं। सुख और दुख कनवर्टिबल हैं, एक-दूसरे में बदल सकते हैं। इसलिए बहुत गहरे में दोनों एक ही हैं, दो नहीं हैं। क्योंकि बदलाहट उन्हीं में हो सकती है, जो एक ही हों। सिर्फ हमारे मनोभाव में फर्क पड़ता है, चीज वही है, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता है।

इसलिए कृष्ण ने दो सूत्र कहे। पहला कि दुख में जो उद्विग्न न हो, दुख में जो अनुद्विग्नमना हो; दूसरा-सुख की जिसे स्पृहा न हो, जो सुख की आकांक्षा और मांग किए न बैठा हो। तीसरी बात-क्रोध, भय जिसमें न हों।

यहां एक बात बहुत ठीक से ध्यान में ले लें, क्योंकि उसके ध्यान में न होने से सारे मुल्क में बड़ी नासमझी है। कृष्ण कह रहे हैं कि जिसमें क्रोध और भय न हों, वह समाधिस्थ है। वे यह नहीं कह रहे हैं कि जो क्रोध और भय को छोड़ दे, वह समाधिस्थ हो जाता है-वे यह नहीं कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, जो समाधिस्थ है, उसमें क्रोध और भय नहीं पाए जाते हैं। इन दोनों बातों में गहरा फर्क है। क्रोध और भय जो छोड़ दे, वह समाधिस्थ हो जाता है-ऐसा वे नहीं कह रहे हैं। जो समाधिस्थ हो जाता है, उसका क्रोध और भय छूट जाता है-ऐसा वे कह रहे हैं।

आप कहेंगे, इसमें क्या फर्क पड़ता है? ये दोनों एक ही बात हैं।

ये दोनों एक बात नहीं हैं। ये बहुत फासले पर हैं, विपरीत बातें हैं। जिस आदमी ने सोचा कि क्रोध और भय छोड़ने से समाधि मिल जाती है, वह क्रोध और भय को छोड़ने में ही लगा रहेगा, समाधि को कभी नहीं पा सकता। और जिस आदमी ने सोचा कि क्रोध और भय को छोड़ने से समाधि मिल जाती है, वह क्रोध और भय से लड़ेगा। और क्रोध से लड़कर आदमी क्रोध के बाहर नहीं होता। भय से लड़कर आदमी भय के बाहर नहीं होता। भय से लड़कर आदमी और सूक्ष्म भयों में उतर जाता है। क्रोध से लड़कर आदमी और सूक्ष्म तलों पर क्रोधी हो जाता है।

मैंने एक कहानी सुनी है। मैंने सुना है कि एक आदमी की ख्याति हो गई कि उसने क्रोध पर विजय पा ली है। उसका एक मित्र उसके परीक्षण के लिए गया। सुबह थी, सर्दी थी अभी, लेकिन सूरज उग आया था। शायद साधु चार बजे रात से उठ आया होगा। आग जलाकर आग तापता था। फिर आग भी बुझ गई थी, फिर

राख ही रह गई थी। अब भी साधु बैठा था। मित्र आया, उसने पास आकर नमस्कार किया और कहा कि थोड़ी-बहुत आग बची या नही ? साधु ने कहा, नहीं; देखते नहीं, अंधे हो ? कोई आग नहीं है, राख ही राख है। वह आदमी हंसा। उसने कहा कि नहीं बाबा जी, थोड़ी-बहुत तो बची ही होगी; राख के नीचे दबी होगी। साधु ने कहा, आदमी कैसे हो ? मै कहता हूं, नहीं है आग। उस आदमी ने कहा, जरा कुरेदकर तो देखें, शायद कहीं कोई चिनगारी पड़ी ही हो ! साधु का हाथ अपने चिमटे पर चला गया। उसने कहा, तू आदमी है कि जानवर ? मैं कहता हूं, नही है कोई आग। उस आदमी ने कहा, बाबा जी, अब तो चिनगारी ही नही, लपट बन गई है।

वह जिस आग की बात कर रहा है, वह क्रोध है। वह जिस राख की बात कर रहा है, वह ऊपर का दमन है। एक छोटी-सी चर्चा, पता नही उस राख में आग थी या नहीं, लेकिन साधु मे काफी आग थी, वह निकल आई। जरा-सी चोट और वह निकल आई। उस आदमी ने कहा, मैने भी यही सुना था कि राख ही राख बची है, आग नही बची है। यही देखने आया था। लेकिन आग काफी बची है। राख ऊपर का ही धोखा है, भीतर आग है।

क्रोध से जो लड़ेगा, वह ज्यादा से ज्यादा क्रोध को भीतर दबाने मे समर्थ हो सकता है। भय से जो लड़ेगा, वह ज्यादा से ज्यादा निर्भय होने मे समर्थ हो सकता है, अभय होने में नही। निर्भय का इतना ही मतलब है कि भय को भीतर दबा दिया है। भय आता भी है तो कोई फिक्र नही; हम डटे ही रहते है। अभय का मतलब बहुत और है। अभय का मतलब है, भय का अभाव। निर्भय का अर्थ, भय के बावजूद भी डटे रहने की हिम्मत। अभय का मतलब, फियरलेसनेस। निर्भय का मतलब, ब्रेवरी। बड़े से बड़ा बहादुर आदमी भी भयभीत होता है, अभय नहीं होता। अभय होने का मतलब, भय है ही नहीं; निर्भय होने का भी उपाय नहीं है। भय बचा ही नहीं है।

जो आदमी लक्षण को...लक्षण है ये। ये कृष्ण लक्षण गिना रहे है; काजेज नहीं, कांसिक्वेंसेज गिना रहे है। ये कारण नहीं गिना रहे है, लक्षण गिना रहे हैं कि अगर क्रोध न हो, अगर भय न हो, तो ऐसा आदमी स्थितधी है।

लेकिन हम आमतौर से उलटा कर लेते है। हम कह सकते हैं कि एक

आदमी का शरीर अगर गरम न हो, तो उस आदमी को बुखार नहीं है। ठीक, इसमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती है। एक आदमी का शरीर गरम न हो, तो उसे बुखार नहीं है। लेकिन एक आदमी का शरीर गरम हो, तो उसके शरीर को ठंडा करने से बुखार नहीं जाता; पानी डालने से बुखार नहीं जाता। बुखार अगर पानी डालकर मिटाने की कोशिश की, तो बीमारी के जाने की उम्मीद कम, बीमार के जाने की उम्मीद ज्यादा है।

नहीं, शरीर पर बुखार जब देखता है चिकित्सक, टेंपरेचर देखता है, तो यह जानने के लिए देखता है कि बीमारी कितनी है भीतर, जिससे इतना उत्ताप बाहर है। उत्ताप सिर्फ लक्षण है। उत्ताप बीमारी नहीं है। शरीर कहीं भीतर गहन संघर्ष में पड़ा है, उस संघर्ष के कारण उत्तप्त हो गया है। शरीर के सेल, शरीर के कोष्ठ कहीं लड़ रहे हैं भीतर दुश्मनों की तरह। कहीं भीतर कोई लड़ाई जारी है। कोई कीटाणु भीतर घुस गए हैं, जो शरीर के कीटाणुओं से लड़ रहे है। शरीर के रक्षक और शरीर के शत्रुओं के बीच कहीं गहरा संघर्ष है। उस संघर्ष की वजह से सारा शरीर उत्तप्त हो गया है। उत्तप्त होना सिर्फ लक्षण है, सिम्पटम है, बीमारी नहीं है। और अगर गरम होने को ही कोई बीमारी समझ ले, तो ठंडा करना इलाज है। तो पानी डालें। बुखार तो नहीं, बीमार चला जाएगा।

नहीं, इतना ही समझें कि बुखार है, तो भीतर बीमारी है। अब बीमारी को अलग करें। और बीमारी अलग हुई, यह तब जानें, जब शरीर पर बुखार न रह जाए। तो चिकित्सक कहता है, जब शरीर पर गरमी नहीं है तब आदमी स्वस्थ है। लेकिन शरीर पर गरमी घटाने का उपाय स्वास्थ्य की विधि नहीं है।

कृष्ण जब कह रहे हैं कि भय नहीं रह जाता, क्रोध नहीं रह जाता, तो समझना कि क्रोध और भय टेंपरेचर हैं। जो बीमार आदमी के, डिजीज्ड माइंड के, भीतर जिसका मन आपस में लड़ रहा है, कलह से भरा है-कलहग्रस्त मन में क्रोध का बुखार होता है। कलहग्रस्त मन में कमजोरी आ जाती है। स्वयं से लड़कर आदमी टूट जाता है, अपनी शक्ति को खोता है और इसलिए भयभीत हो जाता है। क्रोध और भय, स्वयं जब आदमी मन में संघर्ष में पड़ा होता है, तब लक्षणाएं हैं। वे खबर देती हैं कि आदमी भीतर बीमार है, चित्त रुग्ण है। बस,

इतनी ही खबर। और जब क्रोध और भय नहीं होते, तब खबर मिलती है कि भीतर चित्त स्वस्थ है। चित्त का स्वास्थ्य समाधि है, अंतर-स्वास्थ्य समाधि है।

इस भेद को इसलिए आपसे कहना चाहा कि आप क्रोध और भय से मत लड़ने लग जाना। क्रोध और भय को देखना, जानना, पहचानना। उनकी पहचान से पता चलेगा कि भीतर समाधि नहीं है। फिर समाधि लाने के उपाय अलग ही हैं। समाधि लाने के उपाय करना। समाधि आ जाएगी, तो क्रोध और भय चले जाएंगे। टेंपरेचर कहेगा कि नहीं, थर्मामीटर बताएगा कि नहीं। जब क्रोध और भय मालूम न पड़ें, तब समझना कि समाधि फलित हुई है।

लेकिन हम इससे उलटा कर लेते हैं, क्रोध और भय को दबा लेते हैं। दबाने से एक खतरा है। वह खतरा यह है कि समाधि तो भीतर फलित नहीं होती, दबे हुए क्रोध और भय के कारण हमें पता भी नही चलता कि भीतर समाधि नहीं है। हम लक्षणों में धोखा दे लेते है।

मैंने गुरजिएफ का नाम बीच में लिया था। और मैने कहा कि गुरजिएफ के कोई पास आता, तो वह शराब पिलाता। वह न केवल शराब पिलाता, बल्कि जब कोई आदमी साधना के लिए उसके पास आता, तो वह अजीब-अजीब तरह के टेंपटेशन पैदा करता। वह अजीब सिचुएशंस, स्थितियां पैदा करता। वह एक आदमी को इस हालत में ला देता कि उसको पता ही न चले कि उसको क्रोध दिलाया जा रहा है, उसका पूरा क्रोध जगवा देता। वह ऐसी हालत पैदा कर देता कि वह आदमी बिलकुल पागल होकर क्रुद्ध हो जाए। और जब वह पूरे क्रोध में आ जाता, तब वह उस आदमी को कहता कि जरा जागकर देख कि कितना क्रोध है तेरे भीतर! जब तू आया था तब इतना क्रोध नहीं था। लेकिन तू यह मत समझना कि यह क्रोध अभी आ गया है। यह था तब भी, लेकिन भीतर दबा था, अब प्रकट हुआ है। इसे पहचान ले, क्योंकि यही लक्षण है।

हमें पता ही नहीं चलता कि हमारे भीतर कितना दबा है। आमतौर से हम समझते हैं कि कभी-कभी कोई हमें क्रोधित करवा देता है। यह बड़ी झूठी समझ है। कोई दुनिया में किसी को क्रोधित नहीं करवा सकता, जब तक कि भीतर क्रोध मौजूद न हो। दूसरे लोग तो केवल निमित्त बन सकते हैं, खूंटियां बन सकते

हैं; कोट आपका ही टंगता है, कोट खूंटी का नहीं होता। आपके पास कोट होता है, तो आप टांग देते हैं। आप यह नहीं कह सकते कि इस खूंटी ने कोट टंगवा लिया। कोट तो था ही-चाहे हाथ पर टांगते, चाहे सांकल पर टांगते, चाहे खीली पर टांगते, चाहे कंधे पर टांगते-कहीं न कहीं टांगते। कोट तो था ही आपके पास; खूंटी ने सिर्फ रास्ता दिया, आपका कोट टांग लिया। खूंटी जिम्मेवार नहीं है, जिम्मेवार आप ही हैं। खूंटी सिर्फ निमित्त है।

एक आदमी मुझे गाली देता है। आग भड़क उठती है, क्रोध आ जाता है। तो मैं कहता हूं, इस आदमी ने क्रोध पैदा करवा दिया। यह आदमी क्रोध पैदा करवा सकता है? तो मैं आदमी हूं कि मशीन हूं, कि इसने बटन दबाई और क्रोध पैदा हो गया।

नहीं, क्रोध मेरे भीतर उबल रहा है; यह आदमी सिर्फ निमित्त है। और ऐसा मत कहिए कि यह आदमी मुझको खोज रहा है। असलियत तो यह है कि मैं इस आदमी को खोज रहा हूं। अगर यह न मिले, तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊंगा। यह मिल जाता है, तो मैं हल्का हो जाता हूं, अनबर्डन्ड हो जाता हूं, बोझ उतर जाता है।

जैसे एक कुएं में हम बालटी डालते हैं। फिर बालटी में पानी भरकर आ जाता है। लेकिन कुएं में पानी तो होना चाहिए न! बालटी खाली कुएं से पानी नहीं ला सकती, सूखे कुएं से पानी नहीं ला सकती। खड़खड़ाकर लौट आएगी। कह देगी, नहीं है। दूसरे आदमी की गाली ज्यादा से ज्यादा बालटी बन सकती है मेरे भीतर। लेकिन क्रोध वहां होना चाहिए, तब उस बालटी में भरकर बाहर आ जाएगा।

सब भरा है भीतर। दबा-दबाकर बैठे हैं। बहुत कागजी दबाव है, बड़ा दबाव नहीं है। जरा खरोंच दो, अभी उभर पड़ेगा। लेकिन उसे देखना जरूरी है।

तो कृष्ण की इस बात से यह मत समझ लेना कि क्रोध को दबा लिया, भय को दबा लिया, तो निश्चिंत हो गए, समाधिस्थ हो गए, स्थितधी हो गए! इतना सस्ता मामला नहीं है। दबाने की बजाय क्रोध को उभारकर ही देखना। और जब कोई गाली दे, तो अपने भीतर देखना, कितना उभरता है! और जब कोई गाली दे, तो उसे धन्यवाद देना कि तेरी बड़ी कृपा! तू अगर बालटी न लाता, तो अपने कुएं की खबर ही न मिलती। ऐसा कभी-कभी बालटी ले आना।

कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। साधुओं से कबीर ने कहा है कि साधुओ! अपने निंदक को आंगन-कुटी छवाकर अपने पड़ोस में ही बसा लो, कि जैसे ही तुम बाहर निकलो, वह बालटी डाल दे और तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, वह तुम्हें दिखाई पड़ जाए। क्योंकि उसे तुम देख लो, उसे तुम पहचान लो, तो तुम्हें अपनी असली स्थिति का बोध हो। और जिसे अपनी असली स्थिति का बोध नहीं है, वह अपनी परम स्थिति को कभी प्राप्त नहीं हो सकता है। जो अपनी वास्तविक, यथार्थ स्थिति को जानता है आज के क्षण में, वह अपनी परम स्थिति को, परम स्वभाव को भी उपलब्ध करने की यात्रा पर निकल सकता है।

क्रोध और भय इंगित है, सूचक है, सिबालिक है, सिंप्टमैटिक है। उनसे डायग्नोसिस कर लेना। उनसे अपना निदान कर लेना कि ये है, तो मेरे भीतर समाधि नहीं है। लेकिन इनको दबाकर मत सोच लेना कि इनको दबाने से समाधि हो जाती है। नहीं, समाधि आएगी तो ये नहीं हो जाएंगे। इनके दबाने से समाधि फलित नहीं होगी।

इसलिए कृष्ण ने बहुत ठीक सूत्र कहे, दुख उद्विग्न न करे, सुख की आकांक्षा न हो, क्रोध उत्तप्त न करे, भय कंपाए नहीं, तो जानना अर्जुन कि ऐसा व्यक्ति समाधिस्थ है।

प्रश्न : स्थितप्रज्ञ के गुण-लक्षण कहते हुए आपने यह तो विशदता की कि उसकी सेंसिटिविटी ब्लंट नहीं होती। तो स्थितप्रज्ञ मनुष्य सुख में विगतस्पृह रहेगा और दुख में अनुद्विग्नमन रहेगा। तो इसमें एक बाधा पड़ जाती है। अगर वह सुख को सुख की भांति और कष्ट को कष्ट की भांति न ले, तो उसकी संवेदना को ह्यूमन, मानवीय कैसे कहें? स्थितप्रज्ञ होना क्या सुपर ह्यूमन फिनामिनन है?

जिसकी प्रज्ञा जागी, थिर हुई, अकंप हुई, क्या उसे कष्ट का पता नहीं चलेगा?

अब यहां एक नया शब्द बीच में आया है, जो अभी चर्चा में नहीं था। सुख था, दुख था, कष्ट नहीं था। इनके फासले को समझना जरूरी होगा।

कष्ट तथ्य है, दुख व्याख्या है। पैर में कांटा चुभता है, तो चुभन तथ्य है, फैक्ट है, स्थितप्रज्ञ को भी होगी। स्थितप्रज्ञ मर नहीं गया है कि पैर में कांटा चुभे तो पता नहीं चले। पता चलेगा। शायद आपसे ज्यादा पता चलेगा। क्योंकि उसकी प्रज्ञा ज्यादा शांत है, ज्यादा संवेदनशील है। उसकी अनुभूति की क्षमता आपसे गहरी और घनी है। उसका बोध, उसकी सेंसिटिविटी आपसे प्रगाढ़ है, अनंत गुना प्रगाढ़ है। शायद आपको जो कांटा चुभा है, इस तरह कभी पता ही नहीं चला होगा, जैसा उसको पता चलेगा। क्योंकि पता चलना ध्यान की क्षमता पर निर्भर होता है।

एक युवक खेल रहा है हाकी मैदान में। पैर पर चोट लग गई है हाकी की। खून बह रहा है अंगूठे से। नाखून टूट गया है। उसे कुछ पता नहीं है। सारे देखने वाले देख रहे हैं कि पैर से खून टपक रहा है। वह दौड़ रहा है, और खून की बिंदुओं की कतार बन जाती है। फिर खेल खत्म हुआ और वह पैर पकड़कर बैठ गया है। और वह कह रहा है कि कब यह चोट लग गई? मुझे कुछ पता नहीं है! क्या हुआ? चोट लगी और पता नहीं चला!

असल में जब चोट लगी, तब उसकी अटेंशन कहीं और थी, ध्यान कहीं और था। और ध्यान के बिना पता नहीं चल सकता। अंगूठे तक पहुंचने के लिए ध्यान उसके पास था ही नहीं। ध्यान एंगेज्ड था, आकुपाइड था, पूरा का पूरा संलग्न था खेल में। अभी ध्यान के पास सुविधा न थी कि अंगूठे तक जाए। तो अंगूठा पड़ा रहा, चिल्लाता रहा कि चोट लगी है, चोट लगी है। लेकिन कहीं कोई सुनवाई न थी। सुनने वाला मौजूद नहीं था। सुनने वाला उस यात्रा पर जाने को राजी नहीं था, जहां अंगूठा है। सुनने वाला अभी कहीं और था, व्यस्त था। फिर खेल बंद हुआ; व्यस्तता समाप्त हुई। सुनने वाला, ध्यान, अटेंशन वापस आया। अब फुर्सत थी। वह पैर की तरफ भी गया। वहां पता चला कि खून बह रहा है, चोट लग गई है, दर्द है।

तो स्थितप्रज्ञ की प्रज्ञा तो पूरे समय अव्यस्त है, अनआकुपाइड है। जिस व्यक्ति का चित्त बिलकुल शांत है, उसकी चेतना हमेशा अव्यस्त है। उसकी चेतना कहीं भी उलझी नहीं है, सदा अपने में है। तो उसके पैर में अगर कांटा

गड़ेगा, तो अनंत गुना अनुभव उसे होगा, जितना हमें होता है। कष्ट तथ्य है, वह जानेगा कि पैर में कष्ट है। लेकिन पैर में कष्ट उसका, मुझमें दुख है, ऐसी व्याख्या नहीं बनेगा। पैर का कष्ट एक घटना है-बाहर, दूर, अलग।

ध्यान रहे, कष्ट और हमारे बीच सदा फासला है, दुख और हमारे बीच फासला नहीं है। जब हम कष्ट से आइडेंटिफाइड होते हैं, जब कष्ट ही मैं हो जाता हूं, तब कष्ट दुख बनता है। वह कहेगा, पैर में चोट है, पैर में कांटा गड़ रहा है। वह उपाय करेगा कि कांटे को निकाले; पैर के लिए इंतजाम करे। लेकिन इससे उद्विग्न नहीं है।

अब यह भी बड़े मजे की बात है कि अगर पैर में कष्ट है, तो उद्विग्न होने से कम नही होगा। जितना उद्विग्न आदमी होगा, उतना कम करने के उपाय कम कर सकेगा। जितना अनुद्विग्न आदमी होगा, उतने शीघ्र उपाय कर सकेगा।

मै एक गांव में ठहरा था। मेरे पड़ोस के मकान में आग लग गई। एक बहुत मजेदार दृश्य देखने को मिला। तीन मंजिल मकान है। पूरे मकान पर टीन ही टीन छाए हुए हैं। दूसरे मंजिल पर आग लगी। बीड़ी के पत्ते रखे हुए हैं। मकान मालिक इतना उद्विग्न हो गया कि वह तीसरी मंजिल पर चढ़ गया, जहां उसकी टंकी है पानी की। और उसने टंकी से बालटियां लेकर पानी फेंकना शुरू कर दिया तीसरी मंजिल से। सारा मकान टीन से छाया हुआ है। टीन आग की तरह लाल तप रहे है। वह पानी उन टीनों पर गिरे और वह पानी जाकर नीचे खड़े लोगों पर गिरे, जो घर से बच्चों को निकाल रहे हैं, सामान निकाल रहे हैं। जिस पर वह पानी गिर जाए, वही चीखकर भागे कि मार डाला! फिर कोई उसके पास आने को तैयार न हुआ।

भीड़ खड़ी है, सारे लोग नीचे से चिल्ला रहे हैं, तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो! पानी डालना बंद करो, नहीं तो तुम्हारे बच्चे अंदर मर जाएंगे। तुम्हारे घर से एक चीज न निकाली जा सकेगी। लेकिन वह आदमी बस इतना ही चिल्ला रहा है, बचाओ! आग लग गई! बचाओ! आग लग गई! और पानी डालता चला जा रहा है।

उस आदमी ने-आग ने नहीं-उस पूरे मकान को जलवा दिया। क्योंकि एक आदमी भी बुझाने की स्थिति में भीतर नहीं जा सका। एक बच्चा भी मरा, आग से नहीं, उसके पानी से। उस तक पहुंचने का भी कोई उपाय न रहा कि कैसे उस तक कोई चढ़कर जाए! उसका पानी इतने जोर से आता था कि कौन वहां चढ़कर जाए! बांसों से लोगों ने दूसरे मकानों पर चढ़कर उस पर चोट की कि भाई साहब! यह क्या कर रहे हो? वह बांस को ऐसा अलग कर दे और कहे कि बचाओ! आग लगी है! और पानी डालता रहा।

यह उद्विग्न चित्त आत्मघाती हो जाता है। अनुद्विग्न चित्त, जो उचित है, वह करता है। कष्ट हो सिर्फ, दुख न हो, तो उद्विग्न नहीं होते आप, सिर्फ कष्ट के बोध से भरे होते हैं। दुख मानसिक व्याख्या है, कष्ट तथ्य है। ठीक ऐसे ही अकष्ट तथ्य है, सुख मानसिक व्याख्या है।

स्थितप्रज्ञ कष्ट और अकष्ट को भलीभांति जानता है। कांटों पर लिटाइए, तो उसे पता चलता है कि कांटे हैं; और गद्दी पर बिठाइए, तो उसे पता चलता है कि गद्दी है। लेकिन गद्दी पर बैठने की वह आकांक्षा नहीं बांध लेता, गद्दी पर बैठकर वह पागल नहीं हो जाता, गद्दी से वह एक नहीं हो जाता। गद्दी सुख नहीं बनती, मानसिक व्याख्या नहीं बनती, एक भौतिक तथ्य होती है। कांटे भी एक भौतिक तथ्य होते हैं।

स्थितधी अनुभव में, अनुभूति में, तथ्यों के जानने में पूरी तरह संवेदनशील होता है। लेकिन व्याख्या जो हम करते हैं, वह नहीं करता है। मृत्यु उसकी भी आती है। हम दुखी होते हैं, वह दुखी नहीं होता। वह मृत्यु को देखता है कि मृत्यु आती है। बुढ़ापा उसका भी आता है। ऐसा नहीं कि उसे पता नहीं चलता कि अब बुढ़ापा आ गया। लेकिन वह बुढ़ापे को देखता है कि जीवन का एक तथ्य है और आता है। वह जवानी को जाते देखता, बुढ़ापे को आते देखता। बुढ़ापे के कष्ट होंगे, शरीर जीर्ण-जर्जर होगा। लेकिन शरीर होगा, स्थितधी को ऐसा नहीं लगता कि मैं हो रहा हूं। लेकिन जब हम बूढ़े होते हैं, तो ऐसा नहीं लगता कि शरीर बूढ़ा हो रहा है, ऐसा लगता है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूं।

हमारे प्रत्येक तथ्य में हमारा मैं तत्काल समाविष्ट हो जाता है। जीवन का कोई तथ्य हमारे मैं की व्याख्या के बाहर नहीं छूटता। हम प्रत्येक तथ्य को तत्काल व्याख्या, इंटरप्रिटेशन बना लेते हैं। स्थितप्रज्ञ की कोई व्याख्या नहीं है। वह अ को अ कहता है, ब को ब कहता है। वह कहीं भी अपने को जोड़ नहीं लेता है। और चूंकि जोड़ता नहीं, इसलिए सदा बाहर खड़े होकर हंस सकता है।

मैंने सुना है, इपिक्टेटस यूनान में, जिसको कृष्ण समाधिस्थ कहें, ऐसा एक व्यक्ति हुआ। वह कहता था, मुझे मार डालो तो भी मैं हंसता रहूंगा, मुझे काट डालो तो भी मै हंसता रहूंगा। सम्राट ने उसे पकड़ बुलाया और कहा कि छोड़ो ये बातें। हम बात नहीं मानते, हम कृत्य मानते हैं। दो पहलवान बुलवाए, जंजीरें बांधकर इपिक्टेटस को डाल दिया और कहा कि इसका एक पैर उखाड़ो। उन पहलवानों ने उसका एक पैर उखाड़ने के लिए पैर मोड़ा। इपिक्टेटस ने कहा कि बिलकुल ठीक, जरा और। अभी तुम जितना कर रहे हो, इससे सिर्फ कष्ट हो रहा है, पैर टूटेगा नहीं। जरा और, बस जरा और कि टूट जाएगा!

सम्राट ने कहा, तू पागल तो नहीं है! अपने ही पैर को तोड़ने की तरकीब बता रहा है! इपिक्टेटस ने कहा कि मुझे ज्यादा ठीक से पता चल रहा है, उन बेचारों को क्या पता चलेगा! दूसरे का पैर मरोड़ रहे हैं। मैं इधर भीतर जान रहा हूं कि तकलीफ बढ़ती जा रही है, तकलीफ बढ़ती जा रही है, बढ़ती जा रही है। अब ठीक वह जगह है, जहां हड्डी टूट जाएगी। पर सम्राट ने कहा, तेरा पैर हम तोड़ रहे हैं!

इपिक्टेटस ने कहा कि अगर मुझे तोड़ रहे होते, तो बात और होती। मेरे पैर को ही तोड़ रहे हैं न? तो मेरे पैर को आप नहीं तोड़ेंगे, तो कल मौत तोड़ देगी। और आप तो सिर्फ पैर ही तोड़ रहे हैं, फुटकर, मौत होलसेल तोड़ देगी, सभी कुछ टूट जाएगा। एक पैर तोड़ रहे हैं, दूसरा तो बचा है। इपिक्टेटस से हम भीतर कह रहे हैं कि देखो बेटे, एक ही टूट रहा है, अभी दूसरा बचा है। अभी तुम इसको ही तुड़वा दो ठीक से।

फिर यह भी हम अनुभव कर रहे हैं-उसने कहा-कि जितनी देर लगेगी टूटने में, उतनी देर कष्ट होगा। तुम्हारा प्रयोग भी न हो पाएगा, हमारा प्रयोग भी

न हो पाएगा। आज मौका आ गया है। कहा हमने सदा है कि कोई तोड़ डाले हमें, तो कुछ न होगा। आज देखने का अवसर तुमने जुटा दिया। तुम भी देख लोगे, हम भी देख लेंगे कि कष्ट दुख बनता है या नहीं बनता है।

कष्ट-अकष्ट अलग बात है, सुख और दुख बिलकुल अलग बात है। सुख और दुख मनुष्य की व्याख्या है। इसलिए जब आप पूछ रहे हैं कि क्या ऐसा आदमी सुपर ह्यूमन हो जाएगा?

निश्चित ही। सुपर ह्यूमन इन अर्थों में नहीं कि उसे कांटे नहीं चुभेंगे। इन अर्थों में भी अतिमानवीय नहीं कि उसे बीमारी होगी, तो पीड़ा नहीं होगी। अतिमानवीय इन अर्थों में नहीं कि मौत आएगी, बुढ़ापा आएगा, तो वह बूढ़ा नहीं होगा। नहीं, अतिमानवीय इन अर्थों में कि वह व्याख्या जो मनुष्य की करने की आदत है, नहीं करेगा। वह मनुष्य की व्याख्या करने की आदत के बाहर होगा। इन अर्थों में वह अतिमानव है, सुपरमैन है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 57।।
यदा संहरते चायं कूर्मोऽग्ङानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 58।।

और जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी प्रज्ञा स्थिर है।

और कछुआ अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इंद्रियों को इंद्रियों के विषयों से समेट लेता है, तब उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है।

हर्ष में, विषाद में, अनुकूल में, प्रतिकूल में भेद नहीं। लेकिन यह अभेद कब फलित होगा? कृष्ण कहते हैं, जैसे कछुआ अपने अंगों को कभी भी भीतर सिकोड़ लेता है, जैसे कछुआ अपने अंगों को सिकोड़ना जानता है, ऐसा ही समाधिस्थ पुरुष विषयों से अपनी इंद्रियों को सिकोड़ना जानता है।

थोड़ी नाजुक बात है, थोड़ी डेलिकेट बात है।

यहां इंद्रियों को सिकोड़ना...योग की दृष्टि में इंद्रियों के दो रूप हैं। एक इंद्रिय का वह रूप जो हमें बाहर से दिखाई पड़ता है, कहें इंद्रिय का शरीर। एक इंद्रिय का वह रूप जो हमें दिखाई नहीं पड़ता है, लेकिन इंद्रिय का प्राण है, कहे इंद्रिय का प्राण या आत्मा इंद्रिय की।

एक मेरी आंख है। इंस्ट्रूमेंट है आंख का। इस आंख के संबंध में चिकित्सक आंख का सब कुछ बता सकता है। आंख को काट-पीट करके, सर्जरी करके, एक-एक रग-रेशे की खबर ले आ सकता है। लेकिन यह सिर्फ आंख शरीर है आंख का। वस्तुतः यह इंद्रिय नहीं है। सिर्फ इंद्रिय की बाह्य रूप-आकृति है। इंद्रिय तो और है। इस आंख के पीछे देखने की जो वासना है, देखने की जो आकांक्षा है, वह इंद्रिय है, वह प्राण है। उसका किसी चिकित्सक को आंख के काटने-पीटने से कुछ पता नहीं चल सकता।

प्रत्येक इंद्रिय का शरीर है और प्रत्येक इंद्रिय का प्राण है। आंख सिर्फ देखने का काम ही नहीं करती, देखने की आकांक्षा, देखने का रस भी उसके पीछे छिपा है। देखने की वासना भी उसके पीछे हिलोरें लेती है। वही वासना असली इंद्रिय है।

कृष्ण को समझने के लिए समस्त इंद्रियों के इन दो हिस्सों को समझ लेना जरूरी है। अन्यथा आदमी आंख फोड़ने लग जाए। इंद्रियां सिकोड़ने का क्या मतलब-आंख फोड़ लें? इंद्रियां सिकोड़ने का क्या मतलब-कान फोड़ लें? इंद्रियां सिकोड़ने का क्या मतलब-जीभ काट डालें? और आप सोचते हों कि नही, ऐसा तो कोई भी नहीं समझता, तो गलत सोचते हैं।

जमीन पर अधिक लोगों ने ऐसा ही सोचा है। ऐसा ही सोचा है। ऐसे साधु हुए है, जिन्होंने आंखें फोड़ी है। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने कान फोड़े है। ऐसे साधु हुए हैं, जिन्होंने पैर काट डाले हैं। ऐसे साधु हुए है, जिन्होंने जननेंद्रियां काट डाली हैं। मध्ययुग में योरोप में एक बहुत बड़ा ईसाइयों का संप्रदाय था, जिसने लाखों लोगों की जननेंद्रियां कटवा डालीं। स्त्रियों के स्तन कटवा डाले; पुरुषों की जननेंद्रियां कटवा डालीं।

लेकिन क्या आंख के फूट जाने से देखने की वासना फूट जाती है? क्या जननेंद्रिय के कट जाने से काम की वासना कट जाती है? तब तो सभी बूढ़े कामवासना के बाहर हो जाएं!

नहीं, इंद्रिय कट जाने से सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम कट जाता है। और अभिव्यक्त होने की जो प्रबल वासना थी भीतर, वह और विक्षिप्त होकर दौड़ने लगती है। मार्ग न मिलने से वह और पागल हो जाती है, द्वार न मिलने से और विक्षिप्त हो जाती है। हां, दूसरों को पता चलना बंद हो जाता है। वह वासना प्रेत बन जाती है, उसके पास शरीर नहीं रह जाता।

कृष्ण जिस इंद्रिय को सिकोड़ने की बात कर रहे हैं, और कछुए से जो उदाहरण दे रहे हैं; कछुए के उदाहरण को बहुत मत खींच लेना। गीता पर टीका लिखने वालों ने बहुत खींचा है। आदमी कछुआ नहीं है। कोई उदाहरण पूरे नहीं होते। सब उदाहरण सिर्फ सूचक होते हैं-जस्ट ए इंडिकेशन-एक इशारा, जिससे बात समझ में आ जाए, बस। जैसे कछुआ अपनी इंद्रियों को सिकोड़ लेता है, ऐसा ही स्थितप्रज्ञ, वे जो भीतर की रस इंद्रियां हैं, उन्हें सिकोड़ लेता है। लेकिन रस इंद्रियों का जो बाह्य-शरीर है, उसे सिकोड़ने का कोई मतलब नहीं है। उसे सिकोड़ने का मतलब तो सिर्फ मरना है। और उसे काटकर भीतर का रस नहीं कटता। हां, भीतर का रस कट जाए, तो वह इंद्रिय शुद्ध इंस्ट्रूमेंट रह जाती है-वासना का नहीं, सिर्फ व्यवहार का।

आंख तब देखती है बिना देखने की वासना के। तब जो आंख के सामने आ जाता है, वह देखा जाता है। लेकिन तब आंख कुछ आंख के सामने आ जाए, इसकी आकांक्षा से पीड़ित नहीं होती है। तब जो भोजन सामने आ जाता है, वह कर लिया जाता है। तब जीभ उस भोजन को करने में सहयोग देती है, लार छोड़ती है। लेकिन जो भोजन सामने नहीं है, जीभ फिर उसके लिए लार नहीं टपकाती है। फिर जो कान में पड़ जाता है, वह सुन लिया जाता है। लेकिन फिर कान तड़पते नहीं हैं किसी को सुनने के लिए। नहीं, तब इंद्रियां सिर्फ व्यवहार के माध्यम रह जाती हैं।

ध्यान रहे, जब इंद्रियां व्यवहार के माध्यम रहती हैं, तब वे केवल बाहर से सेंस डेटा इकट्ठा करती हैं, बस। जब इंद्रियां सिर्फ व्यवहार का माध्यम होती हैं, तो बाहर के जगत से तथ्यों की सूचना भीतर देती हैं। और जब इंद्रियां वासना के माध्यम बनती हैं, तब वासनाओं को बाहर ले जाकर विषयों से जोड़ने के उपयोग में लाई जाती हैं।

ये दोनों अलग-अलग फंक्शन हैं, ये दोनों अलग-अलग काम हैं। यह तो आंख का काम है कि वह बताए कि सामने दरख्त है। यह आंख का काम है कि वह बताए कि सामने पत्थर है। यह आंख का काम है कि वह खबर दे कि सामने क्या है। लेकिन जब आंख वासना से भरती है, तो बहुत मजेदार है।

तुलसीदास भागे हैं पत्नी को खोजने। उस वक्त उनकी आंख फंक्शनल नहीं है, उस वक्त सांप को वे रस्सी समझ लेते हैं। आंख अपना फंक्शन नहीं कर पा रही है। वासना इतनी तीव्र है, रस्सी को ही देखना चाहती है। इसलिए सांप को भी रस्सी देख लेती है। रस्सी ही चाहती है उस वक्त, एक क्षण चैन नहीं है। सामने के दरवाजे से जाएंगे, उचित नहीं; अभी पत्नी को आए देर भी नहीं हुई, वे पीछे-पीछे ही चले आए हैं।

नदी पार करते हैं, तो एक मुरदे की लाश को लकड़ी समझकर सहारा लेकर नदी पार कर जाते है। आंख अपना फंक्शनल काम नहीं कर पा रही है। आंख जो करने के लिए बनी है, वह नहीं कर पा रही है कि लाश है। न, मन कह रहा है, कहां लाश! मन को लाश से कोई लेना-देना नहीं है। मन को पहुंचना है उस पार। उस पार भी नहीं पहुंचना है, वह जो पत्नी चली गई है, उस तक पहुंचना है। अब मन बिलकुल आंखों का उपयोग नहीं कर रहा है। आंखें बिलकुल अंधी हो गई हैं। लाश का सहारा लेकर, लकड़ी समझकर, पार हो जाते हैं। सांप को पकड़कर छत पर चढ़ जाते हैं।

अब यहां अगर हम ठीक से समझें, तो आंख का जो व्यवहार है, जिसके लिए आंख है, वह नहीं हो रहा है। बल्कि आंख के पीछे जो वासना है, वह वासना आंख पर हावी है। आंख वासना से आब्सेस्ड है। वासनाग्रस्त आंख अंधी हो जाती है। वह वही देखती है, जो देखना चाहती है; वह नहीं देखती, जो है।

कृष्ण जब कहते हैं, कछुए की तरह इंद्रियों को सिकोड़ लेता है स्थितधी, तो मतलब यह नहीं है कि आंखें फोड़ लेता है, कि आंखें बंद कर लेता है। मतलब इतना ही है कि आंखों से सिर्फ आंखों का ही काम लेता है। सिर्फ देखता ही है आंखों से; वही देखता है, जो है। कानों से वही सुनता है, जो है। हाथों से वही छूता है, जो है। विषयों पर वासना को आरोपित नहीं करता। विषयों पर वासना के सपनों के भवन नहीं बनाता। विषयों को आपूरित नहीं कर देता।

सुना है मैंने कि मजनू को उसके गांव के राजा ने बुलाया और कहा, तू बिलकुल पागल है, साधारण-सी स्त्री है लैला।

शायद आपको भी खयाल न हो, क्योंकि मजनू इतना लैला-लैला चिल्लाया है कि ऐसा खयाल पैदा हो गया है कि लैला कोई बहुत सुंदर स्त्री रही होगी। लैला बहुत साधारण स्त्री है।

सम्राट ने बुलाकर कहा कि तू पागल है। बहुत साधारण-सी स्त्री है, उसके पीछे तू दीवाना है? उससे अच्छी स्त्रियां मैं तुझे बुलाए देता हूं; कोई भी चुन ले। सम्राट ने नगर की बारह सुंदरतम लड़कियों को लाकर खड़ा कर दिया। मजनू पर उसे दया आ गई।

मजनू हंसने लगा। उसने कहा कि कहां लैला और कहां ये स्त्रियां! आपका दिमाग तो ठीक है? लैला के चरणों में भी तो ये कोई नहीं बैठ सकतीं! सम्राट ने कहा, दिमाग मेरा ठीक है कि तेरा ठीक है! मजनू ने कहा, कुछ भी हो, दिमाग से लेना-देना क्या है! लेकिन एक बात आपसे कहे देता हूं, अब दोबारा यह बात मत उठाना। क्योंकि लैला के सौंदर्य को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए।

मजनू के पास कौन-सी आंख है? कोई और तरह की आंख है? आंख तो ऐसी ही है, जैसी मेरी है, आपकी है, उस राजा के पास थी। आंख तो जैसी सब की है वैसी उसकी भी है। लेकिन आंख वासनाग्रस्त है। आंख आंख का काम नहीं कर रही है, पीछे जो आंख की वासना की इंद्रिय है, वह हावी है। आंख वही देख रही है, जो वासना दिखाना चाह रही है।

इस भीतर की अंतर-इंद्रिय को सिकोड़ लेने की बात है- अंतर-इंद्रिय को, दिस इनर इंस्ट्रूमेंट, यह जो भीतर है हमारे।

इस फासले को ठीक से हमें समझ लेना चाहिए। जब हाथ से मै जमीन छूता हूं, तब मेरा हाथ क्या वही काम करता है! जब हाथ से मैं पत्थर छूता हूं, तब भी वही करता है! जब हाथ से मै किसी उसको छूता हूं जिसको मै छूना चाहता हूं, तब हाथ वही काम करता है?

नहीं, हाथ के काम में फर्क पड़ गया है। जब मै जमीन को छूता हूं, तो सिर्फ छूता हूं। कोई वासना नही है वह, सिर्फ स्पर्श है, एक भौतिक घटना है, एक मानसिक आरोपण नहीं। लेकिन जब मै किसी को प्रेम करता हूं और उसके हाथ को छूता हूं, तब सिर्फ भौतिक घटना है?

नही, तब एक मानसिक घटना भी है। हाथ सिर्फ छू ही नही रहा है, हाथ कुछ और भी कर रहा है। हाथ कोई सपना भी देख रहा है। हाथ किसी ड्रीम में उतर रहा है। हाथ अपने स्पर्श करने के ही अकेले काम को नही कर रहा है, स्पर्श के आस-पास काव्य भी बुन रहा है, कविता भी गढ़ रहा है।

वह भीतरी, वह जो भीतरी हाथ है, जो यह कर रहा है, इस भीतरी हाथ के सिकोड़ लेने की बात कृष्ण कह रहे है-कि स्थितधी अंतर-इंद्रियो को ऐसे ही सिकोड़ लेता है, जैसे कछुआ बहिर-इंद्रियो को सिकोड़ लेता है।

लेकिन आदमी को बहिर-इंद्रियां सिकोड़नी नही है। बहिर-इंद्रियां परमात्मा की बड़ी से बड़ी देन है। उनके कारण ही जगत का विराट हम तक उतरता है, उनके द्वार से ही हम परिचित होते है प्रकाश से। उनके द्वार से ही आकाश से, उनके द्वार से ही फूलों से, उनके द्वार से ही मनुष्य के सौदर्य से, उनके द्वार से ही जगत में जो भी है, उससे हम परिचित होते है।

नहीं, इंद्रियां तो द्वार है। लेकिन इन द्वार से सिर्फ जो बाहर है, वह भीतर जाए, तब तक ये द्वार विक्षिप्त नही है। और जब भीतर का मन इन द्वार से बाहर जाकर हमले करने लगता है, और चीजों पर आरोपित होने लगता है, और आग्रह निर्मित करने लगता है, और कल्पनाएं सजाने लगता है, और सपने निर्माण करने लगता है, तब, तब हम एक जाल मे खो जाते है, जो जाल बाहर की इंद्रियों का नहीं है, अंतर-इंद्रियों का है।

अंतर-इंद्रियों को सिकोड़ लेता है स्थितधी। कैसे सिकोड़ लेता होगा? क्योंकि बहिर-इंद्रियों को सिकोड़ना तो बहुत आसान समझ में आता है। यह हाथ फैला है, इसको सिकोड़ लिया। इसके लिए कोई स्थितप्रज्ञ होने की जरूरत नहीं है। कछुआ स्थितप्रज्ञ नहीं है, नहीं तो सभी आदमी कछुए हो जाएं और स्थितप्रज्ञ हो जाएं।

लेकिन बहुत लोगों ने कछुआ बनने की कोशिश की है। कई साधु, संन्यासी, साधक, त्यागी, योगी, कछुआ बनने की कोशिश में लगे रहे हैं कि कैसे इंद्रियों को सिकोड़ लें। कछुआ बनने से कोई हल नहीं है। कछुआ तो सिर्फ एक प्रतीक था, और अच्छा प्रतीक था। शायद कृष्ण जिस दुनिया में थे, इससे अच्छा प्रतीक और कोई मिल नहीं सकता था। आज भी नहीं है। आज भी हम खोजें कोई दूसरा सब्स्टीटयूट, तो बहुत मुश्किल है। कछुआ बिलकुल ठीक से बात कह जाता है-ऐसा कुछ, भीतर के जगत में। लेकिन वह भीतर के जगत में होगा कैसे?

बाहर की इंद्रियां सिकोड़ना बहुत आसान है। आंखें फोड़ लेना कितना आसान है, लेकिन देखने का रस छोड़ना कितना कठिन है! सच तो यह है कि आंखें फोड़ लो, तभी पहली दफा पता चलता है कि देखने का रस कितना है! रात आंख तो बंद हो जाती है, लेकिन सपने तो बंद नहीं होते। और दिनभर जो नहीं देखा, वह भी रात में दिखाई पड़ता है। आंख फोड़ लेंगे, तो क्या होगा? इतना ही होगा कि सपने चौबीस घंटे चलने लगेंगे। और क्या होगा?

सपनों पर बहुत खोजबीन हुई है। जब आप रात सपना देखते हैं, तो अब तो बाहर से भी पता चल जाता है कि आप सपना देख रहे हैं कि नहीं। अब तो यंत्र बन गए हैं, जो आपकी आंखों पर लगा दिए जाते हैं रात में, और रातभर अंकित करते रहते हैं कि इस आदमी ने कब सपना देखा, कब नहीं देखा। क्योंकि जब आप सपना देखते हैं, तब बंद आंख में भी आंख तेजी से चलने लगती है। बंद आंख है, देखने को कुछ नहीं है वहां, लेकिन आंख तेजी से चलने लगती है। उसके मूवमेंट्स रैपिड हो जाते हैं। इतनी तेजी से आंख चलने लगती है, जैसे सच में वह देख रही है अब।

तो वह उसकी आंख की गति ऊपर से पकड़ ली जाती है, वह ग्राफ बन जाता है कि आंख कब कितनी तेजी से चली। रात में कितनी बार आपने सपने देखे, वह सब ग्राफ बता देता है। अब तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे समझ में आ रहा

है कि किस तरह का सपना देखा! ग्राफ से वह भी पता चलने लगा है। क्योंकि जब आप सेक्सुअल सपना देखते हैं, जब आप कामुक सपना देखते हैं-और सौ में से कम से कम पचास सपने कामुक होते हैं सभी के, साधारणतः सभी के; जो असाधारण हैं, उनके जरा और ज्यादा परसेंटेज में होते हैं; पचास प्रतिशत कामुक सपने-तब तो आंख ही नहीं, जननेंद्रिय भी तत्काल प्रभावित हो जाती है। उस पर भी मशीन लगाई जा सकती है, वह भी खबर कर देती है ग्राफ पर।

अब कोई भी नहीं है, आप बिलकुल अकेले हैं अपने सपने में। न कोई विषय है, न कोई स्त्री है, न कोई पुरुष है, न कोई भोजन है-कुछ भी नहीं है। निपट अकेले हैं, सब इंद्रियां बंद हैं। फिर यह भीतर कौन गति कर रहा है? ये अंतर-इंद्रियां हैं, जो भीतर गति कर रही हैं। और इनकी भीतरी गति के कारण इनकी बहिर-इंद्रिय भी प्रभावित हो जाती है। काट डालें पूरे आदमी को, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पता नहीं चलेगा बस, सब भीतर-भीतर धुआं होकर घूमने लगेगा। अक्सर सज्जन आदमियों के भीतर सब धुआं हो जाता है, भीतर घूमने लगता है। बुरे आदमी जो बाहर कर लेते हैं, अच्छे आदमी भीतर करते रहते हैं। धर्म की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं है।

इन भीतर की इंद्रियों को कैसे सिकोड़ेंगे? एक छोटा-सा सूत्र, फिर हम दूसरा श्लोक लें। बहुत छोटा-सा सूत्र है भीतर की इंद्रियों को सिकोड़ने का।

एक दिन बुद्ध बैठे है ऐसे ही किसी सांझ; बहुत लोग उन्हें सुनने आ गए हैं। एक आदमी सामने ही बैठा हुआ पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने बोलते बीच में उस आदमी से कहा कि क्यों भाई, यह पैर का अंगूठा क्यों हिलाते हो? वह आदमी भी चौंका, और लोग भी चौंके, कि कहां बात चलती थी, कहां उस आदमी के पैर का अंगूठा! बुद्ध ने कहा, यह पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा है? उस आदमी का तत्काल अंगूठा रुक गया। उस आदमी ने कहा, आप भी कैसी बातें देख लेते हैं! छोड़िए भी। बुद्ध ने कहा, नहीं, छोडूंगा नहीं। जानना ही चाहता हूं, अंगूठा क्यों हिलता था? तुम्हारे इतने सवालों के जवाब मैंने दिए, आज पहली दफे मैंने सवाल पूछा है; मुझे उत्तर दो। उस आदमी ने कहा, अब आप पूछते हैं, तो मुश्किल में डालते हैं। सच बात यह है कि मुझे पता ही नहीं था कि पैर का अंगूठा हिल रहा है;

और जैसे ही पता चला, रुक गया। तो बुद्ध ने कहा, जों अंतर-कंपन हैं, वे पता चलते ही रुक जाते हैं। अंतर-कंपन जो हैं, वे पता चलते ही रुक जाते हैं।

तो भीतर की इंद्रियों को सिकोड़ना नहीं पड़ता, सिर्फ इसका पता चलना कि भीतर इंद्रिय है और गति कर रही है, इसका बोध ही उनका सिकुड़ना हो जाता है-दि वेरी अवेयरनेस। जैसे ही पता चला कि यह भीतर काम की वासना उठी, कुछ करें मत, सिर्फ देखें। आंख बंद कर लें और देखें, यह भीतर काम की वासना उठी। यह काम की वासना चली जननेंद्रिय के केंद्रों की तरफ-सिर्फ देखें। दो सेकेंड से ज्यादा नहीं, और आप अचानक पाएंगे, सिकुड़ गई। यह क्रोध उठा, चला यह बाहर की इंद्रियों को पकड़ने। सिर्फ देखें; आंख बंद कर लें और देखें; और आप पाएंगे, वापस लौट गया। यह किसी को देखने की इच्छा जगी और आंख तड़पी। देखें, चली भीतर की इंद्रिय बाहर की इंद्रिय को पकड़ने। देखें-सिर्फ देखें-और आप पाएंगे कि वापस लौट गई।

भीतर की इंद्रियां इतनी संकोचशील हैं कि जरा-सी भी चेतना नहीं सह पातीं। उनके लिए अचेतना जरूरी माध्यम है-मूर्च्छा। इसलिए जो अपने भीतर की इंद्रियों के प्रति जागने लगता है, उसकी भीतर की इंद्रियां सिकुड़ने लगती है, अपने आप सिकुड़ने लगती हैं। बाहर की इंद्रियां बाहर पड़ी रह जाती हैं, भीतर की इंद्रियां सिकुड़कर अंदर चली जाती हैं। ऐसी स्थिति व्यक्ति की समाधिस्थ स्थिति बन जाती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। 59।।

यद्यपि इंद्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले देहाभिमानी तपस्वी पुरुष के भी विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु रस निवृत्त नहीं होता। परंतु इस पुरुष का रस भी परमात्मा को साक्षात करके निवृत्त हो जाता है।

देहाभिमानी तपस्वी के...।

तपस्वी और देहाभिमानी? असल में देहाभिमान दो तरह का हो सकता है-भोगी का, तपस्वी का। लेकिन दोनों की स्थिति देहाभिमान की है, बाडी

ओरिएंटेशन की है। क्योंकि भोगी भी मानता है कि जो करूंगा वह शरीर से, और तपस्वी भी मानता है कि जो करूंगा वह शरीर से। भोगी भी मानता है कि शरीर ही द्वार है सुख का, त्यागी भी मानता है कि शरीर ही द्वार है सुख का। सुख की धारणाएं उनकी अलग हैं। भोगी शरीर से ही विषयों तक पहुंचने की कोशिश करता है, त्यागी शरीर से ही विषयों से छूटने की कोशिश करता है। लेकिन शरीर ओरिएंटेशन है, शरीर ही आधार है दोनों का। और दोनों बड़े देहाभिमानी हैं, बाडी-सेंट्रिक है, शरीर-केंद्रित हैं। दोनों की दृष्टि शारीरिक है।

इस तथ्य को पहले समझें, फिर दूसरा हिस्सा खयाल में लाया जा सकता है। दोनों की स्थिति शारीरिक है। एक आदमी सोचता है, शरीर से इंद्रियों को तृप्त कर लें। सारा जगत सोचता है।

मुझसे कोई पूछता था कि चार्वाक का कोई संप्रदाय क्यों न बना? उसके शास्त्र क्यों न बचे? उसके मंदिर क्यों न निर्मित हुए? उसका कोई पंथ, उसका कोई संप्रदाय क्यों नहीं है?

तो मैने उस आदमी को कहा कि शायद तुम सोचते हो कि उसके पास अनुयायी कम है इसलिए, तो गलत सोचते हो। असल में संप्रदाय सिर्फ माइनर ग्रुप्स के बनते हैं; मेजर ग्रुप का संप्रदाय नहीं बनता। जो अल्पमतीय होते हैं, उनका संप्रदाय बनता है; जो बहुमतीय होते हैं, वे बिना संप्रदाय के जीते है। बहुमत को संप्रदाय बनाने की जरूरत नहीं होती। बहुमत को संप्रदाय बनाने की क्या जरूरत है? अल्पमत संप्रदाय बनाता है। करोड़ आदमी हैं, दस आदमी एक मत के होंगे, तो संप्रदाय बनाएंगे, बाकी क्यों बनाएंगे? चार्वाक का संप्रदाय इसीलिए नहीं बना कि सारी पृथ्वी चार्वाक की है। सब चार्वाक हैं, नाम कुछ भी रखे हों।

इसलिए चार्वाक शब्द बड़ा अच्छा है, वह बना है चारु-वाक से, जो वचन सभी को प्रिय लगते हैं। चार्वाक का मतलब, जो बातें सभी को प्रीतिकर हैं। चार्वाक का एक दूसरा नाम है, लोकायत। लोकायत का मतलब है, लोक को मान्य, जो सबको मान्य है। बड़ी अजीब बात है। जो सबको मान्य है, ऐसा

विचार लोकायत है। जो सबको प्रीतिकर है, मधुर है, ऐसा विचार चार्वाक है। नहीं, कोई मंदिर नहीं, कोई संप्रदाय नहीं बना, क्योंकि सभी उसके साथ हैं।

क्या, चार्वाक कहता क्या है? वह कहता यह है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं। इंद्रिय के अतिरिक्त कोई सुख नहीं है। सुख यानी ऐंद्रिक होना। सुख चाहिए तो इंद्रिय से ही मिलेगा। हां, वह कहता है, यह बात सच है कि दुख भी इंद्रिय से मिलते हैं। यह बिलकुल ठीक ही है, जहां से सुख मिलेगा, वहीं से दुख भी मिलेगा। लेकिन वह कहता है, कोई भी पागल भूसे के कारण गेहूं को नहीं फेंक देता। कोई भी पागल कांटों के कारण फूल को नहीं छोड़ देता। तो दुख के कारण सुख को छोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। बुद्धिमान दुख को कम करता और सुख को बढ़ाता चला जाता है। लेकिन सब सुख ऐंद्रिक हैं।

क्या इस बात पर आपको कभी भी शक हुआ है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं? अगर शक नहीं हुआ, तो कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा। हम सब का भी भरोसा यही है कि सब सुख ऐंद्रिक हैं। हमने कोई सुख जाना भी नहीं है, जो इंद्रिय के बाहर जाना हो। स्वाद जाना है, संगीत जाना है, दृश्य देखे हैं, गंध सूंघी है, सौंदर्य देखा है-जो भी, वह सब इंद्रियों से देखा है। वह सब ऐंद्रिक हैं। इंद्रिय के अतिरिक्त हमने और कुछ जाना नहीं है। हम इंद्रियों के अनुभव का ही जोड़ हैं।

इसीलिए तो हमें आत्मा का कोई पता ही नहीं चलता। क्योंकि इंद्रिय का अनुभव ही जिसकी सारी संपदा है, वह शरीर के ऊपर किसी भी तत्व को नहीं जान सकता है। यह तो हमारी स्थिति है। यह हमारी देहाभिमानी भोगी की स्थिति है।

फिर अगर कभी कोई देहाभिमानी भोगी देह को भोगते-भोगते ऊब जाता है...। हर चीज को भोगते-भोगते ऊब आ जाती है। सभी चीजों से चित्त ऊब जाता है। अगर स्वर्ग में भी बिठा दिया जाए आपको, तो ऊब जाएगा। ऐसा मत सोचना कि स्वर्ग में बैठे हुए लोग जम्हाई नहीं लेते, लेते हैं। वहां भी ऊब जाएंगे।

बर्ट्रेंड रसेल ने तो कहीं मजाक में कहा है कि मैं स्वर्ग से बहुत डरता हूं। सबसे बड़ा डर यह है कि इटरनल है स्वर्ग; फिर वहां से लौटना नहीं है। उसने कहा, इससे बहुत डर लगता है। दूसरा, उसने कहा कि वहां सुख ही सुख है,

सुख ही सुख है, तो फिर ऊब नहीं जाएंगे सुख से? मिठास भी उबा देती है, बीच-बीच मे नमकीन की जरूरत पड़ जाती है। सुख भी उबा देता है; बीच-बीच मे दुख की भी जरूरत पड़ जाती है। सब एकरसता मोनोटोनस हो जाती है और उबा देती है। कितना ही सुंदर संगीत हो, बजता रहे, बजता रहे, तो फिर सिर्फ नींद ही ला सकता है, और कुछ नहीं कर सकता।

तो देहाभिमानी भोगी ऊब जाता है, इंद्रियों के सुखों से ऊब जाता है, तो वह इंद्रियो की शत्रुता करने लगता है। वह देहाभिमानी भोगी की जगह देहाभिमानी त्यागी बन जाता है। फिर जिस-जिस इंद्रिय से उसने सुख पाया है, उस-उस इंद्रिय को सताता है। और कहता है, अब इससे विपरीत चलकर सुख पा लेगे। लेकिन मानता है इंद्रिय को ही आधार अब भी।

तो कृष्ण कहते है, ऐसा व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा विषयो को छोड़ सकता है, लेकिन रस से मुक्त नही होता। अब आंख फोड़ डालेगे, तो दिखाई पड़ने वाले आब्जेक्ट से तो मुक्त हो ही जाएंगे। जब दिखाई ही नही पड़ेगा, तो दिखाई पडने वाला विषय तो खो ही जाएगा। जब कान ही न होगे, तो वीणा तो खो ही जाएगी, सुनाई पड़ने वाला विषय तो खो ही जाएगा। लेकिन क्या रस खो जाएगा?

रस, विषय से अलग बात है। विषय बाहर है, रस भीतर है, इंद्रियां बीच मे है। इंद्रियां सेतु है, ब्रिजेज है; रस और विषय के बीच मे बना हुआ सेतु है। रस को ले जाती है विषय तक, विषय को लाती है रस तक। इंद्रियां बीच के द्वार, मार्ग, पैसेज है। इंद्रिय तोड़ दे; तो ठीक है, विषय से रस का संबंध टूट जाएगा। लेकिन रस तो नही टूट जाएगा। रस भीतर निर्मित रह जाएगा-अपनी जगह तड़पता, अपनी जगह कूदता, विषयो की मांग करता, लेकिन विषयो तक पहुंचने मे असमर्थ, इंपोटेंट; क्लीव हो जाएगा रस। पुंसत्व खो देगा, द्वार खो देगा, मार्ग खो देगा, विक्षिप्त हो जाएगा, लेकिन भीतर घूमने लगेगा। अब वह रस भीतर कल्पना के विषय निर्मित करेगा। क्योकि जब वास्तविक विषय नहीं मिलते, जब एक्चुअल आब्जेक्ट्स नही मिलते, तब चित्त कल्पित विषय निर्मित करना शुरू कर देता है।

दिनभर उपवास करके देखें, तो रात सपने में पता चल जाता है, कि दिनभर किया उपवास तो रातभर सपने में भोजन करना पड़ता है। रस भीतर विषय निर्मित करने लगता है। वह कहता है, कोई फिक्र नहीं। बाहर नहीं मिला, भीतर कर लेते हैं।

असल में, रस इतना प्रबल है कि अगर विषय न हों, तो वह काल्पनिक विषयों को निर्मित कर लेता है। सेतु टूट जाए, तो भीतर ही विषय बना लेता है; आटो इरोटिक हो जाता है। दूसरे की जरूरत ही नहीं रह जाती, वह आत्ममैथुन में रत हो जाता है। अपने ही रस को अपना ही विषय बनाकर भीतर ही जीने लगता है। पागल, विक्षिप्त, न्यूरोटिक हो जाता है।

कृष्ण जो कह रहे हैं कि विषय तो टूट जाएंगे, छूट जाएंगे देहाभिमानी त्यागी के, लेकिन रस नहीं छूटेंगे। और असली सवाल विषयों का नहीं है, असली सवाल रसों का है। असली सवाल इसका नहीं है कि बाहर कोई बड़ा मकान है; असली सवाल इसका है कि मेरे भीतर बड़े मकान की चाह है। असली सवाल यह नहीं है कि बाहर सौंदर्य है; असली सवाल यह है कि मेरे भीतर सौंदर्य की मालकियत की आकांक्षा है। असली सवाल यह नहीं है कि बाहर फूल है; असली सवाल यह है कि मेरे हाथ में फूल को तोड़ने की हिंसा है। असली सवाल फूल नहीं है, रहे फूल; अगर मेरे हाथ में तोड़ने की हिंसा नहीं है, तो मैं निकल जाऊंगा फूल के पास से। फूल कभी कहता नहीं कि आओ, तोड़ो। फूल बुलाता नहीं, फूल निमंत्रण नहीं देता, मैं ही जाता हूं।

रस! कीमती क्या है, विषय या रस? अगर विषय कीमती है, तो तपश्चर्या बहुत मैटीरियल होगी, शारीरिक होगी, फिजिकल होगी। और अगर रस, तो फिर तपश्चर्या मनोवैज्ञानिक होगी; फिर तपश्चर्या आंतरिक होगी। और मैंने जैसा कहा कि कृष्ण गहरे मनोवैज्ञानिक हैं, इसलिए साधक के इस मामले में भी वह जो फिजिकल, वह जो भौतिक साधक है, उसकी गहरी व्यंगना और गहरी मजाक कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि उसके विषय छूट जाते हैं, रस नहीं छूटता। और देहाभिमानी कहकर जितनी कड़ी आलोचना हो सकती है, उतनी उन्होंने कर दी है। देहाभिमानी तपस्वी! अब देहाभिमानी और तपस्वी कहते हैं!

नहीं, देह को मानने वाला तपस्वी... । उसको भी तपस्वी कह रहे हैं, क्योंकि तपश्चर्या तो बहुत करता है-व्यर्थ करता है, करता बहुत है। असफल होता है, चेष्टा बहुत करता है। श्रम में कमी नहीं है, दिशा गलत है। रस भीतर रह जाएंगे। और अगर सारे विषय बाहर से छोड़ दिए जाएं और सारे रस भीतर रह जाएं, तो इससे सिर्फ साइकोसिस, विक्षिप्तता पैदा होती है, विमुक्तता पैदा नहीं होती।

समाधिस्थ व्यक्ति के विषय नहीं, रस छूट जाते हैं। और जिस दिन रस छूटते हैं, उस दिन विषय विषय नहीं रह जाते। क्योंकि वे विषय इसीलिए मालूम पड़ते थे कि रस उनको विषय बनाते थे। जिस दिन रस छूट जाते हैं, उस दिन विषय वस्तुएं रह जाते हैं, विषय नहीं-थिंग्स। क्योंकि उनसे अब कोई रस का संबंध नहीं रह जाता।

समाधिस्थ व्यक्ति रसों के विसर्जन में उत्सुक है, विषयों के त्याग में नहीं। त्याग हो जाता है, यह दूसरी बात है। लेकिन असली सवाल आंतरिक रसों के विसर्जन का है। इसलिए यह लक्षण भी वे गिनाते हैं कि समाधिस्थ व्यक्ति रसों से मुक्त हो जाता है, विषयों की उसे जरा भी चिंता नही है।

यह ध्यान में ले लेना जरूरी है, क्योंकि यही कृष्ण के ऊपर बड़े से बड़ा आक्षेप रहा है। क्योंकि कृष्ण को आम्र-कुंजों में नाचते देखकर बड़ी कठिनाई पड़ेगी देहाभिमानी तपस्वी को, कि यह क्या हो रहा है! उसकी पीड़ा का अंत न रहेगा। उसका वश चले तो वह पुलिस में रिपोर्ट लिखाने भागेगा। यह क्या हो रहा है? ये कृष्ण और नाच रहे हैं? कृष्ण को समझ पाना उसे मुश्किल हो जाएगा। उसके खयाल में भी नहीं आ सकता कि किसी व्यक्ति के रस अगर भीतर सिकुड़ गए हों, तो बाहर के विषयों से कोई भी सेतु नहीं बनता। सेतु बनाने वाला ही खो गया है। तब न कोई भागना है, न कोई चाहना है।

इसलिए कृष्ण के जीवन में अदभुत घटनाएं घटती हैं। जिस वृंदावन में वे नाचे हैं, उस वृंदावन को जब छोड़कर चले गए हैं, तो लौटकर भी नहीं देखा है। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो छोड़कर जाना बहुत मुश्किल पड़ता। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो स्मृतियां बड़ी पीड़ा देतीं। वासनाग्रस्त चित्त होता, तो लौट-लौटकर वृंदावन मन को घेरता, सपनों में आता।

नहीं, वृंदावन जैसे था ही नहीं-गया। जैसे पृथ्वी के नक्शे पर अब नहीं है। जिन्होंने वृंदावन में उनके आस-पास नृत्य करके उनको प्रेम किया था, उनकी पीड़ा का अंत नहीं है। वहां रस भी रहा होगा। इसलिए उनका मन तो वृंदावन और द्वारिका के बीच ब्रिज बनाने की चेष्टा में लगा ही है, सेतु बनाना ही चाहता है। लेकिन कृष्ण को? कृष्ण को जैसे कोई बात ही नहीं है, सब समाप्त हो गया। जहां थे, वहां थे। जहां नहीं हैं, वहां नहीं हैं। वृंदावन नहीं है। वह नक्शे से गिर गया। रस न हो भीतर, तो ही यह संभव है। रस भीतर हो, तो यह कतई संभव नहीं है।

खूबी है यह कि जितना रस, वासना से भरा हुआ व्यक्ति हो, उतना विषय के निकट होने पर पीड़ित नहीं होता, जितना दूर होने पर पीड़ित होता है। जिसे हम चाहते हैं, वह पास रहे, तो उसकी याद नहीं आती है। जिसे हम चाहते हैं, वह दूर हो, तभी उसकी याद आती है। जिसे हम चाहते है, वह पास हो, तब तो भूलना बहुत आसान है। जिसे हम चाहते हैं, जब वह पास न हो, तब भूलना बहुत कठिन है।

लेकिन कृष्ण उलटे हैं। जो पास है, उसे वे पूरी तरह याद रखते है। हम, जो पास है, उसे बिलकुल भूल जाते हैं; जो दूर है, उसे पूरी तरह याद रखते है। कृष्ण, जो पास है, उसे पूरी तरह याद रखते हैं। वह उनकी चेतना में पूरा का पूरा है। उसी से तो भ्रम पैदा होता है। उसी से तो प्रत्येक को लगता है कि इतनी अटेंशन मुझे दी, इतना ध्यान मेरी तरफ दिया; फिर मुझे इस तरह भूल गए, तो बड़ी गैर-वफादारी है।

उसे पता नहीं है कि कृष्ण जहां हैं, वहीं उनका पूरा ध्यान है। वे जहां हैं, वहां पूरे हैं; उनकी उपस्थिति पूरी है। पत्थर को भी देखते हैं, तो पूरे ध्यान से देखते हैं। पत्थर भूल में नहीं पड़ता, यह बात दूसरी है। लेकिन आदमी को देख लेते हैं, तो भूल में पड़ जाता है। स्त्री को देख लेते हैं, तो और भी भूल में पड़ जाती है। फिर वह तड़पती है, रोती है, चिल्लाती है। उसे पता नहीं है कि कृष्ण गए, तो गए। वहां भीतर कोई सेतु नहीं बनता, वहां भीतर कोई रस नहीं है।

इस तथ्य को न समझे जाने से कृष्ण के संबंध में भारी भूल हुई है। जिस स्थितधी की वे बात कर रहे हैं, वैसी थिरता चेतना की स्वयं उनमें पूरी तरह फलित हुई है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। ६०।।

और हे अर्जुन, इसलिए यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इंद्रियां बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 61।।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि उन संपूर्ण इंद्रियों को वश मे करके समाहित चित्त हुआ, मेरे परायण स्थित होवे। क्योकि, जिस पुरुष के इंद्रियां वश में होती है, उसकी ही प्रज्ञा स्थिर होती है।

एक चेतावनी कृष्ण देते हैं, वह यह कि इंद्रियां भी व्यक्ति को खींचती है विषयों की ओर। इस बात को थोड़ा गहरे मे समझना आवश्यक है। इंद्रियां भी व्यक्ति को खींचती है विषयो की ओर। साधक को भी इंद्रियां गिरा देती है।

इंद्रियां कैसे गिगएंगी ? क्या इंद्रियों के पास अपनी कोई व्यक्ति की आत्मा से अलग शक्ति है ? क्या इंद्रियों के पास अपनी कोई अलग ऊर्जा है ? क्या इंद्रियां इतनी बलवान है स्वतंत्र रूप से कि व्यक्ति की आत्मा को गिराएंगी ?

नहीं, इस कारण नहीं। इंद्रियों के पास कोई भी शक्ति नहीं है। इंद्रियां व्यक्ति से स्वतंत्र अस्तित्ववान भी नहीं है। लेकिन फिर भी इंद्रियां गिरा सकती है, गिराने का कारण बहुत दूसरा है।

वह दूसरा यह है कि इंद्रियां मैकेनिकल हैबिट्स है, यांत्रिक आदतें है। और आपने जन्मों-जन्मों में जिस इंद्रिय की जो आदत बनाई है, जो कंडीशनिंग की है उसकी, जब आप बदलते है तो उसे कुछ भी पता नहीं होता कि आप बदल

गए हैं। वह अपनी पुरानी आदत को दोहराए चली जाती है। इंद्रियां यंत्र हैं, उन्हें कुछ पता नहीं होता।

आपने एक ग्रामोफोन पर रिकार्ड चढ़ा दिया। रिकार्ड गाए चला जा रहा है। आधा गीत हो गया, अब आपका मन बिलकुल सुनने को नहीं है, लेकिन रिकार्ड गाए चला जा रहा है। अब रिकार्ड को कोई भी पता नहीं है कि अब आपका मन सुनने का नहीं है। रिकार्ड को पता हो भी नहीं सकता। रिकार्ड तो सिर्फ यंत्र की तरह चल रहा है। लेकिन उठकर आप रिकार्ड को बंद कर देते है, क्योंकि रिकार्ड को कभी आपने अपना हिस्सा नहीं समझा।

इंद्रियों के यंत्र के साथ एक दूसरी आइडेंटिटी है कि आप इंद्रियों को अपना ही समझते हैं। इसलिए इंद्रियां जब चलती चली जाती हैं, तो अपना ही समझने के कारण आप भी उनके पीछे चल पड़ते है। आप उनको यंत्र की तरह बंद नहीं कर पाते।

अब एक आदमी है; उसे सिगरेट पीने की यांत्रिक आदत पड़ गई है, या शराब पीने की। कसम खाता है, नहीं पीऊंगा। निर्णय करता है, नहीं पीऊंगा। लेकिन उसकी इंद्रियों को कोई पता नहीं; उनके पास बिल्ट-इन-प्रोसेस हो गई है। तीस साल से वह पी रहा है, चालीस साल से वह पी रहा है। इंद्रियों का एक नियमित ढांचा हो गया है कि हर आधे घंटे में सिगरेट चाहिए। हर आधे घंटे पर यंत्र की घंटी बज जाती है; सिगरेट लाओ। तो आदमी कहता है, तलब! तलब लग गई है। तलब वगैरह क्या लगेगी! वह कहता है, सिगरेट पुकारती है। सिगरेट क्या पुकारेगी!

नहीं, चालीस-पचास वर्ष का यांत्रिक जाल है इंद्रियों का। हर आधे घंटे पर सिगरेट मिलती रही है, इंद्रियों के पास व्यवस्था हो गई है। उनके पास बिल्ट-इन-प्रोग्रेम है। उनके पास चौबीस घंटे की योजना है कि जब आधा घंटा हो जाए, तब आपको खबर कर दें कि अब सिगरेट चाहिए। पूरा शरीर! और इंद्रियों के साथ पूरा शरीर है।

तो जब सिगरेट चाहिए, तब शरीर के अनेक अंगों से यह खबर आएगी कि

सिगरेट चाहिए। होंठ कुछ पकड़ने को आतुर हो जाएंगे, फेफड़े कुछ खींचने को आतुर हो जाएंगे, खून निकोटिन लेने के लिए प्यासा हो जाएगा, नाक कुछ छोड़ने को आतुर हो जाएगी। मन किसी चीज में व्यस्त होने को आतुर हो जाएगा। यह इकहरी घटना नहीं है, कांप्लेक्स है, इसमें पूरा शरीर संयुक्त है। और पूरा शरीर इंतजार करने लगेगा कि लाओ। सब तरफ से दबाव पड़ने लगेगा कि लाओ।

चालीस-पचास साल का दबाव है। और आपने जो निर्णय लिया है सिगरेट न पीने का, वह सिर्फ चेतन मन से लिया है। और यह दबाव चालीस साल का अचेतन मन के गहरे कोनों तक पहुंच गया है। इसकी बड़ी ताकत है। और मन जल्दी बदलने को राजी नहीं होता, क्योंकि अगर मन जल्दी बदलने को राजी हो, पूरा मन, तो आदमी जिंदा नहीं रह सकता। इसलिए मन को बहुत आर्थोडाक्सी दिखलानी पड़ती है। मन को पूरी कोशिश करनी पड़ती है कि जो चीज चालीस साल सीखी है, वह एक सेकेंड में छोड़ोगे। तब तो जिंदगी बहुत मुश्किल में पड़ जाए।

एक आदमी चालीस साल एक स्त्री को प्रेम करता रहा, जरा-सा गुस्सा आता है, कहता है, छोड़ देंगे! लेकिन कोई छोड़ता-वोड़ता नहीं, क्योंकि वह चालीस साल जो पकड़ा है, उसका वजन ज्यादा है। और अगर ऐसा छोड़ना होने लगे, तो जिंदगी एकदम अस्तव्यस्त हो जाए। इसलिए मन कहता है, जिसको चालीस साल पकड़ा है, कम से कम चालीस साल छोड़ो।

फिर मन के भी संकल्प के क्षण हैं और संकल्पहीनता के क्षण हैं। मन कभी एक ही स्थिति में नहीं होता। कभी वह संकल्प के शिखर पर होता है, तब ऐसा लगता है कि दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। कभी वह विषाद के गड्ढे में होता है, तब ऐसा लगता है, कोई जरा-सा धक्का दे जाएगा तो मर जाऊंगा।

तो जब वह संकल्प के शिखर पर होता है, तब वह कहता है, ठीक है, छोड़ देंगे। घंटेभर बाद जब विषाद में उतर जाता है, वह कहता है, क्या छोड़ना है! कैसे छोड़ सकते हैं! नहीं छूट सकती है, अपने वश की बात नहीं है। इस जन्म में नहीं हो सकता है। यह कहता जाता है भीतर, हाथ तब तक सिगरेट को खोल लेते हैं, हाथ तब तक मुंह में लगा देते हैं, दूसरा हाथ माचिस जला देता है। जब

तक वह भीतर यह सोच ही रहा है, नहीं हो सकता, तब तक शरीर पीना ही शुरू कर देता है। तब वह जागकर देखता है, क्या हो गया यह ? यह तो फिर सिगरेट पी ली ? नहीं, यह नहीं हो सकता है! तब निर्णय पक्का हो जाता है कि यह हो ही नहीं सकता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि इंद्रियां खींच-खींचकर गिरा देती हैं साधक को।

इंद्रियां क्या गिराएंगी! साधक का ही अतीत में इंद्रियों को दिया गया बल, साधक का ही इंद्रियों को दिया गया अभ्यास, साधक की ही इंद्रियों को दी गई कंडीशनिंग, संस्कार...।

और संस्कार बड़ी प्रबल चीज है। हम सब संस्कार से जीते है। हम चेतना से नहीं जीते, हम जीते संस्कार से हैं। संस्कार बड़ी प्रबल चीज है। इतनी प्रबल चीज है कि जब संस्कार की सारी स्थिति भी चली जाती है, अकेला संस्कार रह जाता है, तो अकेला संस्कार भी काम करता रहता है।

मैंने सुना है, विलियम जेम्स एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक अमेरिका में हुआ। वह संस्कार पर बड़ा काम कर रहा था। असल में जो मनोविज्ञान संस्कार पर काम नहीं करता, वह मनोविज्ञान बन ही नहीं सकता। क्योंकि बहुत गहरी पकड़ तो मनुष्य की कंडीशनिंग की है। सारी पकड़ तो वहां है, जहां आदमी जकड़ा हुआ है; जहां अवश, हेल्पलेस हो जाता है। तो वह कंडीशनिंग पर काम कर रहा है। वह एक दिन होटल में बैठा हुआ है, एक मित्र से बात कर रहा है। और उसने कहा कि इतना अजीब जाल है संस्कार का मनुष्य का कि जिसका कोई हिसाब नहीं है।

तभी उसने देखा कि सामने पहले महायुद्ध का रिटायर हुआ मिलिट्री का एक कैप्टन चला जा रहा है। अंडों की एक टोकरी लिए हुए है। उसे सूझा कि ठीक उदाहरण है। विलियम जेम्स ने होटल के भीतर से चिल्लाकर जोर से कहा, अटेंशन। वह मिलिट्री का आदमी अंडे छोड़कर अटेंशन खड़ा हो गया। सारे अंडे जमीन पर गिर पड़े। रिटायर हुए भी वर्षों हो गए उसे। लेकिन अटेंशन ने बिलकुल बंदूक के ट्रिगर की तरह काम किया। गोली चल गई।

वह आदमी बहुत नाराज हुआ कि तुम किस तरह के आदमी हो, यह कोई मजाक है? सारे अंडे फूट गए! लेकिन विलियम जेम्स ने कहा, तुमसे किसने कहा कि तुम अटेंशन हो जाओ। हमें अटेंशन कहने का हक है। तुमसे ही कहा, यह तुमने कैसे समझा? और तुमसे भी कहा, तो तुम्हें होने की मजबूरी किसने कही कि तुम हो जाओ! उस आदमी ने कहा, यह सवाल कहां है, यह कोई सोचने की बात है! ये पैर वर्षों तक अटेंशन सुने हैं और अटेंशन हुए हैं। इसमें कोई गैप ही नहीं है बीच में। उधर अटेंशन, इधर अटेंशन घटित होता है।

करीब-करीब, वह जो कृष्ण कह रहे हैं, वह एक बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है, कि आदमी की इंद्रियां, उसकी कंडीशनिंग- और एक जन्म की नहीं, अनेक जन्मों की। हमने वही-वही, वही-वही किया है। हम वही-वही करते रहे हैं। हम उसी जाल में घूमते रहे हैं। हम रोज एनफोर्समेंट कर रहे हैं। हमने जो किया है, उसको हम रोज बल दे रहे हैं। और फिर जब हम निर्णय लेते हैं कभी, तो हम इसका कोई खयाल ही नहीं करते कि जिन इंद्रियों के खिलाफ हम निर्णय ले रहे हैं, उनका बल कितना है! उसकी कोई तौल नहीं करते कभी। बिना तौले निर्णय ले लेते हैं। फिर पराजय के सिवाय हाथ में कुछ भी नहीं लगता।

तो जो साधक सीधा इंद्रियों को बदलने में लग जाएगा और जल्दी निर्णय लेगा, वह खतरे में पड़ेगा ही। इंद्रियां उसे रोज-रोज पटकेंगी। उसकी ही इंद्रियां। मजा तो यही है, किसी और की हों, तो भी कोई बात है। अपनी ही इंद्रियां! लेकिन फिर क्या रास्ता है? क्योंकि कंडीशनिंग तो बहुत पुरानी है। संस्कार बहुत पुराने हैं, जन्मों-जन्मों के हैं। अनंत जन्मों के हैं। सब इतना सख्ती से मजबूत हो गया है कि जैसे एक लोहे की जैकेट हमारे चारों तरफ कसी हो, जिसमें से हिलना-डुलना भी संभव नहीं है। लोहा है चारों तरफ आदतों का। कैसे होगा?

तब तक न होगा, जब तक हम इंद्रियों को बिलकुल ध्यान में ही न लें और निर्णय अलग किए चले जाएं, उनका ध्यान ही न लें। इसकी फिक्र ही न करें कि चालीस साल मैंने सिगरेट पी, और निर्णय ले लें एक क्षण में कि अब सिगरेट नहीं पीऊंगा, तो कभी नहीं होगा। एक क्षण के निर्णय चालीस साल की आदतों

के मुकाबले नहीं टिकने वाले। क्षण का निर्णय क्षणिक है। टूट जाएगा। इंद्रियां पटक देंगी वापस उसी जगह। फिर क्या करना होगा?

असल में जिन इंद्रियों के साथ हमने जो किया है, उनको अनकंडीशंड करना होता है। उनको संस्कारमुक्त करना होता है। जिनकी हमने कंडीशनिंग की है, जब उनको संस्कारित किया है, तो उनको गैर-संस्कारित करना होता है। और गैर-संस्कारित इंद्रियां सहयोगी हो जाती हैं। क्योंकि इंद्रियों को कोई मतलब नहीं है कि आप सिगरेट पीओ, कि शराब पीओ। कोई मतलब नहीं है। सिगरेट पीने जैसी दूसरी अच्छी चीजें भी इंद्रियां वैसे ही पकड़ लेती हैं।

एक आदमी रोज भजन करता है, प्रार्थना करता है सुबह। एक दिन नहीं करता है, तो दिनभर तकलीफ मालूम पड़ती है। इससे यह मत समझ लेना आप कि यह तकलीफ कुछ इसलिए मालूम पड़ रही है कि प्रार्थना में उनको बड़ा आनंद मिल रहा था। क्योंकि जिसको प्रार्थना में आनंद मिल गया, उसके तो चौबीस घंटे आनंद से भर जाते हैं। जिसको एक बार भी प्रार्थना में आनंद मिल गया, उसकी तो बात ही और है।

लेकिन आमतौर से तो प्रार्थना न करने से दुख मिलता है, करने से आनंद नहीं मिलता। यह बड़े मजे की बात है, न करने से दुख मिलता है। वह दुख हैबिचुअल है, वह वैसा ही है जैसा सिगरेट का। उसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। रोज करते हैं, रोज आदतें कहती हैं, करो। नहीं किया, तो जगह खाली छूट जाती है। दिनभर वह खाली जगह भीतर ठक-ठक करती रहती है कि आज प्रार्थना नहीं की! फिर काम किया-आज प्रार्थना नहीं की! अब बड़ी मुश्किल हो गई। सिगरेट भी हो तो अभी जला लो और पी लो। अब सुबह तो कल आएगी।

अनकंडीशनिंग! जैसे-जैसे बांधा है, वैसे-वैसे खोलना भी पड़ता है। जैसे-जैसे आदत बनाई है, वैसे-वैसे आदत बिखरानी भी पड़ती है। इंद्रियों को निर्मित किया है, उनको अनिर्मित भी करना होता है।

इस अनिर्मित करने के लिए कृष्ण एक बहुत अदभुत सुझाव देते हैं। वे इस सूत्र में कहते हैं कि जो ज्ञानी पुरुष है, वह सारा बोझ अपने ही ऊपर नहीं ले लेता।

असल में ज्ञानी पुरुष, ठीक से समझो, तो बोझ अपने ऊपर लेता ही नहीं। वह बोझ बहुत कुछ तो परमात्मा पर छोड़ देता है। सच तो यह है कि वह पूरा ही बोझ परमात्मा पर छोड़ देता है। और जो पुरानी आदते हमला करती है, उनको वह पिछले कर्मो का फल मानकर साक्षीभाव से झेलता है। उनसे कोई दुख भी नहीं लेता। कहता है कि ठीक। कल मैने किया था, इसलिए ऐसा हुआ।

बुद्ध एक गांव से निकलते। कुछ लोग गाली देते। वे हंसकर आगे बढ़ जाते। फिर कोई भिक्षु उनसे पूछता, उन्होंने गाली दी, आपने उत्तर नहीं दिए? बुद्ध कहते, कभी मैने उनको गाली दी होंगी, वे उत्तर दे गए हैं। अब और आगे का सिलसिला क्या जारी रखना! जरूर मैने उन्हें कभी गाली दी होंगी, नही तो वे क्यो कष्ट करते? अकारण तो कुछ भी घटित नहीं होता है। कभी मैने गाली दी होंगी, उत्तर बाकी रह गया था, अब वे उत्तर दे गए है। अब मैं उनको फिर गाली दूं, फिर आगे का सिलसिला होता है। सौदा पट गया। लेन-देन हो गया। अब मै खुश हूं। अब आगे उनसे कुछ लेना-देना न रहा। अब मै आगे चलता हूं।

कृष्ण कहते है, ऐसा व्यक्ति, जो हमले होते है, उन हमलो को अतीत कर्मो की शृंखला मानता है। और उनको साक्षीभाव से और शांतभाव से झेल लेता है। और जो संघर्ष है, समाधिस्थ होने की जो यात्रा है, उसमें वह परमात्मा को, प्रभु को, जीवन-तत्व को, जीवन-ऊर्जा को सहयोगी बनाता है। वह इतना नही कहता कि मै ही लड़ लूंगा, मै ही कर लूंगा।

कभी इस तत्व को थोड़ा-सा समझ ले और प्रयोग करके देखें। सिगरेट मै पीता हूं, तो मै सोचता हूं, मै ही सिगरेट छोडूंगा। लेकिन मेरा सिगरेट पीने वाला पचास साल पुराना है और मेरा सिगरेट छोड़ने वाला मै एक क्षण का है। तो मेरा सिगरेट छोड़ने वाला मैं हार जाएगा। लेकिन मै कहता हूं, सिगरेट पीने वाला पचास साल पुराना है, इंद्रियों की आदत मजबूत है, हमला बार-बार होगा; आज का एक क्षण का मैं तो बहुत कमजोर हूं-मै परमात्मा पर छोड़ता हूं, तू ही मुझे सिगरेट पीना छुड़ा दे।

यह भी अहंकार नहीं लेता हूं कि मैं छोडूंगा। क्योंकि जो यह अहंकार लेगा

कि मैं छोडूंगा, तो वह अहंकार कहां जाएगा जिसने पचास साल कहा है कि मैं पीता हूं। उस अहंकार के मुकाबले यह छोड़ने वाला अहंकार छोटा पड़ेगा और हारेगा। इस छोड़ने वाले अहंकार को परमात्मा के चरणों में रखना जरूरी है। इसे कह देना जरूरी है कि तू सम्हाल। सिगरेट मैंने पी, अब छोड़ना चाहता हूं। लेकिन अकेला बहुत कमजोर हूं। तू साथ देना। जब मैं सिगरेट पीऊं, तब तू साथ देना।

और जब सिगरेट पीने का वापस जोर आए, तब यह मत सोचना कि अब क्या करूं और क्या न करूं! तब बजाय सिगरेट के पक्ष-विपक्ष में सोचने के परमात्मा के समर्पण की तरफ ध्यान देना। ध्यान देना कि अब वह सिगरेट फिर पुकार रही है, अब तू सम्हाल! और जैसे ही परमात्मा का स्मरण और समर्पण का स्मरण, जैसे ही विराट के प्रति समर्पण का स्मरण, कि ऊर्जा इतनी हो जाती है, अनंत की ऊर्जा हो जाती है, कि पचास साल क्या पचास जन्मों की आदत भी कमजोर हो जाती है। टूट जाती है।

एक छोटी-सी घटना, उससे आपको स्मरण आ जाए। कोई उन्नीस सौ दस में एक वैज्ञानिकों का अन्वेषक-मंडल उत्तरी ध्रुव पर यात्रा पर गया। उत्तरी ध्रुव में तीन महीने तक वे लोग फंस गए बर्फ में और लौट न सके। भोजन चुक गया। बड़ी मुश्किल थी, बड़ी कठिनाई थी।

लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई तब हुई, जब सिगरेट चुक गई। लोग कम रोटी लेने को राजी थे, लेकिन कम सिगरेट लेने को राजी नहीं थे। लोग कम पानी पीने को राजी थे, लेकिन कम सिगरेट लेने को राजी नहीं थे। लेकिन कोई उपाय न था। नावें फंसी थीं बर्फ में। और तीन महीने से पहले निकलने की संभावना न थी। और तीन महीने सब चलाना था। नहीं माने। तो भोजन तो किसी तरह चला थोड़ा-थोड़ा देकर, लेकिन सिगरेट सबसे पहले चुक गई। क्योंकि कोई सिगरेट कम करने को राजी न था।

फिर एक बड़ा खतरा आया। और वह खतरा यह आया कि लोगों ने नावों की रस्सियां काट-काटकर सिगरेट बनाकर पीना शुरू कर दिया। तब तो जो जहाज का कप्तान था, उसने कहा कि तुम क्या कर रहे हो यह? अगर नावों की रस्सियां कट गईं, तो फिर तीन महीने के बाद भी छुटकारा नहीं है। क्योंकि फिर

ये नावें चलेंगी कैसे? पर लोगों ने कहा कि तीन महीना! तीन महीने के बाद छुटकारा होगा कि नहीं होगा, यह कुछ भी पक्का नहीं है। सिगरेट अभी चाहिए। और हम बिना सिगरेट के तीन महीने बचेंगे, यह कहां पक्का है? और तीन महीने तड़पना और रस्सियां बंधी हैं पास में जिनको पीया जा सकता है। सिगरेट तो नहीं होतीं, लेकिन फिर भी धुआं तो निकाला ही जा सकता है। तो नहीं, असंभव है। बहुत समझाया, तो रात चोरी से रस्सियां कटने लगीं।

फिर जब वह नाव लौटी, तो उसके कप्तान ने जो वक्तव्य दिया, उसने कहा कि सबसे कठिन कठिनाई जो तीन महीने में आई, वह यह थी कि लोग सिगरेट की जगह रस्सियां पी गए, कपड़े जलाकर पी गए, किताबें जलाकर पी गए। जो भी मिला, उसको पीते चले गए।

एक आदमी अखबार में पढ़ रहा था। एक स्टुअर्ट पैरी नाम का आदमी अखबार में यह पढ़ रहा था। पढ़कर उसे खयाल आया- वह भी चेन स्मोकर था, जब पढ़ रहा था, तब सिगरेट पी ही रहा था-उसे खयाल आया कि मेरी भी यही हालत होती क्या? क्या मै भी रस्सी पी जाता? उसने कहा कि नहीं, मै कैसे रस्सी पी सकता था? आप भी कहेंगे कि मैं कैसे रस्सी पी सकता था? पर उसने कहा कि वहां भी तीस-चालीस लोग थे, कोई हिम्मत न जुटा पाया, सबने पी! क्या मै भी पी जाता!

उसकी आधी जली हुई सिगरेट थी। उसने ऐश-ट्रे पर नीचे रख दी और उसने कहा कि परमात्मा, अब तू सम्हाल। अब यह सिगरेट आधी रखी है नीचे। और अब मैं इसे उसी दिन उठाऊंगा, जिस दिन मेरा तुझ पर भरोसा खो जाए। और जब मैं इसे उठाने लगूं, तो मेरी तो कोई ताकत नहीं है, क्योंकि मैं अपने कों अच्छी तरह जानता हूं, कि मैं तो एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट जलाता हूं। मैं अपने को भलीभांति जानता हूं, जैसा मै आज तक रहा हूं, मैं भलीभांति जानता हूं कि यह सिगरेट नीचे नहीं रह सकती, मैं इसे उठा ही लूंगा। मैं अपनी कमजोरी से परिचित हूं। मेरे भीतर मुझे कोई सुरक्षा का उपाय नहीं है। मेरे भीतर मेरे परिचय में मेरे पास कोई संकल्प नहीं है जो मैं सिगरेट से बच सकूं। लेकिन मेरे मन को पीड़ा भी बहुत है। और मैं यह भी नहीं सोच पा सकता कि इतना कमजोर, इतना

दीन हूं कि सिगरेट भी नहीं छोड़ सकूंगा, तो फिर मैं और क्या छोड़ सकता हूं। मैं तेरे ऊपर छोड़ता हूं। अब तू ही खयाल रखना। जब तू ही साथ छोड़ देगा, तो ही सिगरेट उठाऊंगा। हां! उठाने के पहले एक दफे तेरी तरफ आंख उठा लूंगा!

फिर तीस साल बीत गए। उस आदमी ने उन्नीस सौ चालीस में वक्तव्य दिया है कि तीस साल बीत गए-सिगरेट आधी वहीं रखी है। जब भी उठाने का स्टुअर्ट पैरी का मन होता है, तभी ऊपर की तरफ देखता हूं कि क्या इरादे हैं? सिगरेट वहां रह जाती है, पैरी यहां रह जाते हैं। तीस साल हो गए, अभी उठाई नहीं। और अब तीस साल काफी वक्त है, स्टुअर्ट पैरी ने कहा, अब मै कह सकता हूं कि जो भरोसा, जो ट्रस्ट मैंने परमात्मा पर किया था, वह पूरा हुआ है।

तो कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि स्थितप्रज्ञ छोड़ देता है। उस गहरी साधना में लगा व्यक्ति, संयम की उस यात्रा पर निकला व्यक्ति अपने पर ही भरोसा नहीं रख लेता, वह परम तत्व पर भी छोड़ देता है, समर्पण कर देता है। वह समर्पण ही असंयम के क्षणों में, कमजोरी के क्षणों में सहारा बनता है। वह हेल्पलेसनेस ही, वह निरुपाय दशा ही-यह जान लेना कि मैं कमजोर हूं-बड़ी शक्ति सिद्ध होती है। और यह मानते रहना कि मै बड़ा शक्तिशाली हूं, बड़ी कमजोरी सिद्ध होती है।

इंद्रियां गिरा देती हैं उस संयमी को, जो अहंकारी भी है। इंद्रियां नहीं गिरा पातीं उस संयमी को, जो अहंकारी नहीं है, विनम्र है। जो अपनी कमजोरियों को स्वीकार करता है। जो उनको दबाता नहीं, जो उनको झुठलाता नहीं, लेकिन जो परमात्मा के हाथों में उनको भी समर्पित कर देता है। ऐसा संयमी व्यक्ति धीरे-धीरे रसों से, इंद्रियों के दबाव से, अतीत के किए गए संस्कारों के प्रभाव से, आदतों से, यांत्रिकता से-सभी से मुक्त हो जाता है। और तभी स्थितप्रज्ञ की स्थिति मे आगमन शुरू होता है। तभी वह स्वयं में थिर हो पाता है।

आज इतना ही। शेष कल सुबह।

•••

सत्रहवां प्रवचन

मन के अधोगमन और ऊर्ध्वगमन की सीढ़ियां

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 62।।

विषयो को चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है। और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 63।।

क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। और मोह से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है। और स्मरणशक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

मनुष्य के मन की भी अपनी शृंखलाएं है। मनुष्य के मन के भी ऊर्ध्वगमन और अधोगमन के नियम हैं। मनुष्य के मन का अपना विज्ञान है। यहां मनुष्य के

मन का अधोगमन कैसे होता है, कैसे वह पतन के मार्ग पर एक-एक सीढ़ी उतरता है, कृष्ण उन सीढ़ियों का पूरा ब्योरा दे रहे है।

सूक्ष्मतम होता है प्रारंभ, स्थूलतम हो जाता है अंत। मन के बहुत गहरे में उठती है लहर, फैलती है, और पूरे मन को ही नहीं, पूरे आचरण को, पूरे व्यक्तित्व को ग्रसित कर लेती है। सूक्ष्म उठी इस लहर को इसके स्थूल तक पहुंचने की जो पूरी प्रक्रिया है, जो उसे पहचान लेता है, वह उससे बच भी सकता है, वह उसके पार भी जा सकता है।

कहां से मन का पतन शुरू होता है? कहां से मन संसार-उन्मुख होता है? कहां से मन स्वयं को खोना शुरू करता है?

तो कृष्ण ने कहा है कि विषय के चितन से, वासना के विचार से। जो पहला वर्तुल, जहां से पकड़ा जा सकता है, वह है विचार का वर्तुल-सूक्ष्मतम, जहां से हम पकड़ सकते हैं। विषय की इच्छा, विषय का विचार, भोग की कामना उठती है मन में। विषय का संग करने की आकांक्षा जगती है मन में। वह पहली लहर है, जहां से सब शुरू होता है। काम की जो बीज-स्थिति है, वह विषय का विचार है। संग की कामना पैदा होती है, भोग की कामना पैदा होती है।

राह पर देखते हैं भागती एक कार को। चमकती हुई, आंखों में कौधकर निकल जाती है। देखते हैं एक सुंदर स्त्री को; देखते है एक सुंदर बलिष्ठ पुरुष को; आंख में एक कौध-और व्यक्ति निकल जाता है। वह जो सुंदर स्त्री या सुंदर पुरुष या सुंदर कार या सुंदर भवन दिखाई पड़ा है-तत्क्षण भीतर खोजने की जरूरत है-जैसे ही वह दिखाई पड़ा है, क्या आपको सिर्फ दिखाई ही पड़ा है, सिर्फ आपने देखा ही, या देखने के साथ ही मन के किसी कोने में चाह ने भी जन्म लिया! सिर्फ देखा ही या चाहा भी! दिखाई पड़ी है एक सुंदर स्त्री, देखी ही या भीतर कोई और भी कंपन उठा-चाह का भी, मांग का भी, पा लेने का भी, पजेस करने का भी।

अगर सिर्फ देखा, तो बात आई और गई हो गई। सिर्फ बहिर-इंद्रियों ने भाग लिया। आंख ने देखा, मन ने खबर की, कोई जाता है। लेकिन चाहा भी, तो जो देखा,

वहीं बात समाप्त नहीं हो गई। मन में वर्तुल शुरू हो गए, मन में लहरें शुरू हो गईं। देखने तक बात समाप्त नहीं हुई; भीतर चाह ने भी जन्म लिया, मांग भी उठी।

आप कहेंगे, नहीं, मांगा नहीं, चाहा नहीं; देखा, सिर्फ इतना हुआ मन में कि सुंदर है। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।

इतना भी मन में उठा कि सुंदर है, तो चाह ने अपने अंकुर फैलाने शुरू कर दिए। क्योंकि सुंदर का कोई और मतलब नहीं होता। सुंदर का इतना ही मतलब होता है, जिसे चाहा जा सकता है। सुंदर का और कोई मतलब नहीं होता। असुंदर का इतना ही मतलब होता है, जिसे नहीं चाहा जा सकता।

सुंदर है, इस वक्तव्य में चाह कहीं दिखाई नहीं पड़ती, यह वक्तव्य बड़ा निर्दोष मालूम पड़ता है। यह वक्तव्य सिर्फ स्टेटमेंट आफ फैक्ट मालूम पड़ता है। नहीं, लेकिन यह सिर्फ तथ्य का वक्तव्य नहीं है। इसमें आप संयुक्त हो गए। क्योंकि चीजें अपने आप में न सुंदर है, न असुंदर है; चीजें सिर्फ है। आपने व्याख्या डाल दी।

एक स्त्री निकली है राह से; वह सिर्फ है। सुंदर और असुंदर देखने वाले की व्याख्या है। सुंदर-असुंदर उसमे कुछ भी नही है। व्याख्याएं बदलती है, तो सौदर्य बदल जाते हैं। चीन में चपटी नाक सुंदर हो सकती है, भारत मे नहीं हो सकती। चीन में उठे हुए गाल की हड्डियां सुंदर है, भारत में नहीं हैं। अफ्रीका में चौड़े ओंठ सुंदर है और स्त्रियां पत्थर लटकाकर अपने ओंठों को चौड़ा करती हैं। सारी दुनिया में कहीं चौड़े ओंठ सुंदर नहीं है, पतले ओठ सुंदर हैं। वे हमारी व्याख्याएं हैं, वे हमारी सांस्कृतिक व्याख्याएं है। एक समाज ने क्या व्याख्या पकड़ी है, इस पर निर्भर करता है। फिर फैशन बदल जाते है, सौंदर्य बदल जाता है। तथ्य वही के वही रहते हैं।

अफ्रीका में जो स्त्री पागल कर सकती है पुरुषों को, वही भारत में सिर्फ पागलों को आकर्षित कर सकती है। क्या हो गया! स्त्री वही है, तथ्य वही है, लेकिन व्याख्या करने वाले दूसरे हैं। जब हम कहते हैं, सुंदर है, तभी हम सम्मिलित हो गए, तभी तथ्य नहीं रहा।

बुद्ध एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। रात है पूर्णिमा की। गांव से कुछ मनचले युवक एक वेश्या को लेकर पूर्णिमा की रात मनाने आ गए हैं। उन्होंने वेश्या को नग्न कर लिया है, उसके वस्त्र छीन लिए हैं। वे सब शराब में मदहोश हो गए हैं, वे सब नाच-कूद रहे हैं। उनको बेहोश हुआ देखकर वेश्या भाग निकली।

थोड़ा होश आया, तो देखा, जिसके लिए नाचते थे, वह बीच में नहीं है। खोजने निकले। जंगल है, किससे पूछें? आधी रात है। फिर उस वृक्ष के पास आए, जहां बुद्ध बैठे है। तो उन्होने कहा, यह भिक्षु यहां बैठा है, यही तो रास्ता है एक जाने का। अभी तक कोई दोराहा भी नहीं आया। वह स्त्री जरूर यहीं से गुजरी होगी। तो उन्होंने बुद्ध को कहा कि सुनो भिक्षु, यहां से कोई एक नग्न सुंदर युवती भागती हुई निकली है? देखी है?

बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर, लेकिन युवती थी या युवक, कहना मुश्किल है। क्योंकि व्याख्या करने की मेरी कोई इच्छा नहीं। कोई निकला है जरूर, सुंदर था या असुंदर, कहना मुश्किल है। क्योंकि जब अपनी चाह न रही, तो किसे सुंदर कहें, किसे असुंदर कहें!

सौंदर्य चुनाव है, सौंदर्य निर्णय है। असल में जैसे ही सुंदर कहा, मन के किसी कोने पर बनना शुरू हो गया भाव-कि मिले। सौंदर्य पसंदगी की शुरुआत है। वह वक्तव्य सिर्फ तथ्य का नहीं, वह वक्तव्य वासना का है। वासना छा गई है तथ्य पर; वह कहती है, सुंदर है।

हम साधारणतया कहेंगे कि नहीं, सुंदर कहने से कोई मतलब नहीं होता। सुंदर है। जब पहला मन का विषयों में गमन शुरू होता है, तो अति सूक्ष्म है। वह ऐसे ही शुरू होता है : सुंदर है, असुंदर है; प्रीतिकर है, अप्रीतिकर है; अच्छा लगता है, बुरा लगता है। चाह जब पैदा होती है पहले, तो पसंद और नापसंद के रूप में झलकती है, फिर बढ़ती है। अभी बीज है, अभी पहचानना बहुत मुश्किल है। अभी कोई कृष्ण, कोई बुद्ध पहचान सकेगा। हम तो तब पहचानेंगे, जब वृक्ष हो जाएगा।

लेकिन बीज से मुक्त हुआ जा सकता है, वृक्ष से मुक्त होना अति कठिन है। जितनी बढ़ जाएगी वासना भीतर गहरी और प्रगाढ़ और जड़ों को फैला देगी,

उतना ही उससे छूटना कठिन होता जाएगा। जब अभी वासना सिर्फ बीज है, जब उसमें कोई जड़ें नहीं हैं अभी, अभी जब उसने चित्त की भूमि में कहीं जड़ों को फैलाकर भूमि को पकड़कर कस नहीं लिया है, तब तक बहुत आसान है। बीज फेंके जा सकते हैं, वृक्षों को काटना और उखाड़ना पड़ता है।

और मजा यह है कि वृक्ष काटने से भी कटते हों, ऐसा नहीं है। अक्सर तो काटने से सिर्फ कलम होती है। एक शाखा कटती है और चार शाखाएं निकल आती हैं। जड़ों तक काट डालने से भी जड़ें नए अंकुर और नई कोंपलें छोड़ जाती हैं और एक वृक्ष के अनेक वृक्ष भी हो जाते हैं। और जड़ों को उखाड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि जड़ें मनुष्य के मन के अचेतन गर्भों में फैल जाती हैं। उन तक पहुंचना भी मुश्किल हो जाता है।

इसलिए कृष्ण का यह सूत्र साधक के लिए बहुत समझ लेने जैसा है। इस पर पूरा ही, मन के रूपांतरण की पूरी काजेलिटी, पूरा कारण, उसका राज छिपा है।

तथ्य तभी तक तथ्य है, जब तक आपने व्याख्या नहीं की है। बुद्ध ने कहा, निकला कोई जरूर। यह व्याख्या नहीं है, निकला है कोई। युवक था कि युवती, कहना कठिन है। क्योंकि-बुद्ध ने कहा-जब तक मेरे भीतर पुरुष बहुत लालायित था, तब तक बाहर खोज चलती थी, कौन स्त्री, कौन पुरुष!

स्त्री और पुरुष भी, तथ्य होते हुए भी, हमारी व्याख्या के कारण ही वह तथ्य दिखाई पड़ता है। अब यह बड़े मजे की बात है। हम जिंदगी में सब भूल जाते हैं। एक आदमी मुझे आज मिले। मैं भूल जाता हूं कि उसका नाम क्या है दस साल बाद; भूल जाता हूं, जाति क्या है, धर्म क्या है, चेहरा कैसा था, आंखें कैसी थीं, कितना पढ़ा-लिखा था-सब भूल जाता हूं। एक बात नहीं भूल पाता कि स्त्री था कि पुरुष था।

यह बड़े मजे की बात है। कभी आप भूले हैं किसी के बाबत कि मुझे पक्का याद नहीं आता कि वह जो मिला था, स्त्री थी या पुरुष था? सब भूल जाते हैं-नाम, शकल, चेहरा, जाति, धर्म-कई बार यह भी शक होता है कि वह मिला था कि नहीं मिला था; यह भी भूल सकते हैं। लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह

नहीं भूल सकते हैं। जरूर और सब पहचान से यह स्त्री और पुरुष की पहचान आपके किसी गहरे मन ने की है, जहां से भूल नहीं होती।

अगर एक हवाई जहाज आपके गांव में गिर पड़े, समझें कोई अंतरिक्ष यान गिर पड़े, कोई दूसरे ग्रह के यात्री का जहाज आपके गांव में गिर पड़े, उसमें से पायलट को आप बाहर निकालें, तो जो पहली जिज्ञासा उठेगी, वह यह कि वह स्त्री है या पुरुष! पहली जिज्ञासा कि वह स्त्री है या पुरुष! फिर दूसरी जिज्ञासाएं उठेंगी।

निश्चित ही, स्त्री और पुरुष होना एक बायोलाजिकल फैक्ट है, एक जैविक तथ्य है। स्त्री और पुरुष के शरीर में फर्क है। लेकिन यह फर्क इतना प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़े, इसकी अनिवार्यता उसमें नहीं है। इसकी अनिवार्यता हमारे मन की चाह में है।

रास्ते से आप निकलते है, वृक्ष लगे हैं। आपने शायद ही कभी देखा हो कि सभी वृक्ष एक जैसे हरे नहीं हैं। हरेपन में भी हजार तरह के हरेपन है। हरा कोई एक रंग नहीं है, हरा भी हजार रंग है। लेकिन आपको नहीं दिखाई पड़ेंगे। एक चित्रकार निकले, तो उसे दिखाई पड़ेगा, हजार रंग के हरे रंग हैं। दो हरे रंग एक-से हरे रंग नहीं हैं। ये सामने दस वृक्ष हैं, दस तरह के हरे हैं। आपको नहीं दिखाई पड़ेगा। इन वृक्षों के नीचे से आप रोज निकलते हैं। इनका दस तरह का हरा होना प्राकृतिक तथ्य है। लेकिन आपके भीतर चित्रकार चाहिए, तब वह दिखाई पड़ेगा। उसकी खोज भी आपके भीतर कोई चीज खोजती हो, तो ही दिखाई पड़ेगी, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ेगी। चित्रकार को दिखाई पड़ेगा कि रंग ही रंग हैं, हरे रंग भी कई रंग हैं।

स्त्री और पुरुष जैविक तथ्य है। लेकिन आपको इतना प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ता है, यह जैविक तथ्य नहीं है, यह मानसिक तथ्य है, यह साइकोलाजिकल तथ्य है। इसमें कुछ न कुछ आपने जोड़ना शुरू कर दिया। इसमें आपने कुछ डालना शुरू कर दिया। थोड़ा-सा आप भी इसमें प्रवेश कर गए; फिर चिंतन शुरू होगा।

यह तो हैपनिंग हुई, रास्ते पर स्त्री दिखी, पुरुष दिखा। फिर आपने कहा, सुंदर है, फिर आपकी यात्रा शुरू हुई चित्त की; अब चिंतन होगा। सुंदर है, तो

पीछे से चाह, पीछे से चाह चली आएगी। चाह आएगी, तो भोग-कामना में ही, मन में ही, स्वप्न में ही प्रतिमाएं निर्मित होनी शुरू हो जाएंगी।

अगर किसी दिन हम आदमी की खोपड़ी में विंडो बना सके-बना सकेंगे, अब तो सर्जन्स कहते हैं, बहुत कठिनाई नहीं है; मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं, बहुत कठिनाई नहीं है-अगर हम आदमी की खोपड़ी में एक कांच की खिड़की बना सके, जो कि हम बना ही लेंगे, तब आपको मुसीबत पता चलेगी। अगर बाहर से भी आपकी खोपड़ी में झांका जा सके कि भीतर क्या-क्या हो रहा है!

एक स्त्री जा रही है, तत्काल आपके मन के भीतर बहुत कुछ होना शुरू हो गया है। यह होना किसी को पता नहीं चलता, आपको ही पता चलता है। बहुत मौकों पर तो आपको भी पता नहीं चलता। बहुत मौकों पर तो यह इतना अचेतन होता है कि आपको भी पता नहीं चलता। दूसरों को तो पता चलता ही नहीं, खुद आप भी चूक जाते हैं। यह भीतर चलता रहता है और आप कहीं और चलते रहते हैं। लेकिन कैसे यह शुरू हो रहा है?

तथ्य हैं जगत में, फिक्शंस वहां नहीं हैं, फैक्ट्स हैं। कल्पनाएं मनुष्य डालता है। सुंदर है-यात्रा शुरू हुई। सुंदर है, तो चाह है। चाह है, तो भोग है। अब चिंतन शुरू हुआ। अब वासना चिंतन बनेगी। चिंतन को कहें, काल्पनिक संग पैदा हुआ। जब काल्पनिक संग पैदा होगा, तो क्रिया भी आएगी, काम भी आएगा। और कृष्ण कहते हैं, काम आएगा, तो क्रोध भी आएगा। क्यों? काम आएगा, तो क्रोध क्यों आ जाएगा?

असल में जो कामी नहीं है, वह क्रोधी नहीं हो सकता। क्रोध काम का ही एक और ऊपर गया चरण है। क्रोध क्यों आता है? क्रोध का क्या गहरा रूप है? क्रोध आता ही तब है, जब काम में बाधा पड़ती है, अन्यथा क्रोध नहीं आता। जब भी आपकी चाह में कोई बाधा डालता है-जो आप चाहते हैं, उसमें बाधा डालता है-तभी क्रोध आता है। जो आप चाहते हैं, अगर वह होता चला जाए, तो क्रोध कभी नहीं आएगा।

समझें आप कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हैं, तो कल्पवृक्ष के नीचे क्रोध नहीं आ सकता, अगर कल्पवृक्ष नकली न हो। कल्पवृक्ष असली है, तो क्रोध नहीं आ

सकता। क्योंकि क्रोध का उपाय नहीं है। आपने चाहा कि यह सुंदर स्त्री मिले; मिल गई। आपने चाहा, यह मकान मिले; मिल गया। आपने चाहा, यह धन मिले; मिल गया। आपने चाहा, सिंहासन मिले; मिल गया। आपने चाहा नहीं कि मिला नहीं, तो क्रोध के लिए जगह कहां है!

क्रोध आता है, चाहा और नहीं मिले के बीच में जो गैप है, उस गैप का नाम, उस अंतराल का नाम क्रोध है। चाहा और नहीं मिला, अटक गई चाह, रुक गई चाह, हिन्डर्ड डिजायर, चाह के बीच में अड़ गया पत्थर, चाह के बीच में पड़ गई बाधा, क्रोध के वर्तुल को पैदा कर जाती है।

नदी भाग रही है सागर की तरफ, आ गया एक पत्थर बीच में, तो सब गडबड़ हो जाता है। आवाज हो जाती है। पत्थर न हो तो नदी में आवाज नहीं होती। नदी आवाज नहीं करती, पत्थर के साथ टकराकर आवाज हो जाती है।

अगर काम की नदी बहती रहे और कोई बाधा न हो, तो क्रोध कभी पैदा न होगा। लेकिन काम की नदी बहती है और बाधाओं के पत्थर चारों ओर खड़े हैं। वे खड़े ही हैं। कोई आपके काम को रोकने के लिए नहीं खड़े हैं वे, वे खड़े ही थे। आपके काम ने वहां से बहना शुरू किया।

अब एक स्त्री सुंदर मुझे दिखाई पड़ी; मैंने उसे चाहना शुरू किया। अब हजार पत्थर हैं। उस स्त्री का पति भी है, वह भी पत्थर है। उस स्त्री का पिता भी है, वह भी पत्थर है। उस स्त्री का भाई भी है, वह भी पत्थर है। कानून भी है, अंदालत भी है, पुलिस भी है-वे भी पत्थर हैं। और ये कोई भी न हों, तो कम से कम वह स्त्री भी तो है। मैंने चाहा इसलिए वह चाहे, यह तो जरूरी नहीं है। मेरी चाह कोई उसके लिए नियम और कानून तो नहीं है। वह स्त्री तो है ही; इस जगत में हम सारे पत्थर हटा दें, तो भी वह स्त्री तो है ही। और फिर अगर वह स्त्री भी राजी हो, तो भी पत्थर नहीं रहेंगे, ऐसा नहीं है।

यहां थोड़े और गहरे उतरना पड़ेगा।

अगर ऐसा भी हम कर लें जैसा कि समाजशास्त्री सोचते हैं, जैसा कि समाजवादी सोचते हैं कि सारे पत्थर अलग कर दें; जैसा कि हिप्पी और बीटनिक

और प्रवोस सोचते हैं कि सारे पत्थर अलग कर दो-कानून अलग करो, पुलिस अलग करो-जहां-जहां पत्थर है, वह अलग कर दो, क्योंकि व्यर्थ ही उनसे क्रोध पैदा होता है और मनुष्य दुखी होता है। सब पत्थर अलग कर दो। तो भी एक स्त्री को पचीस पुरुष नहीं चाह लेंगे, एक पुरुष को पचीस स्त्रियां नहीं चाह लेंगी, इसका क्या उपाय है?

असल में कानून और व्यवस्था इसीलिए बनानी पड़ी कि अव्यवस्था इससे भी बदतर हो जाएगी। यह बदतर है काफी, लेकिन अव्यवस्था इससे भी बदतर हो जाएगी। यह चुनाव रिलेटिव है। यह बदतर है काफी कि हर जगह चाह के बीच में उपद्रव खड़ा है, लेकिन अगर सारे उपद्रव हटा लो, तो महाउपद्रव खड़ा हो जाएगा। अभी एक ही पति है उसका खड़ा। पति की व्यवस्था को हटा दो, तो हजार पति नहीं खड़े हो जाएंगे, इसका क्या उपाय है रोकने का? अभी एक ही पत्नी उस पति के ऊपर पहरा दे रही है। हटा दो उसे, तो हजार पत्नियां नहीं पहरा देगी, इसकी क्या गारंटी है?

फिर हम कल्पना भी कर लें कि सब हटा दिया जाए और ऐसा भी कुछ हो जाए कि बाहर से कोई बाधा नही आती, तो भीतरी बाधाएं है, जो और भी बड़ी बाधाएं हैं। क्योंकि जिस स्त्री को आप चाहते है, जो स्त्री आपको चाहती है, बीच में और कोई बाधा नहीं है, तो भी आप दो है और दो होना भी काफी बड़ी बाधा है। और क्रोध रोज-रोज जन्मेगा; जरा-जरा सी बात में जन्मेगा।

आप सुबह पांच बजे उठना चाहते हैं और आपकी स्त्री सुबह छः बजे उठना चाहती है। बस, इतना भी काफी है। कोई पुलिस, अदालत, कानून और राज्य की जरूरत नहीं है क्रोध के लिए, इतनी ही बाधा काफी है। छोटी-छोटी अड़चनें चाह में खड़ी होती है और बाधा खड़ी हो जाती है। वह दूसरा व्यक्ति भी व्यक्ति है, मशीन नहीं है। उसकी भी अपनी चिंतना है, अपना सोचना है, अपना ढंग है। और दो चिंतन एकदम पैरेलल नहीं हो पाते; हो नहीं सकते। सिर्फ दो मशीनें समानांतर हो सकती हैं, दो व्यक्ति कभी समानांतर नहीं हो सकते।

असल में दो व्यक्तियों का साथ रहना उपद्रव है। न रहना भी उपद्रव

है, क्योंकि चाह है। साथ न रहें, तो पूरी नहीं हो सकती। साथ रहें, तो भी पूरी नहीं हो पाती है।

तो वे जितनी अड़चनें हैं, वे सब काम में अड़चनें, पत्थर बन जाती हैं और क्रोध को जन्माती हैं। कामी क्रोधी हो जाता है।

अगर कृष्ण ने कहा है कि स्थितप्रज्ञ को क्रोध नहीं होता, तो उसका कारण यही है कि स्थितप्रज्ञ को काम नहीं होता; वह निष्काम है। ये नेसेसरी स्टेप्स हैं, ये अनिवार्य सीढ़ियां हैं, जो एक के पीछे चली आती हैं। और एक को लाएं, तो दूसरे को लाना पड़ता है। वह दूसरा उससे इतना बंधा है कि वह एक को लाते वक्त ही उसके साथ छाया की तरह भीतर प्रवेश कर जाता है। आपको मैंने निमंत्रण दिया, आपकी छाया भी मेरे घर में आ जाती है। आपकी छाया को मैंने कभी निमंत्रण नहीं दिया था, पर वह आपके साथ ही है, वह भीतर चली आती है।

काम के पीछे आता है क्रोध। अगर चित्त में क्रोध हो, तो जरा भीतर खोजने से पता चलेगा, कहीं काम है। अटका हुआ काम क्रोध है। रुका हुआ काम क्रोध है। बाधा डाला गया काम क्रोध है। क्रोध का सांप फुफकारता तभी है, तभी वह फन फैलाता है, जब मार्ग में कोई अड़चन आ जाती है और द्वार नहीं मिलता है। जब कोई रोकता है, कोई अटकाता है...।

फिर हम अकेले नहीं हैं इस जगत में। विराट यह जगत है। सभी की कामनाएं एक-दूसरे की कामनाओं को क्रिस-क्रास कर जाती हैं; तो सब जगह अटकाव हो जाता है। मैं कुछ चाहता हूं, लेकिन साढ़े तीन अरब लोग और है पृथ्वी पर, वे कुछ चाहते हैं। फिर अदृश्य परमात्मा है, फिर अदृश्य जीव-जंतु हैं, फिर अदृश्य देवी-देवता हैं, फिर अदृश्य वृक्ष, पशु-पक्षी सब हैं, उन सब की चाहें हैं। अगर हम अपने ऊपर देख सकें, तो हमें पता चले कि पूरा आकाश, पूरा व्योम अनंत चाहों से क्रिस-क्रास है। अनंत चाहें एक-दूसरे को काट रही हैं। एक-एक चाह पर करोड़-करोड़ चाहों का कटाव है। वह कटाव क्रोध पैदा करता है; करेगा ही। जहां भी वासना कटी कि पीड़ा हुई। जैसे किसी ने रग काट दी हो और खून बहने लगे। वासना की रग कटती है, तो क्रोध का खून बहता है।

कृष्ण कहते हैं, काम से क्रोध पैदा होता है।

क्रोध, क्रोध बहुत ही...। मनुष्य के अस्तित्व में, जैसा मनुष्य है, बड़ी गहरी आधारशिलाएं उसकी रखी है। है क्या क्रोध, अपने में? शक्ति, एनर्जी! तृप्ति के लिए काम के मार्ग से जाती थी, लेकिन मार्ग अवरुद्ध पाकर शक्ति उद्विग्न हो गई है। चाहा था कुछ, उस चाह की पगडंडी से प्राणों की ऊर्जा बहनी थी; आ गया है पत्थर, अटक गया सब। शक्ति अपने पर लौट पड़ी है। सब भीतर क्रुद्ध हो गया है। लौटा हुआ काम, काम के मार्ग से जाती हुई ऊर्जा अवरुद्ध होकर विद्रोह से भर गई है, विक्षिप्त हो गई है, इनसेन हो गई है। इसलिए क्रोध है।

जैसे-जैसे क्रोध बढ़ता है, वैसे-वैसे मोह बढ़ता है। क्यो? जिसे हम चाहते है और नही पा पाते, उसके प्रति मोह और गहरा हो जाता है। मिल जाए, तो मोह कम हो जाता है। न मिले, तो मोह बढ़ जाता है। जो नही मिलता, उसी के प्रति मोह होता है; जो मिलता है, उसके प्रति मोह नही रह जाता। क्रोध मोह को जन्म दे जाता है। मोह का मतलब क्या है?

मैने सुना है कि नादिरशाह ने एक दफे एक बहुत गहरा मजाक किया। गहरा कहना चाहिए। और कभी-कभी पाप मे गहरे गए लोगो की बुद्धि भी पुण्य मे गहरे गए लोगो की बुद्धि जैसी ही गहरी हो जाती है-उलटी होती है, लेकिन गहरी हो जाती है।

नादिरशाह किसी स्त्री के प्रति लोलुप है, लेकिन वह स्त्री उसके प्रति बिलकुल ही अनासक्त है, पर नादिरशाह के एक सैनिक के प्रति पागल है। स्वभावतः, नादिर के लिए बर्दाश्त करना मुश्किल हो गया। पकड़वा भिजवाया दोनों को। पूछा अपने वजीरों से कि कोई नई सजा खोजो, जो कभी न दी गई हो।

ऐसी कोई सजा है, जो कभी न दी गई हो! सब सजाएं चुक गई है। वजीर बड़ी मुश्किल में पड़े। नई-नई सजाएं खोजकर लाते, लेकिन नादिर कहता कि यह हो चुका; यह कई बार दी जा चुकी है। हम ही दे चुके हैं। दूसरे दे चुके हैं। नई चाहिए! और सच में ही एक बूढ़े वजीर ने नई सजा खोज ली। आप भी न सोच सकेंगे कि नई सजा क्या हो सकती थी!

नई सजा यह थी कि दोनों को नग्न करके, एक-दूसरे के चेहरों को आमने-सामने करके, दोनों को एक खंभे से बांध दिया गया। कभी सोचा भी नहीं होगा किसी ने! एक दिन, दो दिन, एक-दूसरे के शरीर से बास आने लगी, मल-मूत्र छूटने लगा। तीन दिन, एक-दूसरे के चेहरे को देखने की भी इच्छा न रही। चार दिन, एक-दूसरे पर भारी घृणा पैदा होने लगी। पांच दिन, नींद नहीं, मल-मूत्र, गंदगी; और बंधे हैं दोनों एक साथ-यही चाहते थे! पंद्रह दिन, दोनों पागल हो गए कि एक-दूसरे की गर्दन काट दें।

और नादिर रोज आकर देखता कि कहो प्रेमियो, इच्छा पूरी कर दी न! मिला दिया न दोनों को! और ऐसा मिलाया है कि छूट भी नहीं सकते। जंजीरें बंधी है। पंद्रह दिन बाद जब उन दोनों को छोड़ा, तो कथा है कि उन्होंने लौटकर एक-दूसरे को जिंदगी में न दुबारा देखा और न बोले। जो भागे एक-दूसरे से, तो फिर लौटकर कभी नहीं देखा!

क्या हुआ? मोह पैदा होने का उपाय न रहा। अमोह पैदा हो गया। करीब-करीब जिसको हम विवाह कहते हैं, वह भी नादिरशाह का बहुत छोटे पैमाने पर प्रयोग है-बड़े छोटे पैमाने पर। किसी बहुत होशियार आदमी ने कोई गहरी ईजाद की है। मैरिज मोह को नहीं जमने देती, मोह को मार डालती है। असल में मोह, जो नहीं मिलता, उसके लिए पैदा होता है।

इसलिए कृष्ण की इनसाइट, उनकी अंतर्दृष्टि गहरी है। वे कहते है, क्रोध से मोह पैदा होता है अर्जुन! क्योंकि क्रोध का मतलब ही यह है कि जिसे चाहा था, वह नहीं मिल सका, इसलिए क्रोध आया। नहीं मिल सका, इसलिए मिलने की और आकांक्षा आएगी। नहीं मिल सका, इसलिए पाने का और पागलपन आएगा। नहीं मिल सका, इसलिए मन और-और विक्षिप्त हो जाएगा और मांग करेगा।

जापान में वेश्याओं का एक वर्ग है-गेसा गर्ल्स। उनकी जो ट्रेनिंग है, उस ट्रेनिंग का एक हिस्सा है-दुनिया में सभी वेश्याओं की ट्रेनिंग का हिस्सा है। वेश्याएं पत्नियों से ज्यादा होशियार है। गेसा गर्ल्स को सिखाया जाता है कि कभी इतनी मत मिल जाना किसी को कि अमोह पैदा हो जाए। बस, मिलना और न

मिलना, इनके बीच सदा खेल को चलाते रहना। पास बुलाना किसी को और दूर हो जाना। कोई निकट आ पाए कि सरक जाना। बुलाना भर, मिल ही मत जाना, क्योकि मिल ही गए कि मोह नष्ट हो जाता है। वेश्याए भी जानती है कृष्ण के राज को, उनको भी पता है।

अब यह बडे मजे की बात है। खयाल मे आती है, आपसे कहता हू। स्त्रिया थी पृथ्वी की घूघट मे दबी, अधेरे मे छिपी। पति भी नही देख पाता था सूरज की रोशनी मे। कभी खुले मे बात भी नही कर पाता था। अपनी पत्नी से भी बात चोरी से ही होती थी, रात के अंधेरे मे, वह भी खुसुर-फुसुर। क्योकि सारा बडा परिवार होता था, कोई सुन न ले। आकर्षण गहरा था, मोह जिदगीभर चलता था।

स्त्री उघड़ी, परदा गया-अच्छा हुआ, स्त्री के लिए बहुत अच्छा हुआ-सूरज की रोशनी आई। लेकिन साथ ही मोह क्षीण हुआ। स्त्री और पुरुष आज कम मोहग्रस्त है। आज स्त्री उतनी आकर्षक नही है, जितनी सदा थी। और यूरोप और अमेरिका मे और भी अनाकर्षक हो गई है, क्योकि चेहरा ही नही उघडा, पूरा शरीर भी उघडा। आज यूरोप और अमेरिका के समुद्र-तट पर स्त्री करीब-करीब नग्न है, पास से चलने वाला रुककर भी तो नही देखता, पास से गुजरने वाला ठहरकर भी तो नही देखता कि नग्न स्त्री है।

कभी आपने देखा, बुरके मे ढकी औरत जाती हो, तो पूरी सडक उत्सुक हो जाती है। ढके का आकर्षण है, क्योकि ढके मे बाधा है। जहा बाधा है, वहां मोह है। जहा बाधा नही है, वहां मोह नही है।

स्त्री और पुरुष का आकर्षण जितना सेक्सुअल है, जितना कामुक है, उससे ज्यादा सोशल है, कल्चरल है। जितना ज्यादा काम से पैदा हुआ है, उतना काम मे डाली गई सामाजिक बाधाओ से पैदा हुआ है।

अब मै मानता हू कि आज नही कल, पचास साल के भीतर, सारी दुनिया मे घूंघट वापस लौट सकता है। आज कहना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है, यह भविष्यवाणी करता हूं, पचास साल मे घूघट वापस लौट आएगा। क्योकि स्त्री-पुरुष इतनी अनाकर्षक हालत मे जी न सकेगे। वे आकर्षण फिर पैदा करना चाहेगे। आने वाले पचास वर्षो मे स्त्रियो के वस्त्र फिर बडे होगे, फिर उनका शरीर ढकेगा।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि जब वह बच्चा था, तो विक्टोरियन युग समाप्त हो रहा था। और स्त्रियों के पैर का अंगूठा भी देखना मुश्किल था। घाघरा ऐसा होता था, जो जमीन छूता था। तो बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि अगर किसी स्त्री के पैर का अंगूठा भी दिख जाता था, तो चित्त में बिजली कौंध जाती थी। और उसने लिखा है कि अब कल्पना करने को भी कुछ नहीं बचा है। स्त्री पूरी दिखाई पड़ जाती है और चित्त में कोई बिजली नहीं कौंधती।

नग्न स्त्री उतनी आकर्षक नहीं है, नग्न पुरुष उतना आकर्षक नहीं है। और स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा होशियार हैं, इसलिए कोई स्त्री नग्न पुरुष में कभी उत्सुकता नहीं लेती। गहरे से गहरे प्रेम के क्षण में स्त्रियां आंख बंद कर लेती हैं कि पुरुष दिखाई ही न पड़े। स्त्रियां ज्यादा होशियार हैं, शायद इंसटिंक्टिवली वे प्रकृति के ज्यादा करीब हैं और राजों से परिचित हैं।

कृष्ण कहते हैं, क्रोध से मोह पैदा होता है। क्योंकि क्रोध से बाधा पैदा होती है। जहां भी बाधा है, वहां आकर्षण खड़ा हो जाता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जिन लोगों ने बाधाएं खड़ी की हैं, वे ही आकर्षण के लिए जिम्मेदार हैं। ईसाइयत ने पाप को इतना आकर्षक बना दिया, क्योंकि पाप के लिए इतनी बाधाएं खड़ी कीं। धर्मों ने सेक्स को बहुत आकर्षक बना दिया, क्योंकि उसके लिए बहुत बाधाएं खड़ी कीं।

आमतौर से लोग समझते हैं कि फिल्में हैं, नग्न-चित्र हैं, नग्न तस्वीरें हैं- ये लोगों को कामुक बना रही है। कृष्ण यह नहीं कह सकते कि कामुक बना रही हैं। कृष्ण कहेंगे कि यह लोगों का तो सारा मोह खराब कर देंगी। क्योंकि लोगों के लिए अनाकर्षक हो जाएगी, जो चीज परिचित हो जाती है। जिसमें बाधा नहीं है, वह अनाकर्षक हो जाती है।

अगर कृष्ण से हम पूछें मनोविज्ञान का सत्य, तो वह यह है कि अगर दुनिया में स्त्री-पुरुष के आकर्षण को बढ़ाना हो, तो नग्न तस्वीरें बंद करो, अील तस्वीरें बंद करो, स्त्री को नग्न मत करो। ढांको; बाधाएं खड़ी करो; स्त्री-पुरुष को एकदम मिल जाने की सुविधा मत बनाओ; असुविधाएं खड़ी करो-अगर मोह पैदा करना है।

अगर कृष्ण से हम पूछें, तो कृष्ण वह जवाब नहीं देंगे, जो हिंदुस्तान के सब साधु दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि फिल्मों में चुंबन न हो। चुंबन हुआ, तो लोग कामुक हो जाएंगे। गलत है! उन्हें बिलकुल मनोविज्ञान का कोई भी पता नही। कृष्ण को ज्यादा पता है। वह कृष्ण कह रहे हैं कि अगर बाधा बिलकुल नहीं है, तो मोह बिलकुल गिर जाएगा। अगर चीजें बिलकुल साफ हैं, तो आकर्षण खो देती है। निषेध में निमंत्रण है। जहां ढका है, वहां उघाड़ने का मन है। जहां बाधा है!

अब मेरी अपनी समझ यही है कि पुरानी मनुष्य की संस्कृति स्त्री और पुरुष के बीच ज्यादा आकर्षण को जन्माती थी। पुरानी संस्कृति मे तलाक मुश्किल था। आकर्षण भारी था। अपनी ही पत्नी से मिलना कहां हो पाता था! कितनी बाधाएं थीं! संयुक्त परिवार बड़ी बाधा का काम करता था। आकर्षण जीवनभर खिंचता था। जीवनभर ही नही, स्त्री और पुरुष चाहते थे कि मरकर भी यही स्त्री, यही पुरुष मिल जाए। तलाक जन्म के साथ भी करने का मन नही था। जन्मों-जन्मो तक एक को ही पा लेने का आकर्षण था। राज कहां है? राज इसी सूत्र में है, बाधाएं बहुत थी।

क्रोध सबसे बड़ी बाधा है। असल में क्रोध बाधा से ही पैदा हुआ चित्त-विकार है। तो मोह पैदा हो जाता है। और जहां मोह पैदा होता है, वहां स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। स्मृति मोह से भ्रष्ट क्यो हो जाती है?

आमतौर से हम सोचते होंगे, काम से भ्रष्ट होनी चाहिए स्मृति। काम से भ्रष्ट नही होती, क्योकि काम प्राकृतिक तथ्य है। आमतौर से हमें सोचना चाहिए, क्रोध से भ्रष्ट हो जाती है स्मृति। लेकिन क्रोध से भी नहीं होती। क्योंकि क्रोध सिर्फ काम के मार्ग में पड़ी अड़चन से पैदा होता है। क्रोध प्रोजेक्टिव नहीं है। यह समझना पड़ेगा। क्रोध का कोई सम्मोहन नहीं है। क्रोध केवल प्रतिकार है, प्रक्षेप नहीं। क्रोध किसी दूसरे का प्रतिकार है, किसी बाधा को हटाने की चेष्टा है। बाधा हट जाए, क्रोध खो जाएगा।

मोह क्रोध से भी सबल है। मोह प्रोजेक्टिव है; मोह अंधा कर देता है। क्रोध पागल करता है, मोह अंधा कर देता है। मोह कहता है, कुछ भी हो! सब

बाधाओं को भूलकर मोह पागल होकर जिसे पाना चाहता है, उसके पीछे दौड़ पड़ता है। क्रोध बाधाओं को अलग करने की कोशिश करता है, काफी रिअलिस्टिक है; क्रोध बहुत यथार्थ है। लेकिन मोह कहता है, बाधाएं! कोई बाधाएं नहीं हैं, छलांग लगाएंगे, दौड़कर निकल जाएंगे।

मोह अंधा कर देता है। और जब चित्त अंधा होता है, तभी स्मृति क्षीण होती है। हां, मोह तक आने के लिए काम और क्रोध जरूरी है। लेकिन मोह कहना चाहिए परिपाक है। मोह हमारे चित्त के विकार की सौ डिग्री अवस्था है, जहां से भाप बनना शुरू होता है। निन्यानबे डिग्री तक भी पानी भाप नहीं बनता, गरम ही रहता है। और गरम रहने में एक खूबी है कि अभी चाहे, नीचे से अगर ईंधन निकाल लिया जाए, तो फिर ठंडा हो सकता है। लेकिन सौ डिग्री पर पहुंचकर भाप बन जाएगा। फिर आप ईंधन निकालो या कुछ करो, भाप सिर्फ ईंधन निकालने से फिर ठंडी नहीं हो सकती। पानी ने नई अवस्था पा ली।

क्रोध तक सिर्फ मन गरम है, मोह पर भाप बन जाता है। नई अवस्था शुरू हो गई मन की, ए न्यू स्टेट; क्वालिटेटिव चेंज हो गया, गुणात्मक अंतर हो गया। क्रोध तक गुणात्मक अंतर नहीं है, परिमाणात्मक अंतर है, क्वांटिटेटिव चेज हो रहा है सिर्फ। इसलिए क्रोध से वापस लौट जाना आसान है, मोह से वापस लौट जाना बहुत मुश्किल हो जाता है।

इसलिए मोह को कृष्ण कहते है कि उससे स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। क्योंकि चित्त भाप-भाप हो जाता है। लौटना बहुत कठिन है। अब उसको ठंडा करना बहुत कठिन है। अब ईंधन हटाने से कुछ न होगा। और फिर मोह के तत्व को ठीक से समझें, तो पता चलेगा कि स्मृति क्यों मोह नष्ट करता है।

मनुष्य के मन में स्मृति का जो काम है, मोह का उससे विपरीत काम है। स्मृति तथ्यगत है। स्मृति का मतलब ही यही है कि जो जाना, उसे वैसा ही याद रखना जैसा जाना। मेमोरी का मतलब ही इतना है। राइट मेमोरी, ठीक स्मृति का मतलब इतना ही है कि हम अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ते, जो है, उसको ही स्मरण रखते हैं। उसमें हमारा कोई जोड़ नहीं होता।

मोह कहना चाहिए क्रिएटिव है, सृजनात्मक है। वह वही नहीं देखता, जो है; वह वह प्रोजेक्ट करता है, निर्माण करता है, जो चाहता है कि हो। मोह स्वप्न-निर्माता है। मोह सम्मोहक है, हिप्नोटिक है। मोह अपने हिप्नोटिज्म का जाल फैला देता है। वह बिलकुल अंधा होकर वही देखने लगता है, जो देखना चाहता है।

इसलिए अक्सर हम कहते हैं कि जब कोई मोहग्रस्त होता है, कोई प्रेम में पागल हो जाता है, तो फिर उसे तथ्य दिखाई नहीं पड़ते। वह आग में चल सकता है, वह पहाड़ों से कूद सकता है। उसे फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। फिर वह रिअलिस्ट नहीं रह जाता, वह सोम्नाबुलिस्ट हो जाता है; वह नींद में चलने लगता है। उसका चलना फिर नींद में चलना है।

इसलिए प्रेमी को मनुष्य हमेशा से पागल कहता रहा है। और प्रेम को सदा से अंधा कहता रहा है। ठीक होगा कि प्रेम की जगह हम मोह का उपयोग करें। ठीक शब्द मोह है। मोह अंधा है, ब्लाइंड है। प्रेम बड़ी और बात है।

प्रेम को मोह के साथ एक कर लेने से गहरा, भारी नुकसान हुआ है। प्रेम एक बहुत ही और बात है। प्रेम तो उसी के जीवन में घटित होता है, जिसके जीवन में मोह नहीं होता। लेकिन हम प्रेम को ही मोह और मोह को प्रेम कहते रहे हैं।

प्रेम तो बुद्ध और कृष्ण जैसे लोगों के जीवन में होता है। हमारे जीवन में प्रेम होता ही नहीं है। जिनके जीवन में मोह है, उनके जीवन में प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि मोह मांगता है, प्रेम देता है। बिलकुल अलग अवस्थाएं हैं। उनकी हम आगे थोड़ी बात कर सकेंगे। लेकिन मोह को समझने के लिए उपयोगी है।

प्रेम उस चित्त में फलित होता है, जिसमें कोई काम नहीं रह जाता, जिसमें कोई वासना नहीं रह जाती। क्योंकि दे वही सकता है, जो मांगता नहीं। वासना मांगती है। वासना कहती है, मिलना चाहिए, यह मिलना चाहिए, यह मिलना चाहिए। प्रेम कहता है, अब कोई मांग न रही, हम कोई भिखारी नहीं हैं। वासना भिखारी है, प्रेम सम्राट है। प्रेम कहता है, जो हमारे पास है, ले जाओ। जो हमारे पास है, ले जाओ; अब हमें तो कोई जरूरत न रही, अब हमारी कोई मांग न रही। अब तुम्हें जो भी लेना है, ले जाओ। प्रेम दान है। वासना भिक्षावृत्ति है, मांग है।

इसलिए वासना में कलह है; प्रेम में कोई कलह नहीं है। ले जाओ तो ठीक, न ले जाओ तो ठीक। लेकिन मांगने वाला यह नहीं कह सकता कि दे दो तो ठीक, न दो तो ठीक। देने वाला कह सकता है कि ले जाओ तो ठीक, न ले जाओ तो ठीक। क्योंकि देने में कोई अंतर ही नहीं पड़ता, नहीं ले जाते, तो मत ले जाओ। मांग में अंतर पड़ता है। नहीं दोगे, तो प्राण छटपटाते हैं। क्योंकि फिर अधूरा रह जाएगा भीतर कुछ, पूरा नहीं हो पाएगा।

मोह पैदा होता है वासना की अंतिम कड़ी में, और प्रेम पैदा होता है निर्वासना की अंतिम कड़ी में। कहना चाहिए, जिस तरह मोह से स्मृति नष्ट होती है, उसी तरह से प्रेम से स्मृति पुष्ट होती है। पर उसकी अलग बात करेंगे। अभी उससे कोई लेना-देना नहीं है।

मोह सीढ़ियों का नीचे उतरा हुआ सोपान है, पायदान है, जहां आदमी पागल होने के करीब पहुंचता है। प्रेम सीढ़ियों का ऊपरी पायदान है, जहां आदमी विमुक्त होने के करीब पहुंचता है। विक्षिप्त होने के करीब और विमुक्त होने के करीब। मोह के बाद विक्षिप्तता है, प्रेम के बाद विमुक्ति है।

यह जो मोह पैदा हुआ, यह स्मृति को नष्ट कर देता है। क्यों? क्योंकि स्मृति अब रिकार्ड नहीं कर पाती कि क्या है। स्मृति का काम सिर्फ रिकार्ड का है कि और वह वही रिकार्ड कर ले, जो है; तथ्य को अंकित कर ले। लेकिन मोह के कारण तथ्य दिखाई नहीं पड़ता। मोह के कारण हम एक जाल अपनी तरफ से प्रोजेक्ट करते हैं।

प्रोजेक्टर आपने देखा होगा। सिनेमागृह में परदा होता है। परदे पर चित्र होते हैं। लेकिन आपकी पीठ के पीछे दीवाल के उस पार छिपा हुआ प्रोजेक्टर होता है, मशीन होती है, जो चित्रों को परदे पर फेंकती है। चित्र उस मशीन में छिपे होते हैं, परदे पर नहीं होते हैं। परदे पर चित्रों का सिर्फ भ्रम पैदा होता है। चित्र होते हैं मशीन में छिपे, प्रोजेक्टर में, फेंकने वाले में। और वहां से चित्र फेंके जाते हैं, लेकिन दिखाई पड़ते हैं परदे पर। होते हैं प्रोजेक्टर में, दिखाई पड़ते हैं परदे पर।

मोह प्रोजेक्टर है। होता है हमारे भीतर, दिखाई पड़ता है परदे पर। जब मैं किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता हूं, तो जो चेहरा मुझे दिखाई पड़ता है, वह उस स्त्री

का नहीं होता, वह मेरे प्रोजेक्टर का होता है। वह होता है मेरे भीतर, दिखाई पड़ता है वहां। स्त्री सिर्फ परदा होती है। क्योंकि जिनको उस स्त्री से मोह नहीं है, उनको वहां वैसा चेहरा नहीं दिखाई पड़ता, जैसा मुझे दिखाई पड़ता है। मुझे उसके पसीने में भी सुगंध आने लगती है; उसके पसीने में भी गुलाब खिलने लगते है। किसी को नही खिलते। कुछ दिन बाद मुझे भी नहीं खिलेंगे-जब मोह गिरेगा और प्रोजेक्टर बंद हो जाएगा और परदा दिखाई पड़ेगा। तब मै कहूंगा, अरे! क्या हुआ? गुलाब के फूल कहा गए? वे गुलाब के फूल विदा हो जाएंगे। वे गुलाब के फूल वहां थे ही नही। वे गुलाब के फूल मैने आरोपित किए थे, प्रोजेक्ट किए थे; वह मेरा प्रक्षेप था।

धन मे धन के पागल को जो दिखाई पड़ता है, वह धन मे होता नहीं, प्रोजेक्टेड होता है। धन मे क्या होगा! लेकिन धन के पागल को देखा है आपने। वह रुपये को किस मोह से पकड़ता है, जैसे किसी जीवंत चीज को पकड़ रहा हो। वह रुपये को किस प्रेम से सम्हालता है, जैसे उसका हृदय हो! वह तिजोरी को कैसे आहिस्ता से खोलता है। वह तिजोरी को कैसे देखता है, जैसे उसकी आत्मा वहां बंद है! वह रात सोता भी है, तो तिजोरी का ही चिंतन घूमता है। रात सपने भी आते है, तो रुपयो के ही ढेर बढ़ते चले जाते है। वह जिस जगत मे जी रहा है, उसका हमें कुछ भी पता नही है कि उसका प्रोजेक्शन क्या हो रहा है! वह क्या प्रोजेक्ट कर रहा है!

मैने सुना है, एक आदमी एक गांव में बहुत धनपति है। फिर गांव में लोग मरने लगे, अकाल पड़ा। तो लोगो ने उससे कहा, इतना धन है तुम्हारे पास, इतना धान्य है तुम्हारे पास, लोग मर रहे है, ऐसे क्षण पर रोको मत-बांटो। तो उस आदमी ने कहा, जिसे तुम बांटने के लिए कह रहे हो, वह अगर बंट जाए तो मै मर जाऊं। तो लोग मर रहे है माना, लेकिन मै मरना नहीं चाहता! यह तुम भी जानो। और लोग मर रहे हैं, तो दूसरे पैदा हो जाएंगे। लेकिन जो धन मैने इकट्ठा किया है, वह दूसरा कहां से आ सकता है? लोग बड़े चकित हुए। कभी न सोचा था!

लेकिन उन्हें पता नहीं कि लोग उस आदमी के लिए छायाओं की तरह झूठे हैं; धन आत्मा की तरह सच्चा है। लोग है ही नहीं उसकी जीवन-परिधि में।

उसके मन के घेरे में लोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। वे प्रतिबिंब हैं। आते हैं, जाते हैं। धन बहुत वास्तविक है।

फिर उसकी पत्नी भी बीमार पड़ गई। गांवभर में लोग मर रहे है, बीमारियां फैल गईं। उसकी पत्नी बीमार पड़ गई, तो लोगों ने कहा, कम से कम अपनी पत्नी को दिखाने के लिए वैद्य को बुला लो! उसने कहा, पत्नी फिर भी मिल सकती है। लेकिन धन फिर भी मिलेगा, इसका आश्वासन है?

जिसके मन में धन का मोह है, हम नहीं समझ पाते उसकी भाषा। जैसे अर्जुन पूछ रहा है कि वह किस प्रकार की भाषा बोलता है? ऐसे ही मोहग्रस्त कैसी भाषा बोलता है, वह भी हम नहीं समझ सकते। मोहग्रस्त कैसे उठता, कैसे बैठता, हमारी पकड़ में नहीं आता। हां, अपने-अपने मोह को देखेंगे, तो पकड़ में आ सकता है। सबके मोह हैं। दूसरे का मोह हमारी समझ में नहीं आता, हमारा मोह ही हमारी समझ में आता है।

उसने कहा, पत्नी दूसरी मिल जाएगी। पत्नी मर गई। फिर तो वह खुद भी मरने के करीब आ गया। बीमारियां उसे भी पकड़ लीं। लोगों ने कहा, अब तो कम से कम अपने पर कृपा करो। अब तो तुम्हीं मरने के करीब हो! उसने कहा, धन न बचे और मैं बच जाऊं, ऐसे बचने से तो मर जाना ही बेहतर है। वह तो बड़ा दुखद है, वह तो बड़ा भयप्रद है कि धन न बचे और मै बच जाऊं। कल्पना ही नही कर सकता धन के बिना मेरे होने की। हां, मेरे न होने की कल्पना कर सकता हूं। लेकिन धन के बिना मेरे होने की कल्पना नहीं कर सकता।

मोहग्रस्त आदमी ऐसी ही भाषा बोलता है। वह कहता है, यह स्त्री मुझे न मिली, तो मै मर जाऊंगा। इस स्त्री के बिना होने की मै कल्पना नहीं कर सकता। हां, अपने न होने की कल्पना कर सकता हूं। वही मोह, वह कहता है, ऐसा नहीं होगा...अगर मंत्री पद नहीं मिला, तो मर जाऊंगा। मंत्री पद के बिना अपने होने की कल्पना नहीं कर सकता। हां, अपने न होने की कल्पना कर सकता हूं। मोहग्रस्त की यही भाषा है।

फिर लोगों ने कहा, लेकिन तुम मर जाओगे, तो यह धन पड़ा रह जाएगा। इतने दिन बचाया है, फिर इसका क्या होगा? उसने कहा कि क्या तुम सोचते हो,

मैं धन को पड़ा रहने दूंगा! मै साथ ले जाऊंगा। लोगो ने कहा, अब तक सुना नहीं कि कोई धन को साथ ले गया हो! उसने कहा, सुन लेना, जब मै ले जाऊंगा, तब तुम्हें पता चल जाएगा।

मोहग्रस्त मन की स्मृति खो जाती है; सोच-विचार खो जाता है; सहज विवेक खो जाता है। वह कह रहा है, मै धन को भी साथ ले जाऊंगा! मोहग्रस्त आदमी कहता है, छोडूंगा ही नही, प्राण में समा लूंगा। अपना-अपना मोह!

एक मुख्यमंत्री को मै जानता हूं एक प्रदेश के। जो मरने के एक साल पहले मुझसे ही कहे कि अब एक ही इच्छा है कि मुख्यमंत्री रहते हुए मरूं। मौत करीब दिखने लगी थी। बहुत बीमार थे। कहा कि बस अब एक ही इच्छा है कि मुख्यमंत्री रहते हुए मरूं। मैने कहा, मरने का उतना भय नही, जितना मुख्यमंत्री पद के छूटने का भय है। मरते हुए भी कम से कम मुख्यमंत्री पद तो साथ चला जाए! मरे तो मुख्यमंत्री थे; साथ ले गए!

उस आदमी ने कहा, ले जाऊंगा साथ। और सच मे एक रात उसने कोशिश की। मोहग्रस्त आदमी कोई भी कोशिश कर सकता है। उसकी स्मृति खो जाती है, उसका विवेक खो जाता है। रात उसने देखा कि शायद सुबह नही होगी। तो आधी रात वह उठा। उसने अपने सारे हीरे-जवाहरात, जो भी कीमती था, वह एक बोरी मे बंद किया। लेकर नदी के किनारे पहुंचा। उसने सोचा कि अपने बोरे को कमर से बांधकर नदी मे कूद जाऊं। आखिरी चेष्टा कि साथ ले जाऊं! लेकिन नदी गहरी है और अगर किनारे कूद पड़े, तो लाश तो किनारे लगी रह जाएगी। वह हीरे-जवाहरातों से भरा हुआ बोरा किनारे रह जाएगा। न मालूम कोई उसे उठा ले!

तो उसने नाविको को जगाया। कहता हूं नाविको को, एक नाविक के जगाने से काम चल जाता। पर नाविकों को जगाया, क्योकि वह आदमी ठहराए बिना नहीं कर सकता था काम; उसे जाना था बीच नदी में। उसने मांझियों को जगाया और कहा कि सबसे कम में कौन ले जा सकता है? सबसे कम में! और वह आदमी मरने जा रहा है। यह सब धन लेकर डूब जाने वाला है। तो सबसे कम में कौन ले जा सकता है! ठहराया उसने। सबसे कम, छोटी से छोटी अशर्फी में जो राजी था, उस मल्लाह के साथ वह नदी में उतरा।

और आखिर जब बीच मझधार में पहुंच गया, तो उसने उस मल्लाह से कहा कि क्या एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी न करोगे? उसने कहा, क्या मतलब? कैसी आखिरी इच्छा? तो उसने कहा कि अगर तुम वह अशर्फी न मांगो, तो मैं शांति से मर जाऊं। पर एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा! इतनी दुष्टता करोगे कि एक मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी न करो?

गरीब मल्लाह उस मरते हुए आदमी की आखिरी इच्छा पूरी किया। वह धनपति शांति से कूद गया। ऐसे ही हम सब कूद जाते है, अपने-अपने मोह से भरी हुई मृत्यु में। मोह स्मृति को नष्ट कर देता है, विचार को छुड़ा देता है।

जहां स्मृति नष्ट होती है, कृष्ण कहते हैं, वहां बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

स्मृति और बुद्धि में फर्क है। स्मृति बुद्धि नहीं है, स्मृति बुद्धि की एक फैकल्टी है। स्मृति केवल बुद्धि का, कहना चाहिए, कोषागार है। स्मृति, कहना चाहिए, बुद्धि का संग्रहालय है, रिजर्वायर है। कहना चाहिए, स्मृति बुद्धि का अतीत है। बुद्धि ने जो-जो जाना है, वह स्मृति में संगृहीत कर दिया है। बुद्धि का अतीत है स्मृति, बुद्धि नहीं। स्मृति का अर्थ ही है, दि पास्ट, बीता हुआ।

लेकिन पहले अतीत भ्रष्ट होता है, तब वर्तमान भ्रष्ट होता है, तब भविष्य भ्रष्ट होता है। पहले उसका बोध क्षीण होता है, जो था। फिर उसका बोध क्षीण होता है, जो है। फिर उसका बोध क्षीण हो जाता है, जो होगा। स्वाभाविक। क्योंकि अतीत सबसे ज्यादा स्पष्ट है। जो हो चुका है, वह सबसे ज्यादा स्पष्ट है। जो हो रहा है, अभी धूमिल है। जो नहीं हुआ, अनिश्चित है। बुद्धि की पकड़ सबसे ज्यादा अतीत पर साफ होती है।

जो हो चुका, वह साफ होगा ही। सब रेखाएं पूरी हो गईं। घटनाएं घट चुकीं। जो होना था, उसने पूरा रूप ले लिया; वह आकृति बन गया। जो हो रहा है, अभी निराकार से आकार में आ रहा है। जो होगा, वह अभी निराकार है। जो भविष्य है, वह अव्यक्त है। जो वर्तमान है, वह व्यक्त होने की प्रक्रिया में है। जो अतीत है, वह व्यक्त हो गया है।

इसलिए जब पहला हमला होगा, तो स्मृति पर होगा। क्योंकि वही सबसे स्पष्ट है। सबसे पहले स्पष्ट डांवाडोल हो जाएगा। और जब स्पष्ट ही डांवाडोल हो जाएगा, तो अस्पष्ट के डांवाडोल होने में कितनी देर लगेगी! और जब अस्पष्ट ही डांवाडोल हो जाएगा, तो जो अभी निराकार है, उस पर तो सारी ही समझ छूट जाएगी। पहले अतीत नष्ट हो जाएगा, फिर वर्तमान, फिर भविष्य। पहले इतिहास विकृत हो जाएगा, फिर जीवन, और फिर संभावना।

कृष्ण एक-एक कदम, ठीक वैज्ञानिक कदम की बात कर रहे हैं, स्मृति नष्ट हो जाती है अर्जुन, फिर बुद्धि का नाश हो जाता है।

बुद्धि क्या है? और कृष्ण जिन अर्थों में बुद्धि का उपयोग करते है, वह क्या है? कृष्ण इंटलेक्ट के अर्थों में बुद्धि का उपयोग नहीं करते। इंटेलिजेंस के अर्थों में बुद्धि का उपयोग करते है। इसमें आपको...भाषाकोश में तो दोनों शब्दों का एक ही मतलब है। आप कहेंगे, बुद्धि, इंटलेक्ट और इंटेलिजेंस में क्या फर्क है?

बुद्धि का वह रूप जो एक्चुअलाइज हो गया है, इंटलेक्ट है। बुद्धि का वह रूप जो वास्तविक हो गया है, जिसका आप प्रयोग कर चुके, जो सक्रिय हो गया है, वह इंटलेक्ट है। कहें, बुद्धिमानी है। जो बुद्धि का रूप अभी भी निष्क्रिय पड़ा है, जो अभी सक्रिय नहीं हुआ, जो अभी पोटेंशियल में पड़ा है, बीज में पड़ा है, अभी रूपाकृत नहीं हुआ, रूपायित नहीं हुआ, जो अभी साकार नहीं हुआ, जो अभी वास्तविक नहीं हुआ-केवल संभावना है-बुद्धि में, इंटेलिजेंस में वह भी सम्मिलित है। दि एक्चुअलाइज्ड इंटेलिजेंस इज़ इंटलेक्ट। जो वास्तविक बन गई है बुद्धि, वह बुद्धिमानी है। और जो अभी वास्तविक नहीं बनी, वह भी बुद्धि के हिस्से में है।

तो आपकी बुद्धिमानी ही आपकी बुद्धि नहीं है, आपकी बुद्धि आपकी बुद्धिमानी से बड़ी चीज है। अगर आपकी बुद्धिमानी ही आपकी बुद्धि है, तो फिर आपमें विकास का कोई उपाय न बचेगा। बात खतम हो गई। बुद्धि का वर्तुल बड़ा है। बुद्धिमानी का वर्तुल बुद्धि के बड़े वर्तुल में छोटा है। वह बुद्धिमानी का वर्तुल बड़ा होता जाए, बड़ा होता जाए और किसी दिन बुद्धि के पूरे वर्तुल को छू ले, तो आदमी स्थितप्रज्ञ हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, बुद्धि विकृत हो जाती हैं।

बुद्धिमानी तो विकृत हो जाती है स्मृति के साथ ही। क्योंकि बुद्धिमानी यानी स्मृति; नालेज यानी मेमोरी। नोइंग यानी बुद्धि, जानने की क्षमता यानी बुद्धि। जानने की क्षमता जितनी सक्रिय हो गई, यानी बुद्धिमानी। जो जान लिया, वह बुद्धिमानी; और जो जानने की शक्ति है भीतर, वह बुद्धि। बुद्धि सदा जानने की शक्ति से बड़ी है। जानने की वास्तविकता से बड़ी क्षमता है।

स्मृति पहले विकृत हो जाती है। स्मृति अर्थात इंटलेक्ट विकृत हो गई। और फिर, कृष्ण कहते हैं, वह जो अव्यक्त में पड़ी बुद्धि है, उस तक भी डांवाडोल भंवर पहुंचने लगते हैं। वह जो गहरे में छिपी प्रज्ञा है, वह भी कंपित होने लगती है। क्योंकि जब स्मृति की आधारशिलाएं गिर जाती है, तो उसके ऊपर अव्यक्त का जो भवन है, शिखर है, वे भी कंपने लगते है। वह अंतिम पतन है। और जब बुद्धि-नाश हो जाता है, तो सब खो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जब बुद्धि-नाश हो जाता है, तो सब खो जाता है। फिर कुछ भी बचता नहीं। वह आदमी की परम दीनता है, बैक्रप्सी, दिवालियापन है। वहां आदमी बिलकुल दिवालिया हो जाता है-धन खोकर नहीं, स्वयं को ही खो देता है। फिर उसके पास कुछ बचता ही नहीं। वह बिलकुल ही नकार हो जाता है। ना-कुछ हो जाता है। उसका सब ही खो जाता है। यही दीनता है, यही दरिद्रता है। अगर अध्यांत्म के अर्थों में समझें, तो ऐसी स्थिति स्प्रिचुअल पावर्टी है; ऐसी स्थिति आध्यात्मिक दारिद्रय है।

लेकिन हम भौतिक दारिद्रय से बहुत डरते है, आध्यात्मिक दारिद्रय से जरा भी नहीं डरते। हम बहुत डरते हैं कि एक पैसा न खो जाए। आत्मा खो जाए-हम नहीं डरते। हम बहुत डरते हैं कि कोट न खो जाए, कमीज न खो जाए। लेकिन जिसने कोट और कमीज पहना है, वह खो जाए-हमें जरा भी फिक्र नहीं। कोट और कमीज बच जाए, बस बहुत है। वस्तुओं को बचा लेते है, स्वयं को खो देते हैं।

खोने की जो प्रक्रिया कृष्ण ने कही, वह बहुत ही मनोवैज्ञानिक है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान या आधुनिक मनोविज्ञान इतने गहरे नहीं जा सका है।

जाएगा, कदम उठने शुरू हो गए हैं, लेकिन इतने गहरे नहीं जा सका है। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान काम के आस-पास ही भटक रहा है, सेक्स के आस-पास ही भटक रहा है।

अभी पश्चिम का चाहे फ्रायड हो और चाहे कोई और हो, अभी पहले वर्तुल पर ही भटक रहे हैं, जहां काम है। अभी उन्हें पता नहीं है कि काम के बाद और गहरे में क्रोध है, क्रोध के बाद और गहरे में मोह है, मोह के और गहरे में स्मृति-नाश है, स्मृति-नाश के और गहरे में बुद्धि का दिवालियापन है, बुद्धि के दिवालियापन के और गहरे में स्वयं का पूर्णतया नकार हो जाना है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 64।।

परंतु, स्वाधीन अंतःकरण वाला पुरुष राग-द्वेष से रहित, अपने वश में की हुई इंद्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ प्रसाद अर्थात अंतःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

ठीक इसके विपरीत-पतन की जो कहानी थी, ठीक इसके विपरीत-राग-द्वेष से मुक्त, कामना के पार, स्वयं में ठहरा, स्वायत्त। स्वयं को खो चुका; और स्वयं में ठहरा। अभी जो कहानी हमने समझी, अभी जो कथा हमने समझी, अभी जो यात्रा हमने देखी, वह स्वयं को खोने की। और स्वयं को कैसे खोता है सीढ़ी-सीढ़ी आदमी, वह हमने देखा। स्वयं से कैसे रिक्त और शून्य हो जाता है। स्वयं से कैसे बाहर, और बाहर, और दूर हो जाता है। कैसे स्वयं को खोकर पर में ही आयत्त हो जाता है, पर में ही ठहर जाता है।

जिसको मैंने कहा, आध्यात्मिक दिवालियापन, स्प्रिचुअल बैंक्रप्सी, उसका मतलब है, पर में आयत्त हुआ पुरुष। यह जो पूरी की पूरी यात्रा थी, पर में आयत्त होने से शुरू हुई थी। देखा था राह पर किसी स्त्री को, देखा था किसी भवन को, देखा था किसी पुरुष को, देखा था चमकता हुआ सोना, देखा था सूरज में

झलकता हुआ हीरा-पर, दि अदर, कहीं पर में आकर्षित चित्त पर की खोज पर निकला था। चिंतन किया था, चाह की थी, बाधाएं पाई थीं, क्रोधित हुआ था, मोहग्रस्त बना था, स्मृति को खोया था, बुद्धि के नाश को उपलब्ध हुआ था। पर-आयत्त, दूसरे में-दि अदर ओरिएंटेड। मनोविज्ञान जो शब्द उपयोग करेगा, वह है, दि अदर ओरिएंटेड।

तो बड़ी मजे की बात है कि कृष्ण ने स्वायत्त, सेल्फ ओरिएंटेड शब्द का उपयोग किया है। पर-आयत्त, दूसरे की तरफ बहता हुआ पुरुष, दूसरे को केंद्र मानकर जीता हुआ पुरुष। इस पुरुष शब्द को थोड़ा समझें, तो इस पर-आयत्त और स्वायत्त होने को समझा जा सकता है।

शायद कभी खयाल न किया हो कि यह पुरुष शब्द क्या है! सांख्य का शब्द है पुरुष। गांव को हम कहते हैं पुर-नागपुर, कानपुर-गांव को हम कहते हैं पुर। सांख्य कहता है, पुर के भीतर जो छिपा है, वह पुरुष, पुर में रहने वाला। शरीर है पुर। कहेंगे, इतना छोटा-सा शरीर पुर! बहुत बड़ा है, छोटा नहीं है। बहुत बड़ा है। कानपुर की कितनी आबादी है? पांच लाख, छः लाख, सात लाख होगी। शरीर की कितनी आबादी है? सात करोड़। सात करोड़ जीवाणु रहते है शरीर में। छोटा पुर नहीं है, सात करोड़ जीवित सेल हैं शरीर में। अभी तक दुनिया में कोई पुर इतना बड़ा नहीं है। लंदन की आबादी एक करोड़, टोकियो की सवा करोड़, कलकत्ता की अस्सी लाख, बंबई की साठ।

अभी मनुष्य के शरीर के बराबर पुर पृथ्वी पर बना नहीं है। सात करोड़! क्या इससे कोई फर्क पड़ता है कि छोटे-छोटे प्राणी रहते है। छोटा कौन है? बड़ा कौन है? सब रिलेटिव मामला है। आदमी कोई बहुत बड़ा प्राणी है? हाथी से पूछें, ऊंट से पूछें, तो बहुत छोटा प्राणी है। तो ये ऊंट या हाथी क्या कोई बहुत बड़े प्राणी हैं? पृथ्वी से पूछें, हिमालय से पूछें...।

सोचते होंगे शायद, हिमालय में कोई प्राण नहीं हैं। तो गलत सोचते हैं। हिमालय अभी भी बढ़ रहा है, अभी भी ग्रोथ है, अभी भी बड़ा हो रहा है। हिमालय अभी भी जवान है। सतपुड़ा और विंध्याचल बूढ़े हैं, अब बढ़ते नहीं हैं।

अब सिर्फ थकते हैं और झुक रहे हैं। हिमालय अभी भी बढ़ रहा है। हिमालय की उम्र भी बहुत कम है, सबसे नया पहाड़ है। सब पुराने पहाड़ हैं। विंध्या सबसे ज्यादा पुराना पहाड़ है। सबसे पहले पृथ्वी पर विंध्या पैदा हुआ। बूढ़े से बूढ़ा पर्वत है। अब उसकी ग्रोथ बिलकुल रुक गई है। अब वह बढ़ता नहीं है। अब वह थक रहा है, टूट रहा है, झुक रहा है, कमर उसकी आड़ी हो गई है। हमारे पास कहानी है, उसकी कमर के आड़े होने की।

अगस्त्य की कथा है, कि मुनि गए हैं दक्षिण और कह गए है कि झुका रहना, जब तक मैं लौटूं न। फिर वे नहीं लौटे। कर्म आदमी के हाथ में है, फल आदमी के हाथ मे नहीं है। लौटना मुनि का नहीं हो सका। फिर वह बेचारा झुका है। पर यह जियोलाजिकल फैक्ट भी है, यह पुराण कथा ही नहीं है। विंध्या झुक गया है और अब उसमें विकास नहीं है; बूढ़ा है। हिमालय बच्चा है।

हिमालय से पूछें, ऊंट, हाथी! वह कहेगा, बहुत छोटे प्राणी है। खुर्दबीन से देखूं तब दिखाई पड़ते हैं, नहीं तो नहीं दिखाई पड़ते। पृथ्वी से पूछें कि हिमालय की कुछ खबर है! वह कहेगी, ऐसे कई हिमालय पैदा हुए, आए और गए। सब मेरे बेटे है, मुझ मे आते हैं, समा जाते है। धरित्री-वह मां है। लेकिन पृथ्वी कोई बहुत बड़ा प्राण रखती है! तो सूरज से पूछें। सूरज साठ लाख गुना बड़ा है पृथ्वी से। उसे दिखाई भी नहीं पड़ती होगी पृथ्वी। साठ लाख गुने बड़े को कैसे दिखाई पड़ेगी?

पर सूरज कोई बहुत बड़ा है? मत इस खयाल में पड़ना। बहुत मीडियाकर स्टार है, बहुत मध्यमवर्गीय है। उससे बहुत बड़े सूर्य हैं, उससे करोड़ और अरब गुने बड़े सूर्य हैं। ये जो रात को तारे दिखाई पड़ते हैं, ये सब सूर्य है। छोटे-छोटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि बहुत दूर है। ये छोटे होने की वजह से छोटे नहीं दिखाई पड़ते। ये बहुत दूर हैं, इसलिए छोटे दिखाई पड़ते हैं। बहुत बड़े-बड़े महासूर्य है, जिनसे पूछें कि हमारा भी एक सूर्य है! तो वे कहेंगे कि है, पर बहुत गरीब है, छोटा है। किसी गिनती में नहीं आता। कोई वी.आई.पी. नहीं है!

लेकिन वे महासूर्य, जो इस सूर्य से भी अरबों गुने बड़े हैं, वे भी क्या बहुत बड़े हैं? तो पूरे जगत से पूछें। तो अब तक वैज्ञानिक कहते हैं कि चार अरब सूर्यों

का हमें पता चला है। मगर वह अंत नहीं है। उसके पार भी, उसके पार भी, बियांड एंड बियांड-कुछ अंत नहीं है। यहां कौन छोटा, कौन बड़ा! सब छोटा-बड़ा रिलेटिव है।

आपके शरीर में जो जीवाणु हैं, वे भी छोटे नहीं हैं, आप भी बड़े नहीं हैं। सात करोड़ की एक शरीर में बसी हुई बस्ती! और आप सोचते हों कि इन सात करोड़ जीवाणुओं को आपका कोई भी पता है, इनका आपको कोई भी पता है-तो नहीं है। आपको इनका पता नहीं है, इनको आपका पता नहीं है। उनको भी आपका पता नहीं है कि आप हैं। आप जब नहीं होंगे इस शरीर में, तब भी उनमें से बहुत-से जीवाणु जीए चले जाएंगे। मर जाने के बाद भी! आप मरते हैं, वे नहीं मरते। उनमें जो अमीबा हैं, बहुत छोटे हैं, वे तो मरते ही नहीं। उनकी लाखों साल की उम्र है। अगर उम्र के हिसाब से सोचें, तो आप छोटे हैं, वे बड़े हैं।

कब्रिस्तान में दबे हुए आदमी के भी नाखून और बाल बढ़ते रहते हैं। क्योंकि बाल और नाखून बनाने वाले जो जीवाणु हैं, वे आपके साथ नहीं मरते। वे अपना काम जारी रखते हैं। उनको पता ही नहीं पड़ता कि आप मर गए। वे नाखून और बाल को बढ़ाए चले जाते हैं। और जब आप मरते हैं, तो सात करोड़ कीटाणुओं की संख्या में कमी नहीं होती है और बढ़ती हो जाती है। आपके मरने से जगह खाली हो जाती है और हजारों कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। जिसको आप सड़ना कहते हैं, डिटेरियोरेशन, वह आपके लिए होगा; नए कीटाणुओं के लिए तो जीवन है।

यह पुर, इसमें जो बीच में बसा है इस नगर के, वह पुरुष। यह पुरुष दो तरह से हो सकता है : पर-आयत्त हो सकता है, स्वायत्त हो सकता है। जब यह वासनाग्रस्त होता है, तो यह दूसरे को केंद्र बनाकर घूमने लगता है। सैटेलाइट हो जाता है।

जैसे चांद है। चांद सैटेलाइट है। वह जमीन को केंद्र बनाकर घूमता है। जमीन भी सैटेलाइट है, वह सूर्य को केंद्र बनाकर घूमती है। सूर्य भी सैटेलाइट है, वह किसी महासूर्य को केंद्र बनाकर घूमता है। सब अदर ओरिएंटेड हैं।

लेकिन उन्हें माफ किया जा सकता है, क्योंकि उनकी चेतना इतनी नहीं कि वे जान सकें कि क्या अदर और क्या सेल्फ; क्या स्वयं और क्या पर। आदमी को

माफ नहीं किया जा सकता, वह जानता है। पति पत्नी का सैटेलाइट है, पत्नी के आस-पास घूम रहा है। कभी छोटा वर्तुल बनाता है, कभी बड़ा वर्तुल बनाता है, लेकिन पत्नी के आस-पास घूम रहा है। पत्नी पति की सैटेलाइट है। वह उसके आस-पास घूम रही है। कोई धन के आस-पास घूम रहा है, कोई काम के आस-पास घूम रहा है, कोई पद के आस-पास घूम रहा है-सैटेलाइट, पर-आयत्त। दूसरा केंद्र है, हम तो सिर्फ परिधि पर घूम रहे हैं-यही दिवालियापन है।

लेकिन हम अपने केंद्र स्वयं हैं, किसी के आस-पास नहीं घूम रहे हैं, तो आदमी स्वायत्त है। यही सम्राट होना है। यही स्प्रिचुअल रिचनेस है। जिसको जीसस ने किंगडम आफ गाड, परमात्मा का साम्राज्य कहा, उसको कृष्ण कह रहे हैं, स्वायत्त हुआ पुरुष परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि पर-आयत्त हुआ पुरुष परम दुख को उपलब्ध हो जाता है। दुख यानी पर-आयत्त होना, आनंद यानी स्वायत्त होना।

ये सब समाधिस्थ व्यक्ति की तरफ ही वे इशारे करते जा रहे हैं अर्जुन को। सब दिशाओं से, अनेक-अनेक जगहों से वे इशारे कर रहे हैं कि समाधिस्थ पुरुष यानी क्या। वह जो सवाल पूछ लिया था अर्जुन ने, हो सकता है, वह खुद भी भूल गया हो कि उसने क्या सवाल पूछा था। लेकिन कृष्ण उसके सवाल को समस्त दिशाओं से ले रहे हैं। कहीं से भी उसकी समझ में आ जाए।

तो वे यह कह रहे हैं कि जो स्वयं ही अपना केंद्र बन गया, जिसका अब कोई पर केंद्र नहीं है, ऐसा पुरुष परम ज्ञान को, परम शांति को, परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

अभी इतना। फिर शेष सांझ हम बात करेंगे।

●●●

अठारहवां प्रवचन

विषाद की खाई से ब्राह्मी-स्थिति के शिखर तक

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 65।।

उस निर्मलता के होने पर इसके संपूर्ण दुखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही अच्छी प्रकार स्थिर हो जाती है।

विक्षेपरहित चित्त में शुद्ध अंतःकरण फलित होता है? या शुद्ध अंतःकरण विक्षेपरहित चित्त बन जाता है? कृष्ण जो कह रहे हैं, वह हमारी साधारण साधना की समझ के बिलकुल विपरीत है। साधारणतः हम सोचते हैं कि विक्षेप अलग हों, तो अंतःकरण शुद्ध होगा। कृष्ण कह रहे हैं, अंतःकरण शुद्ध हो, तो विक्षेप अलग हो जाते हैं।

यह बात ठीक से न समझी जाए, तो बड़ी भ्रांतियां जन्मों-जन्मों के व्यर्थ के चक्कर में ले जा सकती हैं। ठीक से काज और इफेक्ट, क्या कारण बनता है

और क्या परिणाम, इसे समझ लेना ही विज्ञान है। बाहर के जगत में भी, भीतर के जगत में भी। जो कार्य-कारण की व्यवस्था को ठीक से नहीं समझ पाता और कार्यों को कारण समझ लेता है और कारणों को कार्य बना लेता है, वह अपने हाथ से ही, अपने हाथ से ही अपने को गलत करता है। वह अपने हाथ से ही अपने को अनबन करता है।

किसान गेहूं बोता है, तो फसल आती है। गेहूं के साथ भूसा भी आता है। लेकिन भूसे को अगर बो दिया जाए, तो भूसे के साथ गेहूं नहीं आता। ऐसे किसान सोच सकता है कि जब गेहूं के साथ भूसा आता है, तो उलटा क्यों नहीं हो सकता है! भूसे को बो दें, तो गेहूं साथ आ जाए-वाइस-वरसा क्यों नहीं हो सकता? लेकिन भूसा बोने से सिर्फ भूसा सड़ जाएगा, गेहूं तो आएगा ही नहीं, हाथ का भूसा भी जाएगा। भूसा आता है गेहूं के साथ, गेहूं भूसे के साथ नहीं आता है।

अंतःकरण शुद्ध हो, तो चित्त के विक्षेप सब खो जाते हैं, विक्षिप्तता खो जाती है। लेकिन चित्त की विक्षिप्तता को कोई खोने में लग जाए, तो अंतःकरण तो शुद्ध होता नहीं, चित्त की विक्षिप्तता और बढ़ जाती है।

जो आदमी अशांत है, अगर वह शांत होने की चेष्टा में और लग जाए, तो अशांति सिर्फ दुगुनी हो जाती है। अशांति तो होती ही है, अब शांत न होने की अशांति भी पीड़ा देती है। लेकिन अंतःकरण कैसे शुद्ध हो जाए? पूछा जा सकता है कि अंतःकरण शुद्ध कैसे हो जाएगा? जब तक विचार आ रहे, विक्षेप आ रहे, विक्षिप्तता आ रही, विकृतियां आ रहीं, तब तक अंतःकरण शुद्ध कैसे हो जाएगा? कृष्ण अंतःकरण शुद्ध होने को पहले रखते हैं, पर वह होगा कैसे?

यहां सांख्य का जो गहरा से गहरा सूत्र है, वह आपको स्मरण दिलाना जरूरी है। सांख्य का गहरा से गहरा सूत्र यह है कि अंतःकरण शुद्ध है ही। कैसे हो जाएगा, यह पूछता ही वह है, जिसे अंतःकरण का पता नहीं है। जो पूछता है, कैसे हो जाएगा शुद्ध? उसने एक बात तो मान ली कि अंतःकरण अशुद्ध है।

आपने अंतःकरण को कभी जाना है? बिना जाने मान रहे हैं कि अंतःकरण अशुद्ध है और उसको शुद्ध करने में लगे हैं। अगर अंतःकरण अशुद्ध नहीं है, तो

आपके शुद्ध करने की सारी चेष्टा व्यर्थ ही हो रही है। और यह चेष्टा जितनी असफल होगी-सफल तो हो नहीं सकती, क्योंकि जो शुद्ध है, वह शुद्ध किया नहीं जा सकता; लेकिन जो शुद्ध है, उसे शुद्ध करने की चेष्टा असफल होगी-असफलता दुख लाएगी, असफलता विषाद लाएगी, असफलता दीनता-हीनता लाएगी, असफलता हारापन, फ्रस्ट्रेशन लाएगी। और बार-बार असफल होकर आप यह कहेंगे, अंतःकरण शुद्ध नहीं होता, अशुद्धि बहुत गहरी है। आप जो निष्कर्ष निकालेंगे, निष्पत्ति निकालेंगे, वह बिलकुल ही उलटी होगी।

एक घर में अंधेरा है। तलवारें लेकर हम घर में घुस जाएं और अंधेरे को बाहर निकालने की कोशिश करें। तलवारें चलाएं, अंधेरे को काटें-पीटें। अंधेरा बाहर नहीं निकलेगा। थक जाएंगे, हार जाएंगे, जिंदगी गंवा देंगे, अंधेरा बाहर नहीं निकलेगा। क्यों ? तो शायद सारी मेहनत करने के बाद हम बैठकर सोचें कि अंधेरा बहुत शक्तिशाली है, इसलिए बाहर नहीं निकलता।

तर्क अनेक बार ऐसे गलत निष्कर्षों में ले जाता है, जो ठीक दिखाई पड़ते हैं; यही उनका खतरा है। अब यह बिलकुल ठीक दिखाई पड़ता है कि इतनी मेहनत की और अंधेरा नहीं निकला, तो इसका मतलब साफ है कि मेहनत कम पड़ रही है, अंधेरा ज्यादा शक्तिशाली है। सचाई उलटी है। अगर अंधेरा शक्तिशाली हो, तब तो किसी तरह उसे निकाला जा सकता है। शक्ति को निकालने के लिए बड़ी शक्ति ईजाद की जा सकती है।

अंधेरा है ही नहीं; यही उसकी शक्ति है। वह है ही नहीं, इसलिए आप उसको शक्ति से निकाल नहीं सकते। वह नान- एक्झिस्टेंशियल है, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। और जिसका अस्तित्व नहीं है, उसे तलवार से न काटा जा सकता है, न धक्के से निकाला जा सकता है। असल में अंधेरा सिर्फ एब्सेंस है किसी चीज की, अंधेरा अपने में कुछ भी नहीं है। अंधेरा सिर्फ अनुपस्थिति है प्रकाश की; बस।

इसलिए आप अंधेरे के साथ सीधा कुछ भी नहीं कर सकते हैं। और अंधेरे के साथ कुछ भी करना हो, तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ता है।

प्रकाश जलाएं, तो अंधेरा नहीं होता। प्रकाश बुझाएं, तो अंधेरा हो जाता है। सीधा अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अंधेरा नहीं है। और जो नहीं है, उसके साथ जो सीधा कुछ करने में लग जाएगा, वह अपने जीवन को ऐसे उलझाव में डाल देता है, जिसके बाहर कोई भी मार्ग नहीं होता। वह एब्सर्डिटी में पड़ जाता है।

अंतःकरण अगर शुद्ध है, तो अंतःकरण को शुद्ध करने की सब चेष्टा खतरनाक है; अंधेरे को निकालने जैसी चेष्टा है। क्योंकि जो नहीं है अशुद्धि, उसे निकालेंगे कैसे? सांख्य कहता है, अंतःकरण अशुद्ध नहीं है। और अगर अंतःकरण भी अशुद्ध हो सकता है, तो इस जगत में फिर शुद्धि का कोई उपाय नहीं है। फिर शुद्ध कौन करेगा? क्योंकि जो शुद्ध कर सकता था, वह अशुद्ध हो गया है।

अंतःकरण अशुद्ध नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो अंतःकरण ही शुद्धि है-दि वेरी प्योरीफिकेशन, दि वेरी प्योरिटी। अंतःकरण शुद्ध ही है। लेकिन अंतःकरण का हमें कोई पता नहीं है कि क्या है। आप किस चीज को अंतःकरण जानते है?

अंग्रेजी में एक शब्द है, कांशिएंस। और गीता के जिन्होंने भी अनुवाद किए हैं, उन्होंने अंतःकरण का अर्थ कांशिएंस किया है। उससे गलत कोई अनुवाद नहीं हो सकता। कांशिएंस अंतःकरण नहीं है। कांशिएंस अंतःकरण का धोखा है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा, क्योंकि वह बहुत गहरे, रूट्स में बैठ गई भ्रांति है सारे जगत में।

जहां भी गीता पढ़ी जाती है, वहां अंतःकरण का अर्थ कांशिएंस कर लिया जाता है। हम भी अंतःकरण से जो मतलब लेते हैं, वह क्या है? आप चोरी करने जा रहे हैं। भीतर से कोई कहता है, चोरी मत करो, चोरी बुरी है। आप कहते हैं, अंतःकरण बोल रहा है। यह कांशिएंस है, अंतःकरण नहीं। यह सिर्फ समाज के द्वारा डाली गई धारणा है, अंतःकरण नहीं। क्योंकि अगर समाज चोरों का हो, तो ऐसा नहीं होगा। ऐसे समाज हैं।

जाट हैं। तो जाट लड़के की शादी नहीं होती, जब तक वह दो-चार चोरियां न कर ले। जाट का लड़का जब चोरी करने जाता है, तो कभी उसके मन में नहीं आता

कि बुरा कर रहा है। अंतःकरण उसके पास भी है, आपके पास ही नहीं है। लेकिन सोशल जो बिल्ट-इन आपके भीतर डाली गई धारणा है, वह उसके पास नहीं है।

मेरे एक मित्र पख्तून इलाके में घूमने गए थे। तो पेशावर में उन्हें मित्रों ने कहा कि पख्तून इलाके में जा रहे हैं, जरा सम्हलकर बैठना। जीप तो ले जा रहे है, लेकिन होशियारी रखना। उन्होंने कहा, क्या, खतरा क्या है? हमारे पास कुछ है नहीं लूटने को। उन्होंने कहा कि नहीं, यह खतरा नहीं है। खतरा यह है कि पख्तून लड़के अक्सर सड़कों पर निशाना सीखने के लिए लोगों को गोली मार देते है- निशाना सीखने के लिए; दुश्मन को नहीं! पख्तून लड़के निशाना सीखने के लिए सड़क के किनारे से चलती हुई कार में गोली मारकर देखते है कि निशाना लगा कि नहीं। मित्र तो बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि आप क्या कहते है, निशाना लगाने के लिए! तो क्या उनके पास कोई अंतःकरण नहीं है?

अंतःकरण तो पख्तून के पास भी है। अंतःकरण किसी की बपौती नहीं है। लेकिन पख्तून के पास, जिसको हिंसा-अहिंसा का सामाजिक बोध कहते है, उसे डालने का कोई बचपन से प्रयास नहीं किया गया है।

एक हिंदू को कहें कि चचेरी बहन से शादी कर ले, तो उसका अंतःकरण इनकार करता है, मुसलमान का नहीं करता। कारण यह नहीं है कि मुसलमान के पास अंतःकरण नहीं है! सिर्फ चचेरी बहन से शादी करने की धारणा का भेद है। वह समाज देता है। वह अंतःकरण नहीं है।

समाज ने एक इंतजाम किया है, बाहर अदालत बनाई है और भीतर भी एक अदालत बनाई है। समाज ने पुख्ता इंतजाम किया है कि बाहर से वह कहता है कि चोरी करना बुरा है; वहां पुलिस है, अदालत है। लेकिन इतना काफी नही है, क्योंकि भीतर भी एक पुलिसवाला होना चाहिए, जो पूरे वक्त कहता रहे कि चोरी करना बुरा है। क्योंकि बाहर के पुलिसवाले को धोखा दिया जा सकता है। उस हालत में भीतर का पुलिसवाला काम पड़ सकता है।

कांशिएंस अंग्रेजी का जो शब्द है, उसको हमें कहना चाहिए अंतस-चेतन, अंतःकरण नहीं। सांख्य का अंतःकरण, बात ही और है। अंतःकरण को

अगर अंग्रेजी में अनुवादित करना हो, तो कांशिएंस शब्द नहीं है। अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है ठीक। क्योंकि अंतःकरण का मतलब होता है, दि इनरमोस्ट इंस्ट्रूमेंट, अंतरतम उपकरण, अंतरतम-जहां तक अंतस में जाया जा सकता है भीतर-वह जो आखिरी है भीतर, वही अंतःकरण है। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब आत्मा नहीं।

अब यह बड़े मजे की बात है, अंतःकरण का मतलब आत्मा नहीं है। क्योंकि आत्मा तो वह है, जो बाहर और भीतर दोनों में नहीं है, दोनों के बाहर है। अंतःकरण वह है, आत्मा के निकटतम जो उपकरण है, जिसके द्वारा हम बाहर से जुड़ते हैं।

समझ लें कि आत्मा के पास एक दर्पण है, जिसमें आत्मा प्रतिफलित होती है, वह अंतःकरण है, निकटतम। आत्मा में पहुंचने के लिए अंतःकरण आखिरी सीढ़ी है। और अंतःकरण आत्मा के इतने निकट है कि अशुद्ध नहीं हो सकता। आत्मा की यह निकटता ही उसकी शुद्धि है।

यह अंतःकरण कांशिएंस नहीं है, जो हमारे भीतर, जब हम सड़क पर चलते है और बाएं न चलकर दाएं चल रहे हों, तो भीतर से कोई कहता है कि दाएं चलना ठीक नही है, बाएं चलना ठीक है। यह अंतःकरण नहीं है। यह केवल सामाजिक आंतरिक व्यवस्था है। यह अंतस-चेतन है, जो समाज ने इंतजाम किया है, ताकि आपको व्यवस्था और अनुशासन दिया जा सके।

समाज अलग होते हैं, व्यवस्था अलग हो जाती है। अमेरिका में चलते हैं, तो बाएं चलने की जरूरत नहीं है। वहां अंतःकरण- जिसको हम अंतःकरण कहते है-वह कहता है, दाएं चलो, बाएं मत चलना। क्योंकि नियम बाएं चलने का नहीं है, दाएं चलने का है। सामाजिक व्यवस्था की जो आंतरिक धारणाएं हैं, वे अंतःकरण नहीं हैं।

तो अंतःकरण का हमें पता ही नहीं है, इसका मतलब यह हुआ। हम जिसे अंतःकरण समझ रहे हैं, वह बिलकुल ही भ्रांत है। अंतःकरण नैतिक धारणा का नाम नहीं है, अंतःकरण मारैलिटी नहीं है। क्योंकि मारैलिटी हजार तरह की होती हैं, अंतःकरण एक ही तरह का होता है। हिंदू की नैतिकता अलग है, मुसलमान

की नैतिकता अलग, जैन की नैतिकता अलग, ईसाई की नैतिकता अलग, अफ्रीकन की अलग, चीनी की अलग। नैतिकताएं हजार हैं, अंतःकरण एक है।

अंतःकरण शुद्ध ही है। आत्मा के इतने निकट रहकर कोई चीज अशुद्ध नहीं हो सकती। जितनी दूर होती है आत्मा से, उतनी अशुद्ध की संभावना बढ़ती है। अगर ठीक से समझें, मोर दि डिस्टेंस, मोर दि इंप्योरिटी। जैसे एक दीया जल रहा है यहां; दीए की बत्ती जल रही है। बत्ती के बिलकुल पास रोशनी का वर्तुल है, वह शुद्धतम है। फिर बत्ती की रोशनी आगे गई; फिर धूल है, हवा है, और रोशनी अशुद्ध हुई। फिर और दूर गई, फिर और अशुद्ध हुई; फिर और दूर गई, फिर और अशुद्ध हुई। और थोड़ी दूर जाकर हम देखते हैं कि रोशनी नहीं है, अंधेरा है। एक-एक कदम रोशनी जा रही है और अंधेरे में डूबती जा रही है।

शरीर तक आते-आते सब चीजें अशुद्ध हो जाती हैं; आत्मा तक जाते-जाते सब शुद्ध हो जाती हैं। शरीर के निकटतम इंद्रियां हैं। इंद्रियों के निकटतम अंतस-इंद्रियां हैं। अंतस-इंद्रियों के निकटतम स्मृति है। स्मृति के निकटतम बुद्धि है-प्रायोगिक। प्रायोगिक, एप्लाइड इंटलेक्ट के निकटतम अप्रायोगिक बुद्धि है। अप्रायोगिक बुद्धि के नीचे अंतःकरण है। अंतःकरण के नीचे आत्मा है। आत्मा के नीचे परमात्मा है।

ऐसा अगर खयाल में आ जाए, तो सांख्य कहता है कि अंतःकरण शुद्ध ही है। वह कभी अशुद्ध हुआ नहीं। लेकिन हमने अंतःकरण को जाना नहीं है, इसलिए लोग पूछते, अंतःकरण कैसे शुद्ध हो? अंतःकरण शुद्ध नहीं किया जा सकता। करेगा कौन? और जो शुद्ध है ही, वह शुद्ध कैसे किया जा सकता है? पर जाना जा सकता है कि शुद्ध है। कैसे जाना जा सकता है?

एक ही रास्ता है-पीछे हटें, पीछे हटें, अपने को पीछे हटाएं, अपनी चेतना को सिकोड़ें, जैसे कछुआ अपने अंगों को सिकोड़ लेता है। शरीर को भूलें, इंद्रियों को भूलें। छोड़ें बाहर की परिधि को, और भीतर चलें। अंतस-इंद्रियों को छोड़ें, और भीतर चलें। स्मृति को छोड़ें, और भीतर चलें। भीतर याद आ रही है, शब्द आ रहे हैं, विचार आ रहे हैं, स्मृति आ रही है। छोड़ें; कहें कि यह भी मैं नहीं हूं। कहें कि नेति-

नेति, यह भी मैं नहीं हूं। हैं भी नहीं, क्योंकि जो देख रहा है भीतर कि यह स्मृति से विचार आ रहा है, वह अन्य है, वह भिन्न है, वह पृथक है। जानें कि यह मैं नहीं हूं। आप मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। निश्चित ही, आप मुझे दिखाई पड़ रहे है, पक्का हो गया कि मै आप नहीं हूं। नहीं तो देखेगा कौन आपको ? देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला भिन्न हैं, दृश्य और द्रष्टा भिन्न हैं।

यह सांख्य का मौलिक साधना-सूत्र है, दृश्य और द्रष्टा भिन्न है। फिर सांख्य की सारी साधना इसी भिन्नता के ऊपर गहरे उतरती है। फिर सांख्य कहता है, जो भी चीज दिखाई पड़ने लगे, समझना कि इससे भिन्न हूं। भीतर से देखें, शरीर दिखाई पड़ता है। और भीतर देखें, हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। आप भिन्न हैं। और भीतर देखें, विचार दिखाई पड़ते है। आप भिन्न हैं। और भीतर देखें, और भीतर देखें, समाज की धारणाएं हैं, चित्त पर बहुत सी परतें हैं-वे सब दिखाई पड़ती है। और उतरते जाएं। आखिर में उस जगह पहुंच जाते है, जहां अंतःकरण है, सब शुद्धतम है। लेकिन शुद्धतम, वह भी भिन्न है; वह भी अलग है। इसीलिए उसको आत्मा नहीं कहा; उसको भी अंतःकरण कहा। क्योंकि आत्मा उस शुद्धतम के भी पार है। शुद्धतम का अनुभव कैसे होगा ? आपको अशुद्धतम का अनुभव कैसे होता है ?

कोई मुझसे आकर पूछता है, शुद्ध का हम अनुभव कैसे करेंगे? तो उसको मैं कहता हूं कि तुम बगीचे की तरफ चले। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन ठंडी हवा मालूम होने लगी। तुम्हें कैसे पता चल जाता है कि ठीक चल रहे हैं ? क्योंकि ठंडी हवा मालूम होने लगी। फिर तुम और बढ़ते हो; सुगंध भी आने लगी; तब तुम जानते हो कि और निकट है बगीचा। अभी बगीचा आ नहीं गया है। शायद अभी दिखाई भी नहीं पड़ रहा हो। और निकट बढ़ते हो, अब हरियाली दिखाई भी पड़ने लगी। अब बगीचा और निकट आ गया है। अभी फिर भी हम बगीचे में नहीं पहुंच गए हैं। फिर हम बगीचे के बिलकुल द्वार पर खड़े हो गए। सुगंध है, शीतलता है, हरियाली है, चारों तरफ शांति और सन्नाटा और एक वेल बीइंग, एक स्वास्थ्य का भाव घेर लेता है।

ऐसे ही जब कोई भीतर जाता है, तो आत्मा के जितने निकट पहुंचता है,

उतना ही शांत, उतना ही मौन, उतना ही प्रफुल्लित, उतना ही प्रसन्न, उतना ही शीतल होने लगता है। जैसे-जैसे भीतर चलता है, उतना ही प्रकाशित, उतना ही आलोक से भरने लगता है। जैसे-जैसे भीतर चलने लगता है, कदम-कदम भीतर सरकता है, कहता है, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। पहचानता है, रिकग्नाइज करता है-यह भी नहीं। यह दृश्य हो गया, तो मैं नहीं हूं। मैं तो वहां तक चलूंगा, जहां सिर्फ द्रष्टा रह जाए। तो द्रष्टा जब अंत में रह जाए, उसके पहले जो मिलता है, वह अंतःकरण है। अंतःकरण जो है, वह अंतर्यात्रा का आखिरी पड़ाव है। आखिरी पड़ाव, मंजिल नहीं। मंजिल उसके बाद है।

यह अंतःकरण शुद्ध ही है, इसीलिए सांख्य की बात कठिन है। कोई हमें समझाए कि शुद्ध कैसे हो, तो समझ में आता है। सांख्य कहता है, तुम शुद्ध हो ही। तुम कभी गए ही नहीं वहां तक जानने, जहां शुद्धि है। तुम बाहर ही बाहर घूम रहे हो घर के। तुम कभी घर के भीतर गए ही नहीं। घर के गर्भ में परम शुद्धि का वास है। उस परम शुद्धि के बीच आत्मा और उस आत्मा के भी बीच परमात्मा है। पर वहां गए ही नहीं हम कभी। घर के बाहर घूम रहे हैं। और घर के बाहर की गंदगी है।

एक आदमी घर के बाहर घूम रहा है और सड़क पर गंदगी पड़ी है। वह कहता है इस गंदगी को देखकर कि मेरे घर के अंदर भी सब गंदा होगा, उसको मैं कैसे शुद्ध करूं? हम उसे कहते हैं, यह गंदगी घर के बाहर है। तुम घर के भीतर चलो; वहां कोई गंदगी नहीं है। तुम इस गंदगी से आब्सेस्ड मत हो जाओ। यह घर के बाहर होने की वजह से है। यहां तक वह शुद्धि की धारा नहीं पहुंच पाती है, माध्यमों में विकृत हो जाती है, अनेक माध्यमों में विकृत हो जाती है। अंदर चलो, भीतर चलो, गो बैक, वापस लौटो।

तो कृष्ण कह रहे हैं, अंतःकरण शुद्ध होता है, ऐसा जिस दिन जाना जाता है, उसी दिन चित्त के सब विक्षेप, चित्त की सारी विक्षिप्तता खो जाती है-खोनी नहीं पड़ती।

इसे ऐसा समझें, एक पहाड़ के किनारे एक खाई में हम बसे हैं। अंधेरा है बहुत। सीलन है। सब गंदा है। पहाड़ को घेरे हुए बादल घूमते हैं। वे वादी को,

खाई को ढक लेते हैं। उनकी वजह से ऊपर का सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता। उनकी काली छायाएं डोलती हैं घाटी में और बड़ी भयानक मालूम होती हैं।

और एक आदमी शिखर पर खड़ा है, वह कहता है, तुम पहाड़ चढ़ो। लेकिन हम नीचे से पूछते हैं कि इन बादलों से छुटकारा कैसे होगा? ये काली छायाएं सारी घाटी को घेरे हुए हैं; इनसे मुक्ति कैसे होगी? वह आदमी कहता है, तुम इनकी फिक्र छोड़ो, तुम पहाड़ चढ़ो। तुम उस जगह आ जाओगे, जहां तुम पाओगे कि बदलियां नीचे रह गई हैं और तुम ऊपर हो गए हो। और जिस दिन तुम पाओगे कि बदलियां नीचे रह गई है और तुम ऊपर हो गए हो, उस दिन बदलियां तुम पर कोई छाया नहीं डालतीं।

बदलियां सिर्फ उन्हीं पर छायाएं डालती है, जो बदलियों के नीचे है। बदलियां उन पर छाया नहीं डालतीं, जो बदलियों के ऊपर हैं। अगर कभी हवाई जहाज में आप उड़े हैं, तो बदलियां फिर आप पर छाया नहीं डालतीं। बदलियों का वितान नीचे रह जाता है, आप ऊपर हो जाते है। लेकिन पृथ्वी पर बदलियां बहुत छाया डालती हैं।

मन के जो विक्षेप हैं, विक्षिप्तताएं है, विकार है, वे बदलियो की तरह है। और हम पर छाया डालते हैं, क्योंकि हम घाटियों में जीते हैं।

कृष्ण कहते हैं, चलो अंतःकरण की शुद्धि की यात्रा पर। जब तुम अंतःकरण पर पहुंचोगे, तब तुम हंसोगे कि ये बदलियां, जो बड़ी पीड़ित करती थीं, अब ये नीचे छूट गई हैं। अब इनका कोई खयाल भी नहीं आता; अब ये कोई छाया भी नहीं डालतीं। अब इनसे कोई संबंध ही नहीं है। अब सूरज आमने-सामने है। अब बीच में कोई बदलियों का वितान नहीं है, कोई जाल नहीं है।

विचार घाटियों के ऊपर बादलों की भांति है। जो अंतःकरण तक पहुंचता है, वह शिखर पर पहुंच जाता है। वहां सूर्य का प्रकट प्रकाश है। यह यात्रा है, यह शुद्धि नहीं है। यह यात्रा है, शुद्धि फल है। पता चलता है कि शुद्ध है।

कृष्ण कह रहे है, अंतःकरण शुद्ध है, वहां चित्त का कोई विक्षेप नहीं है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।। 66।।

अयुक्त पुरुष के अंतःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती है और उसके अंतःकरण में भावना भी नहीं होती है और बिना भावना वाले पुरुष को शांति भी नहीं होती है। फिर शांतिरहित पुरुष को सुख कैसे हो सकता है?

अयुक्त पुरुष को शांति नहीं। युक्त पुरुष को शांति है। अयुक्त पुरुष क्या? युक्त पुरुष क्या? अयुक्त पुरुष को भावना नहीं, शांति नहीं, आनंद नहीं। यह युक्त और अयुक्त का क्या अर्थ है?

अयुक्त का अर्थ है, अपने से ही अलग, अपने होने से ही दूर पड़ गया, अपने से ही बाहर पड़ गया, अपने से ही टूट गया-स्प्लिट।

लेकिन अपने से कोई कैसे टूट सकता है? अपने से कोई कैसे अयुक्त हो सकता है? अपने से टूटना तो असंभव है। अगर हम अपने से ही टूट जाएं, इससे बड़ी असंभव बात कैसे हो सकती है! क्योंकि अपने का मतलब ही यह होता है कि अगर मै अपने से ही टूट जाऊं, तो मेरे दो अपने हो गए-एक जिससे मैं टूट गया, और एक जो मैं टूटकर हूं। अपने से टूटना हो नहीं सकता।

और अपने से जुड़ने का भी क्या मतलब, अपने से युक्त होने का भी क्या मतलब, जब टूट ही नहीं सकता हूं! तो फिर बात कहां है?

सच में कोई अपने से टूटता नहीं, लेकिन अपने से टूटता है, ऐसा सोच सकता है, ऐसा विचार सकता है। ऐसे भाव, ऐसे सम्मोहन से भर सकता है कि मैं अपने से टूट गया हूं।

आप रात सोए। सपना देखा कि अहमदाबाद में नहीं, कलकत्ते में हूं। कलकत्ते में चले नहीं गए। ऐसे सोए-सोए कलकत्ता जाने का अभी तक कोई उपाय नहीं है। अपनी खाट पर अहमदाबाद में ही पड़े हैं। लेकिन स्वप्न देख रहे हैं कि कलकत्ता पहुंच गए। सुबह जल्दी काम है अहमदाबाद में। अब चित्त बड़ा घबड़ाया, यह तो कलकत्ता आ गए! सुबह काम है। अब वापस अहमदाबाद

जाना है! अब सपने में लोगों से पूछ रहे हैं कि अहमदाबाद कैसे जाएं! ट्रेन पकड़ें, हवाई जहाज पकड़ें, बैलगाड़ी से जाएं। जल्दी पहुंचना है, सुबह काम है और यह रात गुजरी जाती है।

आपकी घबड़ाहट उचित है, अनुचित तो नहीं। अहमदाबाद में काम है; कलकत्ते में हैं। बीच में फासला बड़ा है। सुबह करीब आती जाती है। वाहन खोज रहे हैं। लेकिन क्या अहमदाबाद आने के लिए वाहन की जरूरत पड़ेगी? क्योंकि अहमदाबाद से आप गए नहीं हैं क्षणभर को भी, इंचभर को भी। न भी मिले वाहन, तो जैसे ही नींद टूटेगी, पाएंगे कि लौट आए। मिल जाए, तो भी पाएंगे कि लौट आए। असल में गए ही नहीं हैं, लौट आना शब्द ठीक नहीं है। सिर्फ गए के भ्रम में थे।

तो जब कृष्ण कहते हैं, अयुक्त और युक्त, तो वास्तविक फर्क नहीं है। कोई अयुक्त तो होता नहीं कभी, सिर्फ अयुक्त होने के भ्रम मे होता है, स्वप्न में होता है। सिर्फ एक ड्रीम क्रिएशन है, एक स्वप्न का भाव है कि अपने से अलग हो गया हूं। युक्त पुरुष वह है, जो इस स्वप्न से जाग गया और उसने देखा कि मैं तो अपने से कभी भी अलग नहीं हुआ हूं।

अयुक्त पुरुष में भावना नहीं होती। क्यों नहीं होती? भावना से मतलब आप मत समझ लेना आपकी भावना, क्योंकि हम सब अयुक्त पुरुष हैं, हममें भावना बहुत है। इसलिए कृष्ण इस भावना की बात नहीं कर रहे होंगे, जो हममें है।

एक आदमी कहता है कि भावना बहुत है। पत्नी मर गई है, रो रहा है। बेटा बीमार पड़ा है, आंसू गिरा रहा है। कहता है, भावना बहुत है। यह भावना नहीं है, यह फीलिंग नहीं है, यह सिर्फ सेंटिमेंटलिटी है। फर्क क्या है? अगर यह भावना नहीं है, सिर्फ भावना का धोखा है, तो फर्क क्या है?

एक आदमी रो रहा है अपने बेटे के पास बैठा हुआ-मेरा बेटा बीमार है और चिकित्सक कहते हैं, बचेगा नहीं, मर जाएगा। रो रहा है; छाती पीट रहा है। उसके प्राणों पर बड़ा संकट है। तभी हवा का एक झोंका आता है और टेबल से एक कागज उड़कर उसके पैरों पर नीचे गिर जाता है। वह उसे यूं ही उठाकर देख लेता है। पाता है कि उसकी पत्नी को लिखा किसी का प्रेम-पत्र है। पता चलता है

पत्र को पढ़कर कि बेटा अपना नहीं है, किसी और से पैदा हुआ है। सब भावना विदा हो गई। कोई भावना न रही। दवाई की बोतलें हटा देता है। जहर की बोतलें रख देता है। रात एकांत में गरदन दबा देता है। वही आदमी जो उसे बचाने के लिए कह रहा था, वही आदमी गरदन दबा देता है।

भावना का क्या हुआ? यह कैसी भावना थी? यह भावना नहीं थी। यह मेरे के लिए भावना का मिथ्या भ्रम था। मेरा नहीं, तो बात समाप्त हो गई।

टाल्सटाय ने एक कहानी लिखी है। लिखा है कि एक आदमी का बेटा बहुत दिन से घर के बाहर चला गया। बाप ही क्रोधित हुआ था, इसलिए चला गया था। फिर बाप बूढ़ा होने लगा। बहुत परेशान था। अखबारों में खबर निकाली, संदेशवाहक भेजे। फिर उस बेटे का पत्र आ गया कि मैं आ रहा हूं। आपने बुलाया, तो मैं आता हूं। मैं फलां-फलां दिन, फलां-फलां ट्रेन से आ जाऊंगा।

स्टेशन दूर है, देहात में रहता है बाप। अपनी बग्घी कसकर वह उसे लेने आया। मालगुजार है, जमींदार है। लेकिन उसके आने पर पता चला कि ट्रेन आ चुकी है। वह सोचता था चार बजे आएगी, वह दो बजे आ गई। तो धर्मशाला में ठहरा जाकर। अब अपने बेटे की तलाश करे कि वह कहां गया!

धर्मशाला में कोई जगह खाली नहीं है। धर्मशाला के मैनेजर को उसने कहा कि कोई भी जगह तो खाली करवाओ ही। वह जमींदार है। तो उसने कहा कि अभी एक कोई भिखमंगा-सा आदमी आकर ठहरा है इस कमरे में-उसको निकाल बाहर कर दें? उसने कहा कि निकाल बाहर करो। उसे पता नहीं कि वह उसका बेटा है। उसे निकाल बाहर कर दिया गया। वह अपने कमरे में आराम से...। उसने आदमी भेजे कि गांव में खोजो।

वह बेटा बाहर सीढ़ियों पर बैठा है। सर्द रात उतरने लगी। उस गरीब लड़के ने बार-बार कहा कि मुझे भीतर आ जाने दें, बर्फ पड़ रही है और मुझे बहुत दर्द है पेट में। पर उसने कहा कि यहां गड़बड़ मत करो; भाग जाओ यहां से; रात मेरी नींद हराम मत कर देना। फिर रात पेट की तकलीफ से वह लड़का चीखने लगा। तो उसने नौकरों से उसे उठवाकर सड़क पर फिंकवा दिया।

फिर सुबह वह मर गया। सुबह जब वह जमींदार उठा, तो वह लड़का मरा हुआ पड़ा था। लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। लोग कह रहे थे, कौन है, क्या है, कुछ पता लगाओ। किसी ने उसके खीसे में खोज-बीन की तो चिट्ठी मिल गई। तब तो उन्होंने कहा कि अरे, वह जमींदार जिसको खोज रहा है, यह वही है। यह जमींदार को लिखी गई चिट्ठी-पत्री, यह अखबारों की कटिंग! यह उसका लड़का है।

वह जमींदार बाहर बैठकर अपना हुक्का पी रहा है। जैसे ही उसने सुना कि मेरा लड़का है, एकदम भावना आ गई। अब वह छाती पीट रहा है, अब वह रो रहा है। अब उस लड़के को-मरे को-कमरे के अंदर ले गया है। जिंदा को रात नहीं ले गया। मरे को दिन में कमरे के अंदर ले गया। अब उसकी सफाई की जा रही है-मरे पर। मरे को नए कपड़े पहनाए जा रहे हैं! वह जमींदार का बेटा है। अब उसको घर ले जाने की तैयारी चल रही है। और रात उसने कई बार प्रार्थना की, मुझे भीतर आने दो, तो उसको नौकरों से सड़क पर फिंकवा दिया। यह भावना है?

नहीं, यह भावना का धोखा है। भावना मेरे-तेरे से बंधी नहीं होती, भावना भीतर का सहज भाव है। अगर भावना होती, तो उसे कमरे के बाहर निकालना मुश्किल होता। अगर भावना होती, तो रात उसके पेट में दर्द है, सर्द रात है, बर्फ पड़ती है, उसे बाहर बिठाना मुश्किल होता। यह सवाल नहीं है कि वह कौन है। सवाल यह है कि भाव है भीतर!

ध्यान रहे, भावना स्वयं की स्फुरणा है। दूसरे का सवाल नहीं कि वह कौन है। मर रहा है एक आदमी, नौकरों से फिंकवा दिया उसको उठवाकर!

टाल्सटाय ने जब यह कहानी लिखी, तो उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि यह कहानी मेरी एक अर्थों में आटोबायोग्राफी भी है। यह मेरा आत्मस्मरण भी है। क्योंकि खुद टाल्सटाय शाही परिवार का था।

उसने लिखा है, मेरी मां मैं समझता था बहुत भावनाशील है। लेकिन यह तो मुझे बाद में उदघाटन हुआ कि उसमें भावना जैसी कोई चीज ही नहीं है। क्यों समझता था कि भावना थी? क्योंकि थिएटर में उसके चार-चार रूमाल भीग

जाते थे आंसुओं से। जब नाटक चलता और कोई दुख, ट्रेजेडी होती, तो वह ऐसी धुआंधार रोती थी कि नौकर रूमाल लिए खड़े रहते-शाही घर की लड़की थी-तत्काल रूमाल बदलने पड़ते थे। चार-चार, छह-छह, आठ-आठ रूमाल एक नाटक, एक थिएटर में भीग जाते। तो टाल्सटाय ने लिखा है कि मैं उसके बगल में बैठकर देखा करता था, मेरी मां कितनी भावनाशील!

लेकिन जब मैं बड़ा हुआ तब मुझे पता चला कि उसकी बग्घी बाहर छह घोड़ों में जुती खड़ी रहती थी और आज्ञा थी कि कोचवान बग्घी पर ही बैठा रहे। क्योंकि कब उसका मन हो जाए थिएटर से जाने का, तो ऐसा न हो कि एक क्षण को भी कोचवान ढूंढ़ना पड़े। बाहर बर्फ पड़ती रहती और अक्सर ऐसा होता कि वह थिएटर में नाटक देखती, तब तक एक-दो कोचवान मर जाते। उनको फेंक दिया जाता, दूसरा कोचवान तत्काल बिठाकर बग्घी चला दी जाती। वह औरत बाहर आकर देखती कि मुरदे कोचवान को हटाया जा रहा है और जिंदा आदमी को बिठाया जा रहा है। और वह थिएटर के लिए रोती रहती, वह थिएटर में जो ट्रेजेडी हो गई!

तो टाल्सटाय ने लिखा है कि एक अर्थ में यह कहानी मेरी आटोबायोग्राफिकल भी है, आत्म-कथ्यात्मक भी है। ऐसा मैने अपनी आंख से देखा है। तब मुझे पता चला कि भावना कोई और चीज होगी। फिर यह चीज भावना नहीं है।

जिसको हम भावना कहते हैं, कृष्ण उसको भावना नहीं कह रहे। भावना उठती ही उस व्यक्ति में है, जो अपने से संयुक्त है, जो अपने में युक्त है। युक्त यानी योग को उपलब्ध, युक्त यानी जुड़ गया जो, संयुक्त। अयुक्त अर्थात वियुक्त-जो अपने से जुड़ा हुआ नहीं है। वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा रहता है। युक्त सदा अपने से जुड़ा रहता है।

वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा रहता है। उसके सब लिंक दूसरों से होते हैं। वह किसी का पिता है, किसी का पति है, किसी का मित्र है, किसी का शत्रु है, किसी का बेटा है, किसी का भाई है, किसी की बहन है, किसी की पत्नी है।

लेकिन खुद कौन है, इसका उसे कोई पता नहीं होता। उसकी अपने बाबत सब जानकारी दूसरों के बाबत जानकारी होता है। पिता है, अर्थात बेटे से कुछ संबंध है। पति है, यानी पत्नी से कोई संबंध है। उसकी अपने संबंध में सारी खबर दूसरों से जुड़े होने की होती है।

अगर हम उससे पूछें कि नहीं, तू पिता नहीं, भाई नहीं, मित्र नहीं-तू कौन है? हू आर यू? तो वह कहेगा, कैसा फिजूल सवाल पूछते हैं! मैं तो पिता हूं, मै तो पति हूं, मैं तो क्लर्क हूं, मैं तो मालिक हूं। लेकिन ये सब फंक्शंस हैं। यह सब दूसरों से जुड़े होना है।

अयुक्त व्यक्ति दूसरों से जुड़ा होता है। जो दूसरों से जुड़ा होता है, उसमें भावना कभी पैदा नहीं होती। क्योंकि भावना तभी पैदा होती है, जब कोई अपने से जुड़ता है। जब अपने भीतर के झरनों से कोई जुड़ता है, तब भावना का स्फुरण होता है। जो दूसरों से जुड़ता है, उसमें भावना नहीं होती-एक। जो दूसरों से जुड़ा होता है, वह सदा अशांत होता है-दो। क्योंकि शांति का अर्थ ही अपने भीतर जो संगीत की अनंत धारा बह रही है, उससे संयुक्त हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

शांति का अर्थ है, इनर हार्मनी; शांति का अर्थ है, मैं अपने भीतर तृप्त हूं, संतुष्ट हूं। अगर सब भी चला जाए, चांद-तारे मिट जाएं, आकाश गिर जाए, पृथ्वी चली जाए, शरीर गिर जाए, मन न रहे, फिर भी मैं जो हूं, काफी हूं-मोर दैन इनफ-जरूरत से ज्यादा, काफी हूं।

पाम्पेई नगर में, पाम्पेई का जब विस्फोट हुआ, ज्वालामुखी फूटा, तो सारा गांव भागा। आधी रात थी। गांव में एक फकीर भी था। कोई अपनी सोने की तिजोरी, कोई अपनी अशर्फियों का बंडल, कोई फर्नीचर, कोई कुछ, कोई कुछ, जो जो बचा सकता है, लोग लेकर भागे। फकीर भी चला भीड़ में; चला, भागा नहीं।

भागने के लिए या तो पीछे कुछ होना चाहिए या आगे कुछ होना चाहिए। भागने के लिए या तो पीछे कुछ होना चाहिए, जिससे भागो; या आगे कुछ होना चाहिए, जिसके लिए भागो।

सारा गांव भाग रहा है, फकीर चल रहा है। लोगों ने उसे धक्के भी दिए और कहा कि यह कोई चलने का वक्त है! भागो। पर उसने कहा, किससे भागूं और किसके लिए भागूं? लोगों ने कहा, पागल हो गए हो! यह कोई वक्त चलने का है। कोई टहल रहे हो तुम! यह कोई तफरीह हो रही है!

उस आदमी ने कहा, लेकिन मैं किससे भागूं! मेरे पीछे कुछ नहीं, मेरे आगे कुछ नहीं। लोगों ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उससे कहा कि कुछ बचाकर नहीं लाए! उसने कहा, मेरे सिवाय मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैंने कभी कोई चीज बचाई नहीं, इसलिए खोने का उपाय नहीं है। मैं अकेला काफी हूं।

कोई रो रहा है कि मेरी तिजोरी छूट गई। कोई रो रहा है कि मेरा यह छूट गया। कोई रो रहा है कि मेरा वह छूट गया। सिर्फ एक आदमी उस भीड़ में हंस रहा है। लोग उससे पूछते हैं, तुम हंस क्यों रहे हो? क्या तुम्हारा कुछ छूटा नहीं? वह कहता है कि मैं जितना था, उतना यहां भी हूं। मेरा कुछ भी नहीं छूटा है।

उस अशांत भीड़ में अकेला वही आदमी है, जिसके पास कुछ भी नहीं है। बाकी सब कुछ न कुछ बचाकर लाए हैं, फिर भी अशांत हैं। और वह आदमी कुछ भी बचाकर नहीं लाया और फिर भी शांत है। बात क्या है?

युक्त पुरुष शांत हो जाता है, अयुक्त पुरुष अशांत होता है। ज्ञानी युक्त होकर शांति को उपलब्ध हो जाता है।

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।। 67।।
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। 68।।

क्योंकि, जल में वायु नाव को जैसे कंपित कर देता है,
वैसे ही विषयों में विचरती हुई इंद्रियों के बीच में
जिस इंद्रिय के साथ मन रहता है, वह एक ही इंद्रिय
इस अयुक्त पुरुष की प्रज्ञा का हरण कर लेती है।

इससे हे महाबाहो, जिस पुरुष की इंद्रियां सब प्रकार
इंद्रियों के विषयों से वश में की हुई होती हैं,
उसकी प्रज्ञा स्थिर होती है।

जैसे नाव चलती हो और हवा की आंधियों के झोंके उस नाव को डांवाडोल कर देते हैं; आंधियां तेज हों, तो नाव डूब भी जाती है; ऐसे ही कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जिसके चित्त की शक्ति विषयों की तरफ विक्षिप्त होकर भागती है, उसका मन आंधी बन जाता है, उसका मन तूफान बन जाता है। उस आंधी और तूफान में शांति की, समाधि की, स्वयं की नाव डूब जाती है। लेकिन अगर आंधियां न चलें, तो नाव डगमगाती भी नहीं। अगर आंधियां बिलकुल न चलें, तो नाव के डूबने का उपाय ही नहीं रह जाता।

ठीक ऐसे ही मनुष्य का चित्त जितने ही झंझावात से भर जाता है वासनाओं के, जितने ही जोर से चित्त की ऊर्जा और शक्ति विषयों की तरफ दौड़ने लगती है, वैसे ही जीवन की नाव डगमगाने लगती है और डूबने लगती है।

ज्ञानी पुरुष इस सत्य को देखकर, इस सत्य को पहचानकर यह चित्त की वासना की आंधियो को नहीं दौड़ाता। क्या मतलब है? रोक लेता है? लेकिन आंधियां अगर रोकी जाएंगी, तो भी आंधियां ही रहेंगी। और दौड़ रही आंधियां शायद कम संघातक हों, रोकी गई आंधियां शायद और भी संघातक हो जाएं। तो क्या ज्ञानी पुरुष आंधियों को रोक लेता है, रिस्ट्रेन करता है? अगर रोकेगा, तो भी आंधियां आंधियां ही रहेंगी और रुकी आंधियों का वेग और भी बढ़ जाएगा। तो क्या करता है ज्ञानी पुरुष?

यह बहुत मजे की और समझने की बात है कि आंधियां रोकनी नहीं पड़तीं, सिर्फ चलानी पड़ती हैं। रोकनी नहीं पड़तीं, सिर्फ चलानी पड़ती हैं। आप न चलाएं, तो रुक जाती हैं। क्योंकि आंधियां कहीं बाहर से नहीं आ रही हैं, आपके ही सहयोग, कोआपरेशन से आ रही हैं।

मैं इस हाथ को हिला रहा हूं। इस हाथ को हिलने से मुझे रोकना नहीं

पड़ता। जब रोकता हूं, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि अब नहीं हिलाता हूं। कोई हाथ अगर बाहर से हिलाया जा रहा हो, तो मुझे रोकना पड़े। मैं ही हिला रहा हूं, तो रोकने का क्या मतलब होता है! शब्द में रोकना क्रिया बनती है, उससे भ्रांति पैदा होती है। यथार्थ में, वस्तुतः रोकना नहीं पड़ता, सिर्फ चलाता नहीं हूं कि हाथ रुक जाता है।

एक झेन फकीर हुआ, उसका नाम था रिंझाई। एक आदमी उसके पास गया और उसने कहा कि मैं कैसे रोकूं? उस फकीर ने कहा, गलत सवाल मेरे पास पूछा तो ठीक नहीं होगा। यह डंडा देखा है! रिंझाई एक डंडा पास रखता था। और वह दुनिया बहुत कमजोर है, जहां फकीर के पास डंडा नहीं होता। कृष्ण कुछ कम डंडे की बात नहीं करते!

एक मित्र कल मुझसे कह रहे थे कि मेरी हालत भी अर्जुन जैसी है। आप मुझे सम्हालना! मेरे मन में हुआ कि उनसे कहूं कि अगर कृष्ण जैसा एक दफा तुमसे कह दूं, महामूर्ख! तुम दुबारा लौटकर न आओगे। तुम आओगे ही नहीं।

अर्जुन होना भी आसान नहीं है। वह कृष्ण उसको डंडे पर डंडे दिए चले जाते हैं। भागता नहीं है। संदेह है, लेकिन निष्ठा में भी कोई कमी नहीं है। संदेह है, तो सवाल उठाता है। निष्ठा में भी कोई कमी नहीं है, इसलिए भागता भी नहीं है।

रिंझाई ने कहा कि देखा है यह डंडा! झूठे गलत सवाल पूछेगा; सिर तोड़ दूंगा।

उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं आप! सिर मेरा वैसे ही अपनी वासनाओं से टूटा जा रहा है। आप मुझे कोई तरकीब रोकने की बताएं। रिंझाई ने कहा, रोकने की बात नहीं है, मैं तुझसे यह पूछता हूं, किस तरकीब से वासनाओं को चलाता है? क्योंकि तू ही चलाने वाला है, तो रोकने की तरकीब पूछनी पड़ेगी!

एक आदमी दौड़ रहा है और हमसे पूछता है, कैसे रुकें? रुकना पड़ता है! सिर्फ नहीं दौड़ना पड़ता है। रुकना नहीं पड़ता है, सिर्फ नहीं दौड़ना पड़ता है।

हां, कोई उसको घसीट रहा हो, कोई उसकी गरदन में बैल की तरह रस्सी बांधकर खींच रहा हो, तब भी कोई सवाल है। कोई उसके पीछे से उसको धक्के दे रहा हो, तब भी कोई सवाल है। न उसे कोई घसीट रहा है, न कोई पीछे से

धक्के दे रहा है, वह आदमी दौड़ रहा है। और कहता है, मै कैसे रुकूं ? तो उसे इतना ही कहना पड़ेगा, तू गलत ही सवाल पूछ रहा है। दौड़ भी तू ही रहा है, कैसे रुकने की बात भी तू ही पूछ रहा है। निश्चित ही तू रुकना नहीं चाहता, इसीलिए पूछ रहा है।

जो लोग रुकना नहीं चाहते, वे यही पूछते रहते है, कैसे रुकें ? इसी मे समय गंवाते रहते है। वे पूछते है, हाऊ टु डू इट ? करना नही चाहते है। क्योंकि मजा यह है कि वासना को कैसे चलाएं, इसे पूछने आप कभी किसी के पास नहीं गए, बड़े मजे से चला रहे है।

तो कृष्ण कह रहे है कि जो इन आंधियों को नहीं चलाता है-रोक लेता है नही-नही चलाता है।

हमारा कोआपरेशन मांगती है वासना। आपने कोई ऐसी वासना देखी है, जो आपके बिना सहयोग के इंचभर सरक जाए! कभी बिना आपके सहयोग के आपके भीतर कोई भी वासना सरकी है इंचभर! तो फिर जरा लौटकर देखना। जब वासना सरके, तो खड़े हो जाना और कहना कि मेरा सहयोग नही, अब तू चल। और आप पाएंगे, वही गिर गई-वहीं-इंचभर भी नहीं जा सकती। आपका कोआपरेशन चाहिए।

एक मेरे मित्र हैं, उनको बड़ा क्रोध आता है। बड़े मंत्र पढ़ते है, बड़ी प्रार्थनाएं करते है, मंदिर जाते है और वहां से और क्रोधी होकर लौटते है। क्रोध नहीं जाता। बस, उनकी वही परेशानी है कि क्रोध! पर मैंने उनसे कहा कि तुम ही क्रोध करते हो कि कोई और करता है ? उन्होंने कहा कि मैं ही करता हूं, लेकिन फिर भी जाता नहीं। कैसे जाए ?

मैंने कहा कि अब यह सब छोड़ो। यह कागज मैं तुम्हें लिखकर देता हूं। कागज लिखकर उन्हें दे दिया। उसमें मैंने बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया कि अब मुझे क्रोध आ रहा है। मैंने कहा, इसे खीसे में रखो और जब भी क्रोध आए, तो इसे देखकर पढ़ना और फिर खीसे में रखना, और कुछ मत करना। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा ? मैं बड़े-बड़े ताबीज भी बांध चुका! मैंने कहा, छोड़ो ताबीज तुम। तुम इसको खीसे में रखो। पंद्रह दिन बाद मेरे पास आना।

पंद्रह दिन बाद नहीं, वे पांच ही दिन बाद आ गए। और कहने लगे कि क्या जादू है? क्योंकि जैसे ही मैं इसको पढ़ता हूं कि अब मुझे क्रोध आ रहा है, पता नहीं भीतर क्या होता है-गया! कोआपरेशन नहीं मिल पाता। एक सेकेंड को कोआपरेशन चूक जाए-गया।

फिर तो वे कहने लगे, अब तो खीसे तक अंदर हाथ भी नहीं लगाना पड़ता। इधर हाथ गया कि अक्षर खयाल आए कि अब क्रोध आ रहा है; बस कोई चीज एकदम से बीच में जैसे फ्लाप! कोई चीज एकदम से गिर जाती है।

वासना सहयोग मांगती है आपका। निर्वासना सिर्फ असहयोग मांगती है। निर्वासना के लिए कुछ करना नहीं है, वासना के लिए जो किया जा रहा है, वही भर नहीं करना है।

तो रिंझाई ने मुट्ठी बांध ली उस आदमी के सामने और कहा कि देख, यह मुट्ठी बंधी है, अब मुझे मुट्ठी को खोलना है। मैं क्या करूं? उस आदमी ने कहा कि क्या फिजूल की बातें पूछते हैं! बांधिए मत, मुट्ठी खुल जाएगी। बांधिए मत! क्योंकि बांधना पड़ता है; बांधना एक काम है। खोलना काम नहीं है। बांधने मे शक्ति लग रही है, खोलने में कोई शक्ति नहीं लगती। न बांधिए तो मुट्ठी खुली रहती है, बांधिए तो बंधती है।

वासना शक्ति मांगती है; न दीजिए शक्ति, तो निर्वासना फलित हो जाती है।

ऐसा झंझावात से मुक्त हुआ चित्त स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है। कृष्ण कहते है, हे महाबाहो, जो स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।। 69।।

और हे अर्जुन, संपूर्ण भूत प्राणियों के लिए जो रात्रि है, उसमें भगवत्ता को प्राप्त हुआ संयमी पुरुष जागता है। और जिस नाशवान, क्षणभंगुर सांसारिक सुख में सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्व को जानने वाले मुनि के लिए वह रात्रि है।

जो सबके लिए अंधेरी रात है, वह भी ज्ञानी के लिए, संयमी के लिए जागरण का क्षण है। जो निद्रा है सबके लिए, वह भी ज्ञानी के लिए जागृति है। यह महावाक्य है। यह साधारण वक्तव्य नहीं है। यह महावक्तव्य है। इसके बहुआयामी अर्थ हैं। दो-तीन आयाम समझ लेना जरूरी है।

एक तो बिलकुल सीधा, जिसको कहना चाहिए लिटरल जो अर्थ है, वह भी इसका अर्थ है। आमतौर से गीता पर किए गए वार्तिक उसके तथ्यगत अर्थ को कभी भी नहीं लेते हैं। जो कि बड़ी ही गलत बात है। वे सदा ही उसको मेटाफर बना लेते हैं। वह सिर्फ मेटाफर नहीं है। जब यह बात कही जा रही है कि जो सबके लिए निद्रा है, वह भी संयमी और ज्ञानी के लिए जागरण है, तो इसका पहला अर्थ बिलकुल शाब्दिक है। जब आप रात सोते हैं, तब भी संयमी नहीं सोता है।

इसे पहले समझ लेना जरूरी है, क्योंकि इसे कहने की हिम्मत नहीं जुटाई जा सकी है आज तक। सदा उसका अर्थ मोहरूपी निशा और और सब रूपी बातें कही गई हैं। इसका पहला अर्थ बिलकुल ही तथ्यगत है।

जब आप रात सोते हैं, तब भी ज्ञानी नहीं सोता है। इसका क्या मतलब है? बिस्तर पर नहीं लेटता है! इसका क्या मतलब है? आंख बंद नहीं करता है! इसका क्या मतलब है? रात विश्राम को उपलब्ध नहीं होता है! नहीं, यह सब करता है, फिर भी नहीं सोता है। दो-तीन उदाहरण से इस बात को समझें।

बुद्ध ने आनंद को दीक्षा दी। वह उनका चचेरा भाई था और बड़ा भाई था। तो दीक्षा लेते वक्त आनंद ने कहा कि दीक्षा के बाद तो तुम गुरु और मैं शिष्य हो जाऊंगा, तो मैं तुमसे फिर कुछ कह न सकूंगा। अभी मैं तुम्हें आज्ञा दे सकता हूं, मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं। दीक्षा लेने के पहले मैं तुम्हें दो-तीन आज्ञाएं देता हूं, जो तुम्हें छोटे भाई की तरह माननी पड़ेंगी। बुद्ध ने कहा, कहो।

आनंद ने कहा, एक तो यह कि मैं चौबीस घंटे तुम्हारे साथ रहूंगा। रात तुम सोओगे जहां, वहीं मैं भी सोऊंगा। दूसरा यह कि जब भी मैं कोई सवाल पूछूं, तुम्हें उसी वक्त उत्तर देना पड़ेगा, टाल न सकोगे। तीसरा यह कि मैं अंधेरी आधी रात में भी किसी को मिलाने ले आऊं, तो मिलना पड़ेगा, इनकार न कर सकोगे।

तो ये तीन आज्ञाएं देता हूं बड़े भाई की हैसियत से। फिर दीक्षा के बाद तो मैं कुछ कह न सकूंगा। तुम्हारी आज्ञा मेरे सिर पर होगी।

बुद्ध ने ये वचन दे दिए। फिर आनंद बुद्ध के कमरे में ही सोता। दो-चार-दस दिन में ही बहुत हैरान हुआ। क्योंकि बुद्ध जिस करवट सोते है-जहां हाथ रखते हैं, जहां पैर रखते हैं-रात में इंचभर भी हिलाते नहीं। कभी करवट भी नहीं बदलते। हाथ जहां रखा है, वहीं रखा रहता है पूरी रात। पैर जहां रखा है, वहीं रखा रहता है पूरी रात। तो आनंद ने कहा कि यह क्या मामला है! यह कैसी नींद है!

दो-चार-दस दिन, रात में कई बार उठकर उसने देखा। देखा कि वही-वही मुद्रा है, वही आसन है, वही व्यवस्था है-सब वही है। दसवें दिन उसने पूछा कि एक सवाल उठ गया है। रात में सोते हो या क्या करते हो? बुद्ध ने कहा, जब से अज्ञान टूटा, तब से सिर्फ शरीर सोता है, मैं नहीं सोता हूं। तो अगर करवट, तो मुझे बदलनी पड़े, मेरे बिना सहयोग के शरीर नहीं बदल सकता। कोई जरूरत नहीं बदलने की। एक ही करवट से काम चल जाता है। तो फकीर आदमी को जितने से काम चल जाए, उससे ज्यादा के उपद्रव में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसे ही चल जाता है काम। हाथ जहां रखता हूं, वहीं रखे रहता हूं। हाथ सो जाता है, मै नहीं सोता हूं।

कृष्ण कहते हैं, जो सबके लिए अंधेरी निद्रा है, वह भी ज्ञानी के लिए जागरण है।

आप भी पूरे नहीं सोते हैं। क्योंकि ज्ञान का कोई न कोई कोना तो आप में भी जागा रहता है। यहां हम इतने लोग बैठे हैं, सब सो जाएं, रात कोई आदमी आकर चिल्लाए, राम! सबको सुनाई पड़ेगा, लेकिन सबको सुनाई नहीं पड़ेगा। जिसका नाम राम है, वह कहेगा, कौन बुला रहा है? कान सबके हैं, सब सोए हैं। राम शब्द गूंजा है, तो सबको सुनाई पड़ा है। लेकिन जो राम है, वह कहता है, कौन बुला रहा है? रात में कौन गड़बड़ करता है? सोने नहीं देता!

क्या हुआ! जरूर इसके भीतर चेतना का एक कोना इस रात में भी जागा है; पहरा दे रहा है। पहचानता है कि राम नाम है अपना।

मां सोई है रात, तूफान आ जाए बाहर, आंधी आ जाए, बादल गरजें, बिजली चमके, उसकी नींद नहीं टूटती। उसका बच्चा जरा-सा कुनकुन करे, वह फौरन हाथ रख लेती। भीतर कोई हिस्सा जागा हुआ है मां का, वह देख रहा है कि बच्चे को कोई गड़बड़ न हो जाए। और बच्चे की गड़बड़ इतनी धीमी है कि मां के एक हिस्से को जागा ही रहना होगा।

आकाश में बिजली चमकती है, बादल गरजते हैं, पानी बरस रहा है, उसका कुछ सुनाई नहीं पड़ता उसे। लेकिन बच्चे की जरा-सी आवाज, उसका जरा-सा करवट लेना, उसकी धीमी-सी पुकार उसे तत्काल जगा देती है। एक हिस्सा उसका भी जागा हुआ है। पर एक हिस्सा! जरूरत के वक्त, इमरजेंसी मेजर है वह हमारा। साधारणतः हमारी पूरी चेतना डूबी रहती है अंधेरे में।

कृष्ण कहते है, ज्ञानी पुरुष नींद में भी जागा रहता है। पहला अर्थ, पहले आयाम का अर्थ, वास्तविक निद्रा में भी जागरण है।

और मैं आपसे कहता हूं कि यह बहुत कठिन नहीं है। जो आदमी दिन के जागते हिस्से में बारह घंटे जागा हुआ जीएगा, वह रात में जागा हुआ सोता है। आप रास्ते पर चल रहे है, जागकर चलें। आप खाना खा रहे है, जागकर खाएं। आप किसी से बात कर रहे है, जागकर बोलें। सुन रहे है, जागकर सुनें। यह नींद-नींद, स्लीपी-स्लीपी न हो। यह सब ऐसे ही चल रहा है।

एक आदमी खाना खा रहा है। हमें लगता है कि नींद में कैसे खाना खा सकता है! लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते है कि सब लोग नींद में खाना खा रहे हैं।

इमरसन एक बड़ा विचारक हुआ। सुबह बैठा है। उसकी नौकरानी नाश्ता रख गई। किताब में उलझा है, तो नौकरानी ने बाधा नहीं दी। किताब से छूटेगा, तो नाश्ता कर लेगा।

उसका एक मित्र मिलने आया है। वह किताब में डूबा है। नाश्ता पास है। मित्र ने सोचा, इससे बात पीछे कर लेंगे, पहले नाश्ता कर लें। मित्र ने नाश्ता कर लिया, प्लेट खाली करके बगल में सरका दी। फिर इमरसन ने कहा, अरे कब आए? मित्र को देखा, खाली प्लेट को देखा और कहा कि जरा देर से आए, मैं नाश्ता कर चुका हूं।

इस आदमी ने कभी जागकर नाश्ता किया होगा? नहीं, हमने भी नहीं किया है। एक रूटीन है, जिसको हम नींद में भी कर लेते हैं। आदमी साइकिल चलाता है। पैर साइकिल चलाते रहते हैं, आदमी भीतर कुछ और चलाता रहता है। चलता चला जाता है। नीद है।

सड़क के किनारे खड़े हो जाएं, लोगों को जरा चलते देखें। कोई बातचीत करता दिखाई पड़ेगा किसी से, जो मौजूद नहीं है। किसी के ओंठ हिल रहे है। कोई हाथ से किसी को झिड़क रहा है। कोई इशारा कर रहा है। आप बहुत हैरान होंगे कि किससे हो रहा है यह सब! नींद, नींद में चल रहे है। जब हम जागे हुए भी सोए हैं, तो सोए हुए जागना बहुत मुश्किल है।

इसलिए मैं कहता हूं कि जिन लोगों ने गीता के इस महावाक्य पर वक्तव्य दिए हैं, उनको खुद का कोई अनुभव नहीं है। अन्यथा यह पहला वक्तव्य चूक नहीं सकता था। उनको साफ पता नहीं है कि नींद में जागा हुआ हुआ जा सकता है। लेकिन जागे हुए ही सोए हुए आदमियों को नींद में जागने का खयाल भी नहीं उठ सकता है! तो वे इसका मेटाफोरिकल अर्थ करते हैं। वह अर्थ ठीक नहीं है।

जो आदमी दिन में जागकर चलेगा, उठेगा, बैठेगा, वह रात में भी जागा हुआ सोएगा।

महावीर ने कहा है-अजीब बात कही है-महावीर ने कहा है, साधुओ! जागकर चलना, जागकर उठना, जागकर बैठना। सब ठीक है। लेकिन आखिर में महावीर कहते हैं, जागकर सोना। पागलपन की बातें कर रहे है! तो फिर सोएंगे काहे के लिए! जागकर सोना, जागते रहना और देखना कि नींद कब आई।

आप कितनी दफे सोए हैं, कभी नींद को आते देखा? जिंदगीभर सोए, रोज सोए। आदमी साठ साल जीता है, तो बीस साल सोता है। आठ घंटे सोए अगर, तो बीस साल सोने में चले जाते हैं। जिंदगी का एक तिहाई सोते हैं। बीस साल सोकर भी कभी आपको पता है, नींद कब आती है? कैसे आती है? नींद क्या है?

कैसा अदभुत है यह मामला! बीस साल जिस अनुभव से गुजरते हैं, उस अनुभव की कोई भी पहचान नहीं है! रोज सोते हैं। लेकिन कोई आपसे पूछे कि

नींद क्या है ? व्हाट इज़ दि स्लीप ? कैसे आती है ? आते वक्त क्या उसकी शकल है, क्या उसका रूप है ? कैसे उतरती है ? जैसे सांझ उतरती है अंधकार की, सूरज डूबता है, ऐसा आपके भीतर क्या उतरता है नींद में ?

आप कहेंगे कि कुछ पता नहीं है। क्योंकि जब तक जागे रहते हैं, तब तक नींद नहीं आती। जब नींद आ जाती है, उसके पहले तो सो गए होते हैं।

सुबह उठते है रोज। कभी देखा है कि नींद का टूटना क्या है, फिनामिनल ? नींद कैसे टूटती है ? क्या होता है नींद के टूटने में ?

आप कहते हैं, कुछ पता नहीं। जब तक नीद नही टूटती, तब तक हम नहीं होते। जब नींद टूट जाती है, तब टूट ही चुकी होती है। कोई हमें पता नहीं।

कृष्ण कह रहे है, ज्ञानी जागकर सोता है।

और जिस व्यक्ति ने अपनी नीद को जागकर देख लिया, वही व्यक्ति अपनी मृत्यु को भी जागकर देख सकता है, अन्यथा नही देख सकता है। इसलिए इस सूत्र को मै महावाक्य कहता हूं।

मौत तो कल आएगी, नींद तो आज ही आएगी। रात नींद को देखते हुए सोएं। आज, कल, महीना, दो महीना, तीन महीना- रोज सोते वक्त एक ही प्रार्थना मन में, एक ही भाव मन में आए कि उसे मै देखूं। जागे रहें, जागे रहें, जागे रहें। देखते रहें, देखते रहें। आज चूकेंगे, कल चूकेगे, परसों चूकेंगे। महीना, दो महीना, तीन महीना-अचानक किसी दिन आप पाएंगे कि नींद उतर रही है और आप देख रहे है। और जिस दिन आप नीद को उतरते देख लेंगे, उस दिन कृष्ण का यह महावाक्य समझ में आएगा; उसके पहले समझ मे नहीं आ सकता है। यह इसका वास्तविक अर्थ है।

इसका जो मेटाफोरिकल अर्थ है, वह भी आपसे कहूं। वह भी है, लेकिन वह नंबर दो का मूल्य है उसका। नंबर एक का मूल्य इसी का है। वह भी है। लेकिन वह तो और बहुत-सी बातों मे भी कह दिया गया है। उसको कहने के लिए इस वाक्य को कहने की कोई भी जरूरत न थी। वह दूसरा जो मोह-निशा, उसकी तो बहुत चर्चा हो गई। वह जो विषयों की नींद है, वह जो वासना की नींद है, तो उसकी तो काफी चर्चा हो गई है।

और कृष्ण जैसे लोग एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। एक शब्द पुनरुक्त नहीं करते हैं। अगर पुनरुक्ति दिखती हो, तो आपकी समझ में भूल और गलती होती है। कृष्ण जैसे लोग, दे नेवर रिपीट। क्योंकि रिपीट का कोई सवाल नहीं है। दोहराने की कोई जरूरत नहीं है।

क्या आपको पता है कि कौन लोग दोहराते हैं! सिर्फ वे ही लोग दोहराते हैं, जिनमें आत्मविश्वास की कमी होती है। दूसरा आदमी नहीं दोहराता। जिसने एक बात पूरे विश्वास से कह दी पूरी तरह जानकर, बात खत्म हो गई।

तो कृष्ण दोहरा नहीं सकते। इसलिए मैं कहता हूं कि जो आम व्याख्या की गई है कि जहां कामी आदमी कामवासना में, मोह-निद्रा में, विषयों की नींद में, अंधेरे में डूबा रहता है, वहां संयमी आदमी जागा रहता है। इसको दोहराने के लिए इस वाक्य की बहुत जरूरत नहीं है। लेकिन वह अर्थ करें, तो बुरा नहीं है। लेकिन पहला अर्थ पहले समझ लें।

हां, दूसरा अर्थ है। एक तंद्रा का घेरा, कहना चाहिए एक हिप्नोटिक ऑरा, हमारे व्यक्तित्व में अटका हुआ है। जब आप चलते हैं, तो आपके चारों तरफ नींद का एक घेरा चलता है। जब जागा हुआ पुरुष चलता है, तब उसके पास भी चारों तरफ एक जागरण का एक घेरा चलता है। यह जो हमने फकीरों-नानक और कबीर और राम और कृष्ण और बुद्ध और महावीर के आस-पास, उनके चेहरे के पास एक गोल घेरा बनाया है, यह फोटोग्राफिक ट्रिक नहीं है। यह सिर्फ एक मिथ नहीं है1 जागे हुए व्यक्ति के आस-पास प्रकाश का एक उज्ज्वल घेरा चलता है।

और जो लोग भी अपने भीतर के प्रकाश को देखने में समर्थ होते हैं, वे दूसरे के ऑरा को भी देखने में समर्थ हो जाते हैं। जिन लोगों को भीतर अपने प्रकाश दिखाई पड़ने लगता है, वे उस आदमी के चेहरे के आस-पास प्रकाश के गोल घेरे को तत्काल देख लेते हैं। हां, आपको नहीं दिखता, क्योंकि आपको उस तरह के सूक्ष्म प्रकाश का कोई भी अनुभव नहीं है।

तो जैसे महावीर और बुद्ध और कृष्ण के चेहरे के आस-पास एक गोल वर्तुल चलता है जागरण का, रोशनी का, ऐसे ही हम सब सोए हुए आदमियों के

आस-पास एक गोल वर्तुल चलता है अंधकार का, निद्रा का। वह भी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि उसका पता भी तब चलेगा, जब प्रकाश दिखाई पड़े। तब आपको पता चलेगा कि जिंदगीभर एक अंधेरे का गोल घेरा भी आपके पास चलता था। पता तो पहले प्रकाश का चलेगा, तभी अंधकार का बोध होगा। उसके साथ ही हम पैदा होते है। उससे इतने निकट और परिचित होते है कि वह दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन मैं देखता हूं कि रास्ते पर दो आदमी चल रहे हों, तो दोनों के पास का चलने वाला घेरा अलग होता है। रंगों-रंगों के फर्क होते है, शेड के फर्क होते है। अंधेरे और सफेदी के बीच मे बहुत से ग्रे कलर होते है।

लेकिन साधारणतः सोए आदमी के पास, सौ में से निन्यानबे आदमियों के पास नींद का एक वर्तुल चलता है, एक स्लीपी वर्तुल चलता है। वैसा आदमी जहां जाता है, उसके साथ उसकी नींद भी जाती है। वह जो भी छूता है, उसे नींद में छूता है। वह जो भी करता है, उसे नींद में करता है। वह जो भी बोलता है, नींद में बोलता है।

कभी आपने सोचा है कि आप अपने वक्तव्यों के लिए कितनी बार नहों पछताए है! पछताए है। लेकिन कभी आपको पता है कि आपने ही बोला था- होश में!

पति घर आया है और एक शब्द पत्नी बोल गई है और कलह शुरू हो गई है। और वह जानती है कि यह शब्द रोका जा सकता था। क्योंकि यह शब्द पचीस दफे बोला जा चुका है और इस शब्द के आस-पास इसी तरह की कलह पचीस बार हो चुकी है। फिर यह आज क्यों बोला गया? नींद में बोल गई, फिर बोल गई। कल फिर बोलेगी, परसों फिर बोलेगी। वह नींद चलेगी। वह रोज वही बोलेगी और रोज वही होगा। पति भी रोज वही उत्तर देगा।

अगर एक पति-पत्नी को सात दिन ठीक से देख लिया जाए, तो उनकी पिछली जिंदगी और आगे की सारी जिंदगी की कथा लिखी जा सकती है कि पीछे क्या हुआ और आगे क्या होगा। क्योंकि यही होगा। इसकी पुनरुक्ति होती रहेगी।

ये नींद में चलते हुए लोग-वही क्रोध, वही काम, वही सब, वही दुख, वही पीड़ा, वही चिंता-सब वही। रोज उठते हैं और वही दोहराते हैं। जैसे सब तय है, बंधी हुई मशीन की तरह। बस, रोज अपनी मशीन पर जम जाते हैं और फिर दोहराते हैं।

यह नींद है। यह कृष्ण का दूसरा अर्थ है। जागा हुआ पुरुष जो भी करता है, वह नींद में करने वाले आदमी जैसा उसका व्यवहार नहीं है।

क्या फर्क पड़ेगा उसके व्यवहार में? तो उन्होंने इंगित दिए हैं कि नींद से भरा हुआ आदमी मैं के और अहंकार के आस-पास जीएगा। उसका सब कुछ अहंकार से भरा होगा।

कभी आपने खयाल किया है, आईने के सामने खड़े होकर जो तैयारी आप कर रहे हैं, वह आपकी तैयारी है कि अहंकार की तैयारी है! किसकी तैयारी कर रहे हैं? अहंकार की तैयारी कर रहे हैं। बाहर निकलते हैं, तो झाड़-झूड़ के साफ, रीढ़ सीधी कर लेते हैं। आंखें तेज हो जाती हैं। या तो सुरक्षा में लग जाते हैं या आक्रमण में लग जाते हैं। चल पड़े, नींद वाला आदमी निकला घर से बाहर, उपद्रव संभावित है, कि कुछ होगा अब। अब यह कुछ न कुछ करेगा। और सारे लोग अपने घरों के बाहर निकल रहे हैं। ये कुछ न कुछ करेंगे।

अमेरिका में अभी कार के एक्सिडेंट्स का जो सर्वे हुआ है, उससे पता चला है कि पचहत्तर प्रतिशत कार की दुर्घटनाएं भौतिक नहीं, मानसिक घटनाएं है। पागलपन की बात मालूम होती है न! कार की दुर्घटना और मानसिक! कार का भी कोई माइंड है, कार का भी कोई मन है कि कार भी कोई मन से दुर्घटना करती है! कार का नहीं है, ड्राइवर का है, वह जो सारथी बैठे रहते हैं भीतर।

कभी आपको पता है कि जब आप क्रोध में होते हैं, तो कार का एक्सेलेरेटर जोर से दबता है-नींद में, होश में नहीं। जल्दी आपको कहीं पहुंचना नहीं है। लेकिन चित्त क्रोध से भरा है। किसी चीज को दबाना चाहता है। इसकी फिक्र नहीं कि किसको दबा रहे हैं। एक्सेलेरेटर को ही दबा रहे हैं। अब एक्सेलेरेटर से कोई झगड़ा नहीं है। अब एक्सेलेरेटर को दबाइएगा क्रोध में, तो खतरा पक्का है।

क्योंकि एक तो नींद में दबाया जा रहा है। आपको पता ही नहीं है कि क्यों दबा रहे हैं एक्सेलेरेटर को। पता होना चाहिए कि क्यों दबा रहे हैं, कहां दबा रहे हैं, कितनी भीड़ है, कितने लोग हैं, कितनी कारें दौड़ रही हैं। आपको कुछ पता नहीं है।

आप एक्सेलेरेटर को नहीं दबा रहे हैं। कोई अपनी पत्नी के सिर पर पैर दबा रहा है, कोई अपने बेटे के, कोई अपने बाप के, कोई अपने मालिक के। पता नहीं वह एक्सेलेरेटर किन-किन के लिए काम कर रहा है। पता नहीं कौन एक्सेलेरेटर उस वक्त बना हुआ है। दबाए जा रहे हैं। अब यह आदमी जो नींद में एक्सेलेरेटर दबा रहा है, इस आदमी को सड़क दिखाई पड़ रही होगी!

इसकी हालत ठीक वैसी है, मैंने सुना है, वर्षा हो रही है और एक आदमी अपनी कार चला रहा है। जोर से वर्षा हो रही है, लेकिन वह आदमी वाइपर नहीं चला रहा है कार के। तो उसकी पत्नी उससे कहती है, क्या कर रहे हो! जैसा कि पत्नियां आमतौर से ड्राइवर को गाइड करती रहती हैं। पति चलाता है, पत्नियां चलवाती हैं। वे पूरे वक्त बताती रहती हैं कि यह करो, यह करो।

पूछा, क्यों नहीं चला रहे हैं वाइपर? तो उसने कहा, कोई फायदा नहीं है, क्योंकि चश्मा तो मैं घर ही भूल आया हूं। वैसे ही नहीं दिखाई पड़ रहा है कुछ। पानी गिर रहा है कि नहीं गिर रहा है, इससे क्या मतलब है!

अब यह जो आदमी है, वह जो एक्सेलेरेटर को क्रोध में दबा रहा है, वह भी अंधा है। उसको भी कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है कि बाहर क्या हो रहा है। पचहत्तर प्रतिशत दुर्घटनाएं मानसिक घटनाएं हैं। यह नींद है।

इस नींद में हम उलटा भी करते हैं। वह तीसरा आयाम है। फिर हम आगे बढ़ें।

एक तीसरा अर्थ भी है; नींद का कृत्य हमेशा, जो आप करते हैं और जो होता है, उसका आपको कोई खयाल नहीं होता। जो आप करते हैं, उससे ही होता है। लेकिन जब होता है, तब आप पछताते हैं कि यह कैसे हो गया! क्योकि हमने तो यह कभी न किया था।

एक स्त्री सज रही है, आईने के सामने सज रही है। अब उसे पता नहीं है

कि सजकर वह क्या कर रही है। मैं सज रही हूं और कुछ भी नहीं कर रही! लेकिन वह सज-धजकर सड़क पर आ गई है। उसने चुस्त कपड़े पहन रखे है। अब उसको पता नहीं कि वह धक्का निमंत्रित कर रही है। कोई आदमी धक्का मारेगा। जब वह धक्का मारेगा, तब वह कहेगी कि बहुत ज्यादती हो रही है। वह स्त्री कहेगी, बहुत ज्यादती हो रही है, अन्याय हो रहा है, अनीति हो रही है। लेकिन सब तैयारी करके आई है वह। पर वह तैयारी नींद में की गई थी, उसे कोई काज-इफेक्ट दिखाई नहीं पड़ता कि ये इतने चुस्त कपड़े, इतने बेढंगे कपड़े, इतनी सजावट किसी को भी धक्का मारने के लिए निमंत्रण है।

और बड़े मजे की बात है, अगर उसको कोई धक्का न दे और कोई न देखे, तो भी दुखी लौटेगी कि बेकार गई, सब मेहनत बेकार गई। किसी ने देखा ही नहीं! सड़क पर कोई इसे न देखे, कोई इसको ले ही न, कोई अटेंशन न दे, तो यह ज्यादा दुखी लौटेगी। धक्का दे, तो भी दुखी लौटेगी। क्या हो रहा है यह!

मैने सुना है कि एक बच्चे ने अपने बाप को खबर दी कि मैने पांच मक्खियां मार डाली है। उसके बाप ने कहा, अरे! और उसने कहा कि तीन नर थे, दो मादाएं थीं। उसके बाप ने कहा कि हद कर रहा है, तूने कैसे पता लगाया? तो उसने कहा कि दो मक्खियां आईने-आईने पर ही बैठती थीं। समझ गया कि स्त्रियां होनीं चाहिए!

यह जो नींद में सब चल रहा है, इसमें हम ही कारण होते है और जब कार्य आता है, तब हम चौंककर खड़े हो जाते हैं कि यह मैने नहीं किया! अगर हम नींद में न हों, तो हम फौरन समझ जाएंगे, यह मेरा किया हुआ है। यह धक्का मेरा बुलाया हुआ है। यह धक्का ऐसे ही नहीं आ गया है। इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है, एक्सिडेंटल नहीं है। सब चीजों की हम व्यवस्था करते हैं। लेकिन फिर व्यवस्था जब पूरी हो जाती है, तब पछताते है कि यह क्या हो गया! यह क्या हो रहा है?

यह भी नींद का अर्थ है। संयमी, ज्ञानी इस भांति कभी नहीं सोता; जागा ही रहता है। स्वभावतः, जागकर वह वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा सोया आदमी करता है। उसका मैं कभी केंद्र में नहीं होता। मैं सदा नींद के ही केंद्र में

होता है। समझ लें कि नींद का केंद्र मैं है। न-मैं, ईगोलेसनेस, निरअहंकार भाव, जागरण का केंद्र है।

यह बड़े मजे की बात है। इसको अगर हम ऐसा कहें तो बिलकुल कह सकते हैं कि सोया हुआ आदमी ही होता है, जागा हुआ आदमी होता नहीं। यह बड़ा उलटा वक्तव्य लगेगा। सोया हुआ आदमी ही होता है-मैं। जागा हुआ आदमी नहीं होता है-न-मैं। जागरण आदमी के अहंकार का विसर्जन है। निद्रा आदमी के अहंकार का संग्रहण है, कनसनट्रेशन है, केंद्रीकरण है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स
शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। 70।।

और जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष के प्रति संपूर्ण भोग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते हैं, वह पुरुष परमशांति को प्राप्त होता है, न कि भोगों को चाहने वाला।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।। 71।।

क्योंकि, जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित और अहंकाररहित, स्पृहारहित हुआ बर्तता है, वह शांति को प्राप्त होता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।। 72।।

हे अर्जुन, यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की ब्राह्मी-स्थिति है। इसको प्राप्त होकर वह मोहित नहीं होता है और अंतकाल में भी इस निष्ठा में स्थिर होकर ब्रह्म-निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

हे पार्थ! जैसे महासागर अनंत-अनंत नदियों को भी अपने में समाकर जरा भी मर्यादा नहीं खोता, इंचभर भी परिवर्तित नहीं होता; जैसे कुछ समाया ही नहीं उसमें, ऐसा ही होता है। जैसा पहले था हजारों नदियों के गिरने के, ऐसा ही बाद में होता है। ऐसे ही जो व्यक्ति जीवन के समस्त भोग अपरिवर्तित रूप से, भोगने के पहले जैसा था, भोगने के बाद भी वैसा ही होता है। जैसे कि भोगा ही न हो, अर्थात जो भोगते हुए भी न-भोगा बना रहता है, जो भोगते हुए भी भोक्ता नहीं बनता है, जिसमें कोई भी अंतर नहीं आता है, जो जैसा था वैसा ही है; नहीं होता, तो जैसा होता, होकर भी वैसा ही है। ऐसा व्यक्ति मुक्ति को, ब्राह्मी-स्थिति को उपलब्ध हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ! तेरी मुक्ति की जिज्ञासा...।

बड़ी मजे की बात कहते हैं। क्योंकि अर्जुन ने जिज्ञासा मुक्ति की नहीं की थी। अर्जुन ने जिज्ञासा मुक्ति की नहीं की थी, अर्जुन ने जिज्ञासा सिर्फ युद्ध से बचने की की थी। लेकिन कृष्ण कहते है, हे पार्थ! तेरी मुक्ति की जिज्ञासा, तेरे मोक्ष की खोज के लिए तुझे यह बताता हूं।

अर्जुन ने नहीं की थी मुक्ति की जिज्ञासा, लेकिन अर्जुन ने जो भी जिज्ञासा की थी, कृष्ण ने उसे इस बीच मुक्ति की जिज्ञासा में रूपांतरित किया है। इस पूरी यात्रा में कृष्ण ने अर्जुन की जिज्ञासा को भी रूपांतरित किया है। धीरे-धीरे युद्ध गौण हो गया है। धीरे-धीरे युद्ध रहा ही नहीं है। बहुत देर हो गई, जब से युद्ध की बात समाप्त हो गई है। बहुत देर हो गई, जब से अर्जुन भी और हो गया है।

अर्जुन शब्द का अर्थ होता है, दैट व्हिच इज़ नाट स्ट्रेट। ऋजु से बनता है वह शब्द। ऋजु का मतलब होता है, सीधा-सरल। अर्जुन का मतलब होता है, तिरछा-इरछा। अर्जुन का मतलब होता है, आड़ा-तिरछा। अर्जुन सीधा-सादा नहीं है, बहुत आड़ा-तिरछा है। विचार करने वाले सभी लोग आड़े-तिरछे होते है। निर्विचार ही सीधा होता है।

अर्जुन की जिज्ञासा को कृष्ण ने बहुत रूपांतरित किया है, ट्रांसफार्म किया है। और ध्यान रहे, साधारणतः मनुष्य धर्म की जिज्ञासा शुरू नहीं करता, साधारणतः

मनुष्य जिज्ञासा तो संसार की ही शुरू करता है। लेकिन उसकी जिज्ञासा को संसार से मुक्ति और मोक्ष की तरफ रूपांतरित किया जा सकता है। क्यों? इसलिए नहीं कि कृष्ण कर सकते हैं, बल्कि इसलिए कि संसार की जिज्ञासा करने वाला मनुष्य भी जानता नहीं कि क्या कर रहा है। उसकी गहरी और मौलिक जिज्ञासा सदा ही मुक्ति की होती है।

जब कोई धन खोजता है, तब भी बहुत गहरे मे वैसा व्यक्ति आंतरिक दरिद्रता को मिटाने की चेष्टा में रत होता है-गलत चीज से, लेकिन चेष्टा उसकी यही होती है कि दरिद्र न रह जाऊं, दिवालिया न रह जाऊं। जब कोई आदमी पद खोजता है, तब भी उसकी भीतरी कोशिश, आत्महीनता न रह जाए, उसी की होती है-गलत जगह खोजता है। जब कोई आदमी युद्ध से भागना चाहता है, तब भी वह युद्ध से नहीं भागना चाहता, बहुत गहरे में संताप से, एंग्विश से, चिंता से ऊपर उठना चाहता है। लेकिन फिर भी वह ठीक दिशा मे नहीं पहुंचता।

इस बात को कहकर कृष्ण बहुत गहरा इंगित दे रहे है। वे कह रहे है, हे अर्जुन, तेरी मुक्ति की जिज्ञासा के लिए मैने यह सब कहा। अगर तू महासागर जैसा हो जाए, जहां सब आए और सब जाए, लेकिन तुझे छुए भी नही, स्पर्श भी न करे, अनटच्ड, अस्पर्शित, तू पीछे वैसा ही रह जाए जैसा था, तो तू ब्राह्मी-स्थिति को उपलब्ध हो जाता है। ब्राह्मी-स्थिति अर्थात तब तू नहीं रह जाता और ब्रह्म ही रह जाता है।

और जहां मैं नहीं रह जाता, ब्रह्म ही रह जाता है, वहां फिर कोई चिंता नहीं, क्योंकि सभी चिंताएं मै के साथ है। जहां मै नहीं रह जाता और ब्रह्म ही रह जाता है, वहां कोई दुख नहीं है, क्योंकि सब दुख मै की उत्पत्तियां हैं। और जहां मै नहीं रह जाता और ब्रह्म ही रह जाता है, वहां कोई मृत्यु नहीं, क्योंकि मै ही मरता है, जन्म लेता है। ब्रह्म की न कोई मृत्यु है, न कोई जन्म है। वह है।

ऐसा कृष्ण ने इस दूसरे अध्याय की चर्चा में, जिसे गीताकार सांख्ययोग कह रहा है, पहले अध्याय को कहा था विषादयोग, दूसरे अध्याय को कह रहा है सांख्ययोग। विषाद के बाद एकदम सांख्य! कहां विषाद से घिरा चित्त अर्जुन का

और कहां ब्राह्मी-स्थिति अनंत आनंद से भरी हुई! इस संबंध में एक बात, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

धन्य हैं वे, जो अर्जुन के विषाद को उपलब्ध हो जाएं। क्योंकि उतने विषाद में से ही ब्राह्मी-स्थिति तक के शिखर तक उठने की चुनौती उत्पन्न होती है। कृष्ण ने अर्जुन के विषाद को ठीक से पकड़ लिया।

अगर अर्जुन किसी मनोवैज्ञानिक के पास गया होता, तो मनोवैज्ञानिक क्या करता! चूंकि मैंने यह कहा कि कृष्ण का यह पूरा शास्त्र एक साइकोलाजी है, इसलिए मैं यह भी अंत में आपसे कह दूं, अगर मनोवैज्ञानिक के पास अर्जुन गया होता, तो मनोवैज्ञानिक क्या करता! मनोवैज्ञानिक अर्जुन को एडजस्ट करता। मनोवैज्ञानिक कहता कि समायोजित हो जा। ऐसा तो युद्ध में होता ही है, सभी को ऐसी चिंता पैदा होती है। यह बिलकुल स्वाभाविक है। तू नाहक की एबनार्मल बातों में पड़ रहा है। तू व्यर्थ की विक्षिप्त बातों में पड़ रहा है। ऐसे पागल हो जाएगा, न्यूरोसिस हो जाएगी। अर्जुन नहीं मानता, तो वह कहता कि तू फिर इलेक्ट्रिक शॉक ले ले; इंसुलिन के इंजेक्शन ले ले।

लेकिन कृष्ण ने उसके विषाद का क्रिएटिव उपयोग किया। उसके विषाद को स्वीकार किया कि ठीक है। अब इस विषाद को हम ऊपर ले चलते हैं। हम तुझे विषाद के लिए राजी न करेंगे। हम विषाद का ही उपयोग करके तुझे ऊपर ले जाएंगे।

असल में ज्ञान सदा ही अभिशाप को वरदान बना लेता है। अभिशाप को वरदान न बनाया जा सके, तो वह ज्ञान नहीं। अर्जुन के लिए जो अभिशाप जैसा फलित हुआ था, कृष्ण ने उसे वरदान बनाने की पूरी चेष्टा की है। उसके दुख का भी सृजनात्मक उपयोग किया है।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि भविष्य का जो मनोविज्ञान होगा, वह सिर्फ मरीज को किसी तरह मरीजों के समाज में रहने योग्य नहीं बनाएगा, बल्कि मरीज की यह जो बेचैन स्थिति है, इस बेचैन स्थिति को मरीज की पूरी आत्मा के रूपांतरण के लिए उपयोग करेगा। वह क्रिएटिव साइकोलाजी होगी।

इसलिए कृष्ण का मनोविज्ञान साधारण मनोविज्ञान नहीं, सृजनात्मक

मनोविज्ञान है। यहां हम कोयले को हीरा बनाने की कोशिश करते है; यह अल्केमी है। जैसा अल्केमिस्ट कहते रहे है कि हम लोअर बेस मेटल को-सस्ती और साधारण धातुओ को-सोना बनाते है। पता नही उन्होने कभी बनाया या नही बनाया। लेकिन यहां अर्जुन बड़े बेस मेटल की तरह कृष्ण के हाथ मे आया था, कोयले की तरह, उस कोयले को हीरा बनाने की उन्होने बडी कोशिश की।

धन्य है वे, जो अर्जुन के विषाद को उपलब्ध होते है। क्योकि उनकी ही धन्यता ब्राह्मी-स्थिति तक पहुंचने की भी हो सकती है।

मेरी बातो को इतने प्रेम और आनंद से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हू और अंत मे सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।

मेरे प्रणाम स्वीकार करे।

•••

ओशो—एक परिचय

सत्य की व्यक्तिगत खोज से लेकर ज्वलंत सामाजिक व राजनैतिक प्रश्नों पर ओशो की दृष्टि उनको हर श्रेणी से अलग अपनी कोटि आप बना देती है। वे आंतरिक रूपांतरण के विज्ञान में क्रांतिकारी देशना के पर्याय हैं और ध्यान की ऐसी विधियों के प्रस्तोता हैं जो आज के गतिशील जीवन को ध्यान में रख कर बनाई गई हैं।

अनूठे ओशो सक्रिय ध्यान इस तरह बनाए गए हैं कि शरीर और मन में इकट्ठे तनावों का रेचन हो सके, जिससे सहज स्थिरता आए व ध्यान की विचार रहित दशा का अनुभव हो।

ओशो की देशना एक नये मनुष्य के जन्म के लिए है, जिसे उन्होंने 'ज़ोरबा दि बुद्धा' कहा है—जिसके पैर जमीन पर हों, मगर जिसके हाथ सितारों को छू सकें। ओशो के हर आयाम में एक धारा की तरह बहता हुआ वह जीवन-दर्शन है जो पूर्व की समयातीत प्रज्ञा और पश्चिम के विज्ञान और तकनीक की उच्चतम संभावनाओं को समाहित करता है। ओशो के दर्शन को यदि समझा जाए और अपने जीवन में उतारा जाए तो मनुष्य-जाति में एक क्रांति की संभावना है।

ओशो की पुस्तकें लिखी हुई नहीं है बल्कि पैंतीस साल से भी अधिक समय तक उनके द्वारा दिए गए तात्कालिक प्रवचनों की रिकार्डिंग से अभिलिखित हैं।

लंदन के 'संडे टाइम्स' ने ओशो को 'बीसवीं सदी के एक हजार निर्माताओं' में से एक बताया है और भारत के 'संडे मिड-डे' ने उन्हें गांधी, नेहरू और बुद्ध के साथ उन दस लोगों में रखा है, जिन्होंने भारत का भाग्य बदल दिया।

ओशो इंटरनेशनल मेडिटेशन रिजॉर्ट

ओशो मेडिटेशन रिजॉर्ट का निर्माण इसलिए किया गया ताकि लोग जीने की नई कला का सीधा अनुभव ले सकें—अधिक होशपूर्वक होकर, हास्य और आराम के साथ। यह भारत के मुंबई शहर से सौ मील दक्षिण पूर्व में पूना के कोरेगांव पार्क में वृक्षों से परिपूर्ण चालीस एकड़ आवासीय क्षेत्र में स्थित है। रिजॉर्ट सौ से अधिक देशों से हर साल आने वाले हजारों लोगों के लिए अलग-अलग तरह के कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। नवनिर्मित ओशो गेस्ट हाउस परिसर में लोगों के लिए आवास की सुविधा उपलब्ध है।

मेडिटेशन रिजॉर्ट में मल्टीवर्सिटी कार्यक्रम प्रसिद्ध झेन उद्यान, ओशो तीर्थ से सटे पिरामिड परिसर में संचालित होते है। ये कार्यक्रम व्यक्तिगत रूपांतरण के लिए व लोगों को जीने की एक नई कला सिखाने के उद्देश्य से तैयार किए गए हैं—एक जाग्रत अवस्था जिसे वे दैनिक जीवन में उतार सकते हैं। आत्म-खोज सत्र, सैशन, कोर्स और अन्य ध्यान प्रक्रियाएं पूरे साल चलती हैं। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए एक खूबसूरत व्यवस्था का प्रावधान है जिसमें झेन प्रक्रिया के साथ खेल और मनोरंजन का अनुभव लिया जा सकता है।

मुख्य ध्यान सभागार में सुबह छह बजे से रात ग्यारह बजे तक प्रतिदिन सक्रिय व अक्रिय ध्यान विधियां होती है, जिसमें रोज संध्या-सभा ध्यान भी शामिल है। रात को रिजॉर्ट का बहुसांस्कृतिक जीवन खिल उठता है-मित्रों के संग खुले आकाश के नीचे भोजन-स्थल और अक्सर संगीत व नृत्य के साथ। रिजॉर्ट की साफ व शुद्ध पीने के पानी की अपनी व्यवस्था है और यहां परोसे गए भोजन में रिजॉर्ट के अपने फार्म हाउस में उगाई गई सब्जियों का प्रयोग होता है।

मेडिटेशन रिजॉर्ट का ऑन लाइन टूर, साथ ही यात्रा और कार्यक्रमों की जानकारी www.osho.com से प्राप्त की जा सकती है। यह अलग-अलग भाषाओं में विस्तार में दी गई वेबसाइट है, जिसमें हैं—ऑन लाइन ओशो टाइम्स पत्रिका, ऑडियो व वीडियो वेबकास्टिंग, ऑडियो बुक क्लब, ओशो प्रवचनों के संपूर्ण अंग्रेजी व हिंदी अभिलेख और ओशो के वीडियो, ऑडियो व पुस्तकों की संपूर्ण सूची। साथ ही है ओशो द्वारा विकसित किए गए सक्रिय ध्यानों की जानकारी जो ज्यादातर वीडियो प्रदर्शन के साथ है।

मेडिटेशन रिजॉर्ट में सहभागी होने व अधिक विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें:

ओशो इंटरनेशनल मेडिटेशन रिजॉर्ट

17 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001, महाराष्ट्र

फोन: 020-56019999 फैक्स: 020-56019990

e-mail - resortinfo@osho.net

Website - www.osho.com

ओशो का हिंदी साहित्य

उपनिषद
सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)
कृष्ण
गीता-दर्शन
(आठ भागो मे अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति
महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों मे)
जिन-सूत्र (दो भागो मे)
महावीर या महाविनाश
महावीर मेरी दृष्टि में
ज्यो की त्यो धरि दीन्हीं चदरिया
बुद्ध
एस धम्मो सनतनो (बारह भागो मे)
अष्टावक्र
अष्टावक्र महागीता (छह भागों मे)
लाओत्से
ताओ उपनिषद (छह भागो में)
कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आखों देखा (कबीर व फरीद)
शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागो मे)
अन्य रहस्यदर्शी
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन)
अरी, मै तो नाम के रग छकी (जगजीवन)
कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया)
अमी झरत बिगसत कवल (दरिया)
हरि बोलौ हरि बोल (सुदरदास)
ज्योति से ज्योति जले (सुदरदास)
अजहू चेत गवार (पलटू)
सपना यह ससार (पलटू)
काहे होत अधीर (पलटू)
जस पनिहार धरे सिर गागर (धरमदास)
का सोवै दिन रैन (धरमदास)
सबै सयाने एक मत (दादू)
पिव पिव लागी प्यास (दादू)
कन थोरे काकर घने (मलूकदास)
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास)
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढमते (आदिशकराचार्य)
एक ओकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
पद घुघरू बांध (मीरा)
नहीं साझ नहीं भोर (चरणदास)
सतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)

जीवन सगीत
जो घर बारे आपना
प्रेम दर्शन
साधना-शिविर
साधना-पथ
मै मृत्यु सिखाता हू
जिन खोजा तिन पाइया
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
रोम-रोम रस पीजिए
राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं
देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और
अब है भिखारी जगत का
शिक्षा मे क्राति
नये समाज की खोज
नये भारत की खोज
नये भारत का जन्म
नारी और क्राति
शिक्षा और धर्म
भारत का भविष्य
विविध
अमृत-कण
मै कहता आखन देखी
एक एक कदम
जीवन क्राति के सूत्र
जीवन रहस्य
करुणा और क्राति
विज्ञान, धर्म और कला
शून्य के पार
प्रभु मदिर के द्वार पर
तमसो मा ज्योतिर्गमय
प्रेम है द्वार प्रभु का
अतर की खोज
अमृत की दिशा
अमृत वर्षा
अमृत द्वार
चित चकमक लागे नाहिं
एक नया द्वार
प्रेम गगा
समुद समाना बुद में
सत्य की प्यास
शून्य समाधि
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
अज्ञात की ओर
धर्म और आनद
जीवन-दर्शन
जीवन की खोज
क्या ईश्वर मर गया है
नये मनुष्य का धर्म
धर्म की यात्रा
स्वय की सत्ता
सुख और शाति
अनत की पुकार

ओशो के ऑडियो-वीडियो प्रवचन एवं साहित्य के संबंध में
समस्त जानकारी हेतु सपर्क सूत्र :

साधना फाउंडेशन

17 कोरेगांव पार्क, पुणे 411001

फोन 020-6136655 फैक्स: 020-6139955

E-mail: distrib@osho.net Website: www.osho.com